ISSN : 2349-9273

The Gunjan

(Multi Disciplinary Quarterly International Refereed Research Journal)

PATRON

Shri Manvendra Swaroop, En. Gaurvendra Swaroop

Secretary - Dayanand Shikshan Sansthan, Kanpur

Dr. B.D. Pandey (Asso. Prof.-Eng. P.P.N. College, Kanpur) **Dr. Shiv Kr. Dixit** (Famous Esciest)

Editor-in-Chief

Dr. Arun Kumar Dixit

Ex. Principal

Sri Varshney Mahavidyalaya, Aligarh (U.P.)

Editor

Dr. Ajai Saxena

Principal

D. A. V. (P.G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

Executive Board

◆**Dr. Ram Babu Gautam,** New Jersi 220, Wheeler Street, Clifsite Park, New Jersi-07010 (America), ◆**Dr. Sirish Kumar Pandey,** Ul Litawashka 37, 51-354, Ursaw, Poland, ◆**Dr. Damoder Mishra** Hindi Department, Vidya Sagar University, Midnipur, District- West Medinipur (West Bengal) ◆**Dr. Alok Kumar** Chinmay Degree College, Ranipur, Haridwar (U.K.) ◆**Dr. B. S. Batra** S. M. J. N. (P.G.) College, Haridwar (U.K.) ◆**Dr. M. K. Srivastava** D. A. V. College, Kanpur, ◆**Dr. Vivek Dwivedi**, B.N.D. College, Kanpur, ◆**Dr. B. R. Agarwal** Mahila Mahavidyalaya Kidwai nagar, Kanpur, ◆**Dr. Purnima Tripathi** S. N. Sen Balika (P.G.) College, Kanpur,◆ **Dr. Tanveer Akhtar** Halim Muslim (P.G.) College, Kanpur◆ **Dr. Shobhita Agarwal** D.W.T. College, Kanpur ◆ **Dr. Indra Jeet Singh** P.P.N. College, Kanpur ◆ **Dr. Shailja Shukla** K.V.M. (P.G.) College, Kanpur ◆**Dr. Ritambhra** A.N.D. College, Kanpur, ◆ **Dr. Rajat Chaturvedi** Juhari Devi Girls (P.G.) College, Kanpur ◆ **Dr. Amit Saxena** Khalsa Girls Degree College, Harjender Nagar, Kanpur.

Review Board

Hindi-

Dr. Indradev. R. Singh Smt. R. P. Bhalodiya Mahila College, Upleta-Rajkot (Gujrat)

Dr. Suman Singh D.G.P.G. College, Kanpur

Dr. Sarita Chauhan M. C. M. D. A-V. College, Chandigarh (Punjab)

Dr. Rakhi Upadhyay D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

English-

Dr. Anil Kr. Tripathi Brahmavart Mahavidyalaya (P.G.) College, Mandhana, Kanpur

Dr. Neeta Kulshestra S.V. (P.G.) College, Aligarh

Dr. Nishi Dwivedi Armapur PG College, Kanpur

Dr. Sunita Awasthi A. N. D. College, Kanpur

Dr. Indu Mishra M. M. V. Kidwai Nagar, Kanpur

Sanskrit-

Dr. Savita Bhatt D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

Dr. Asharani Pandey D.G.(P.G.) College, Kanpur

Dr. Pushpa Yadav M. M. V., Kanpur

Dr. R. P. Chaturvedi R. S. G. U. (P.G.) College, Pukhrayan-Kanpur.

Education-

Dr. Reena Chandra D.A.V. College, Dehradoon

Dr. Upma Srivastava C.S.J.M. Campus, Kanpur

Dr. Pragya Srivastava M.M.V. (P.G.) College, Kanpur

Political Science-

Dr. Pappi Mishra D.G. (P.G.) College, Kanpur

Dr. Neeraja Choudhary D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon (Uttarakhand)

Dr. Seema Verma M.M.V., Kanpur

Dr. Pratima Gangwar Jwala Devi Girls (P.G.) Collge, Kanpur

Sociology-

Dr. Mridula Sharma D.A.V. (P.G.) College, Dehradoon
Dr. Rajiv Kr. Singh D.B.S. College, Kanpur
Dr. Satyam Dwivedi D.A.V.(P.G,) College, Dehradoon
Dr. Manju Singh D. G. P. G. College, Kanpur (U.P.)

Economics-

Dr. R. K. Dixit P. P. N. College, Kanpur
Dr. N. K. Garg S.M.J.N. (P.G.) College, Haridwar
Dr. Sangeeta Sitani M.M.V. P.G. College, Kanpur
Dr. (Smt.) Tanu Varshney S.V.P.G.College, Aligarh

Phychology-

Dr. Surbhi Mishra Juhari Devi P.G. College, Kanpur
Dr. Renuka Joshi D.A. V. College, D. Doon (U.K.)
Sri Ajai Kumar S.V.(P.G.) College, Aligarh (U.P.)
Dr. Pratibha Srivastava M.M.V. College, Kanpur

Math-

Dr. A. K. Singh V. S. S. D. College, Kanpur (U.P.)
Dr. Anila Tripathi D. A.V. College, Kanpur (U.P.)
Dr. A.K. Srivastava D. B.S. College, Kanpur (U.P.)

History-

Dr. Sanjay Mahashwari S.M.J.N.(PG)Clge, Haridwar
Dr. Upsana Verma D. G. (PG) College, Kanpur
Smt. Suman Shukla Govt.. M. M. V. Kannouj
Dr. Mamta Gangwar M. M. V. P.G. College, Kanpur

Drawing & Painting-

Dr. Vandana Sharma M. M. V. P.G. College, Kanpur
Dr. Jyoti Agnihotri Juhari Davi PG Colge, Kanpur
Dr. Raj Kishori Singh A.N.D. College, Kanpur
Dr. Sarika Bala A. N. D.N.N.M. College, Kanpur
Dr. Anjali Bishariya G.N.G.P.G. College, Kanpur

Physics-

Dr. K. K. Srivastava D.B.S. College, Kanpur
Dr. A. K. Agnihotri B.N.D. College, Kanpur
Dr. Navneet Mishra B. N. D. College, Kanpur
Dr. Manoj Kr. Verma S.V. (P.G.) College, Aligarh

Chemistry-

Dr. Alka Srivastava D. G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Sapna Shukla D. B. S. College, Kanpur
Dr. (Smt.) Roli Agarwal S.V. (PG) College, Aligarh
Dr. Dhananjay Singh P. P. N. College, Kanpur

Zoology-

Sri. Vikas Yadav S. V. (P.G.) College, Aligarh (UP)
Dr. Alok Kr. Srivastava D. B. S. College, Kanpur
Dr. Rekha Shukla D. A. V. College, Kanpur
Dr. Anjali Srivastava D. G. P. G. College, Kanpur

Botany-

Dr. Shakti Singh Sachan Govt. M. M. V. Kannouj
Dr. Archna Srivastava D. G. P. G. College, Kanpur
Dr. J. P. Shukla D. B. S. College, Kanpur (U.P.)
Smt. Seema Anand S.V.(PG) College, Aligarh (UP)
Dr. Santosh Bhatnagar A. N. D. College, Kanpur

Geography-

Dr. Bhanwarpal Singh S.V.(P.G.)College, Aligarh
Dr. Kshhma Tripathi D. G. P. G. College, Kanpur
Dr. G. L. Srivastava D. A.V. College, Kanpur (U.P.)
Dr. Anjana Srivastava D. G. (P.G.) College, Kanpur

Law-

Dr. P. N. Trivedi V. S. S. D. College, Kanpur (U.P.)
Dr. (Smt.) Gunjan Agarwal S.V.(PG) Clge, Aligarh
Sri. Fardeen Khan S.V.(P.G.) Collgee, Aligarh
Dr. Shahrajik Khalid S.V.(P.G.) Collgee, Aligarh

Music-

Dr. Sunita Dwivedi Juhari Devi (PG) College, Knp.
Dr. Nishtha Sharma M. G. (P.G.) College, Firozabad
Dr. Kajal Sharma A. N. D. College, Kanpur

Home Science-

Dr. Ranju Kushwaha Ju. Devi (PG) College, Kanpur
Dr. Alka Tripathi D. G. (P.G.) College, Kanpur
Dr. Richa Saxena Juhari Devi (PG) College, Knp.

B. Ed. -

Dr. Pragya Srivastava M.M.V. Kidwai Nagar, Kanpur
Dr. Reeta Srivastava A. N. D. College, Kanpur

Managing Editor & Publisher-
Sarveish Tiwari `Rajan'
World Bank Barra, Kanpur-208027

सभी संपादकीय दायित्व पूर्णतः अवैतनिक हैं।

नोट- प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक व प्रकाशक की सहमति अनिवार्य नहीं है। समस्त वाद का क्षेत्र कानपुर होगा।

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, प्रबन्ध संपादक एवं मुद्रक सर्वेश तिवारी `राजन'** द्वारा **सुपर ग्राफिक्स एण्ड प्रिन्टर्स** के-444, विश्व बैंक बर्रा-कानपुर-27 से मुद्रित एवं **सुपर प्रकाशन** के-444 `शिवराम कृपा', विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 से प्रकाशित। सम्पादक- **डॉ. अजेय सक्सेना मो.-09897093305। **सम्पर्क-** मो.- 08896244776, 09335597658, **E-mail: super.prakashan@gmail.com, Website: www.superprakashan.com**

सम्पादक की कलम से ....

वर्तमान युग को विज्ञान का युग कहना गलत न होगा। आस्था का स्थान बौद्धिकता के कारण तर्क और विज्ञान ने ले लिया है। मानव प्रत्येक वस्तु को समझकर, अध्ययन कर विज्ञान एवं तर्क की कसौटी पर कसना चाहता है। यह बात सामाजिक शोध पर भी लागू होती हैं। सामाजिक शोध भी विज्ञान पर आधारित होता जा रहा है क्योंकि हमारा दैनिक जीवन ही विज्ञान से अत्यधिक प्रभावित है। मानव आवश्यकताएँ चाहे भोजन हो, वस्त्र, मकान, स्वास्थ्य हो, की पूर्ति विज्ञान के माध्यम से ही होती है। व्यक्ति, परिवार, कुटुम्ब, ग्राम, कस्बे, शहर, प्रान्त, राष्ट्र एवं राज्य सभी विज्ञान के प्रभाव से वंचित नहीं हैं।

विज्ञान केवल यांत्रिकी नहीं, न ही प्रौद्योगिकी है। ग्रीन ने विज्ञान को अनुसंधान का एक तरीका माना है। इसके द्वारा तथ्यों के क्रमबद्ध तरीके से वर्गीकरण कर, अवलोकन कर, कार्य कारण सम्बन्धों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसी के द्वारा सिद्धान्तों का निर्माण एवं परीक्षा और भविष्यवाणी भी सम्भव है।

अगर सरलीकरण कर यह कहा जाए कि किसी वस्तु का व्यवस्थित ज्ञान ही विज्ञान है, तो गलत न होगा। यदि विश्व घटनाक्रम को समझा जाए तो निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ घटनाओं का संचालन स्वयं प्रकृति एक भौतिक परिस्थितियों द्वारा होता है। इसी कारण इसका अध्ययन भौतिक विज्ञानों द्वारा होता है। दूसरी ओर कुछ घटनाएँ राज्य, समाज एवं व्यक्तियों द्वारा संचालित होती है, ये सामाजिक विज्ञान की परिधि में आती है।

***'दि गुंजन'** (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल) के द्वारा सामाजिक विज्ञान की परिधि में आए मूलभूत समस्याओं को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन कर, तथ्यों का वर्गीकरण कर, क्रमों की स्वीकारोक्ति और सापेक्षित महत्व को जानने का विभिन्न शोधार्थियों द्वारा एक प्रयास है। मानव सभ्यता की गाड़ी में विज्ञान एवं अनुसंधान दो पहियों की भाँति हैं, जिसके द्वारा विकास का क्रम लगातार जारी है और सामाजिक घटनाओं और समस्याओं के सम्बन्ध में व्यवस्थित ज्ञान की प्राप्ति होती है।*

*मुझे उम्मीद है कि बल्कि विश्वास है कि शोधार्थी लगातार अज्ञान की प्रति अपनी जिज्ञासा बनाए रहते हुए, कारण एवं प्रभाव को जानने का प्रयास करते रहेंगे जिसके द्वारा नवीन विधियों की खोज जारी रहेंगी तथा प्राचीन विधियों को जाँचा परखा जाता रहेगा। **'दि गुंजन'** के अंक विभिन्न सामाजिक विज्ञान के क्षेत्रों में शोध से जुड़े शोध पत्रों के माध्यम से ज्ञान की गंगा का संचालन करते रहेंगे।*

अजेय सक्सेना

- डॉ. अजेय सक्सेना

सम्पादक - 'दि गुंजन'
(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल)
प्राचार्य
डी. ए. वी. (पी. जी.) कॉलेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

Index

Editorial Board, Editorial

Dr. Arun Kumar Dixit : Chief Editor - `The Gunjan' (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed Research Journal) & (Ex. Principal) Sri Varshney Mahavidyalaya, Aligarh - 202001 (Utter Pradesh). &

Dr. Ajai Saxena : Editor - `The Gunjan' (Multi Disciplinary Quarterly International Refreed Research Journal) & (Principal) : D. A. V. (P. G.) College, Dehradoon - 248001 (Uttarakhand).

1-	'लघु उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य'	– डॉ. रीता श्रीवास्तव	06
2-	बहुदलीय व्यवस्था लोकतन्त्र के लिए घातक	– डॉ. आलोक कुमार सिंह	09
3-	जनपद एटा का सांस्कृतिक अध्ययन	- मंजू शर्मा	12
4-	धर्म निरपेक्षता – एक विश्लेषण	– उषा सैनी	14
5-	चित्रकला की अद्भुत संकल्पना : विष्णुधर्मोत्तरपुराण	- डॉ. सुधा गुप्ता	18
6-	भारत श्रीलंका सम्बन्ध	- डॉ. इन्द्रजीत कौर	22
7-	कानपुर नगर-देहात जनपद के ग्रामीण विकास में क्षेत्र से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर बैंकों की भूमिका की नियोजन योजना	- डॉ. अजय कुमार तिवारी	24
8-	रुक्मिणीहरण ईहामृग एवं उर्वशीसार्वभौमेहामृग के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	– श्रीमती सन्नो देवी	28
9-	भारतीय ज्ञान भण्डार परिवर्तन और शिक्षा व्यवस्था	– डॉ. रीना चन्द्रा	34
10-	मूल्यपरक शिक्षा - वैदिक परिप्रेक्ष्य में	- डॉ. (श्रीमती) ममता शुक्ला	38
11-	भारत में आर्थिक उदारीकरण : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में	– डॉ. ए. के. जैन	40
12-	मत्स्य पुराण का प्राकृतिक अध्ययन : प्रकृति, संस्कृति एवं आर्थिक संसाधन	- डॉ. किरन तिवारी	43
13-	Socio-Economic Development in Satara District	- Prof. Magar Tanaji Raosaheb	47
14-	'मुन्नी मोबाइल' एवं 'आवा' उपन्यास में बाजारवाद की दुनियाँ में महिलाओं की स्थिति	– श्रीमती प्रिया गोसावी	53
15-	श्रीकृष्ण चरितामृतम् में निरूपित धर्म का स्वरूप व समीक्षा	- डॉ. मनप्रीत कौर	57
16-	The Matic Analysis of Short Stories of Khushwant Singh	- Dr. Chhaya Singh	59
17-	औद्योगिक विकास के लिए फतेहपुर जनपद में उपलब्ध अन्तर संरचना	- डॉ. मधू बाजपेयी	65
18-	वाल्मीकि रामायण का सांस्कृतिक अनुशीलन	- डॉ. उदयराज यादव	70
19-	India's Exports and Import : Reforms and Performance	- Deepti Maurya	76
20-	ब्रह्माण्डोत्पत्ति	- डॉ. प्रभाषलता बाजपेयी	87
21-	भगवान राम का आदर्श व्यक्तित्व	- डॉ. अरविन्द कुमार चतुर्वेदी	91
22-	मध्ययुगीन हिन्दी जैन काव्य में जैन प्रबन्ध कृतियों का सामान्य परिचय	- डॉ. नीतू शुक्ला	93

23-	जनजातीय विकास में कौशल शिक्षा की भूमिका एक चिंतन	- प्रेम शंकर अवस्थी	98
24-	श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में भाव ध्वनि	- डॉ. वर्षा गौड़	101
25-	पुरानी नींव पर नया निर्माण : अतिशय	- श्रीमती अर्चना शर्मा	105
26-	जी.एस.टी. के लाभ-दोष, राज्यों के मध्य वितरण एवं दोहरे जी.एस.टी. के लाभ का निर्धारण	- डॉ. सुशील श्रीवास्तव	109
27-	**Further Perspectives of Geography through human Consciousness**	- Indranil Chingri	113
28-	तनाव **(Stress)**	- Dr. Sufia	116
29-	लोकतंत्र के पुरोधा पण्डित दीनदयाल उपाध्याय	– डॉ. रवेन्द्र राजपूत	119
30-	महर्षि गौतम के दर्षन की सामाजिक विचारों में भूमिका	– संध्या वार्ष्णेय, डॉ. ममता गुप्ता	123
31-	कौटिल्य के आर्थिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता	- डॉ. संगीता सितानी, भावना द्विवेदी	126
32-	अजातशत्रुर्नव एव भूतले : पं. रुद्रप्रसादोऽवस्थी	- डॉ. उमेश प्रसाद त्रिवेदी	132
33-	समाजवादी नायक : राम मनोहर लोहिया	- डॉ. सीमा वर्मा	134
34-	पुराणों का वर्गीकरण एवं विष्णु पुराण	- डॉ. विनीता वर्मा	138
35-	बौद्धमत की असंगतियों का खण्डन	- डॉ. प्रतिमा अवस्थी	141
36-	गीता और परोपकार	– डॉ. अनिल कुमार गुप्ता	143
37-	जयशंकर प्रसाद की रचनाओं का आलोचनात्मक विमर्श	- ज्योती सिंह	149
38-	**Globalization and Womanhood in India Still an Awaited Need**	- Dr. Priya Srivastava	154
39-	**Managing Inflation : Opportunities and Challenges Organized Retail Industry**	- Dr. Sudhanshu Chamanji	158
40-	**Fused Hard Sphere Chain Fluids**	- K. B. Kushwaha	163
41-	स्त्री–विमर्श : मीरा	– डॉ. वाणिश्री	173
42-	वर्तमान भारतीय परिवेश में महिला सशक्तिकरण : एक आवश्यकता	– सबीहा अंजुम	178
43-	उत्तराखण्ड की बुक्सा जनजाति की सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था का विश्लेषण	– डॉ. शेफाली शुक्ला	182
44-	**Ambedkar's Vision and his Mission : A Review**	- Dr. Susheel Kumar	186
45-	आधुनिक तकनीकी शिक्षा प्रणाली में ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था : एक अध्ययन	– डॉ. रेनू कुरील	193

◈◈

ISSN : 2349-9273

'लघु उपन्यासों का शिल्पगत वैशिष्ट्य'

– डॉ. रीता श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष – हिन्दी विभाग,
बाबू जे. एस. जी. पी. जी. कालेज,
सुमेरपुर–उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
drreetasrik@gmail.com

लघु–उपन्यास साहित्य की अन्य विधाओं की भांति एक कला है। इसलिए वह केवल जीवन की अनुकृति ही नहीं है, अपितु नवनिर्माण के सौन्दर्य और सौष्ठव को लेकर चलता है। लघु–उपन्यास का रचयिता जब रूप निर्धारण करता है, तब मानव जीवन को एक रूप में ढालकर रेखाओं के भीतर ढालता है। इसी से वह विशिष्ट चित्र तैयार करता है, जिसमें यथार्थ जीवन का स्वरूप निखर आता है। ''यह सच है कि उपन्यास में जीवन इतनी शक्ति और तीव्रता के साथ प्रवाहित होता है कि उसके लिए कलाकार द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करना स्वाभाविक है।''[1] परन्तु लघु उपन्यास में सीमा उल्लंघन का अवसर कलाकार को नहीं मिलता, क्योंकि आज के परिवर्तित परिवेश और स्थिति में अनेक जटिलताओं के साथ असंख्य समस्याओं को लघु उपन्यास में ही सूक्ष्मता और सांकेतिकता से चित्रित किया जा सकता है।

आज लघु उपन्यास में ''कथा विस्तार कम और अन्तर्द्वन्द का विश्लेषण अधिक होता जा रहा है। कथा के विस्तार को कम करते हुए सूक्ष्म विवेचन की ओर लेखक का ध्यान जाने लगा है।''[2]

लघु उपन्यास अपने रूप में जीवन के मधुमय और साधारण तथ्यों को भी पूरी स्वच्छता और स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करता है। लघु उपन्यासकार को न तो पद लालित्य की चिन्ता होती है और न ही गीतात्मकता की क्योंकि वह यथार्थ जीवन की रोजमर्रा की भाषा में प्रभावकारी सृष्टि कर लेता है। ''बौद्धिक एवं वैज्ञानिक वातावरण के कारण पाठक की संवेदना आज कथा वर्णनों में उलझी नहीं रह सकती, लम्बे विवरण के साथ ही कथा उसे व्यर्थ प्रतीत होती है, वह चाहता है कि लघुतम वर्णन के साथ गहन और सूक्ष्म चिन्तनपरक तथ्य ही उपन्यास में स्थान प्राप्त करें। फलतः उपन्यास का कलेवर तो छोटा हुआ ही उसकी तकनीक में भी परिवर्तन आया।''[3]

शिल्प की दृष्टि से जितने प्रयोग उपन्यास साहित्य में हुये उससे अधिक प्रौण की प्रयोग लघु उपन्यास साहित्य में। यदि कहा जाय कि कलात्मक शिल्प का विकास उपन्यास की अपेक्षा लघु उपन्यास मे अधिक हुआ है तो अनुचित न होगा । वर्तमान स्थिति में जितनी भी रचनाएँ उपन्यास को लेकर आ रही है, वे अधिकतर लघु उपन्यास पर ही आ रही हैं। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि शिल्प और प्रयोग की दृष्टि से लघु उपन्यास की यह विद्या ही विकसित होगी।

'शिल्प' के सम्बन्ध में आज एक से अधिक शब्दो का प्रयोग होता है। जिनका भिन्न–भिन्न अर्थ है। कई बार हिन्दी में अंग्रेजी सेटिंग तथा कांसट्रक्शन के लिए भी शिल्प शब्द का प्रयोग होता है, जबकि दोनों के भिन्न –भिन्न अर्थ हैं। प्रत्येक की विस्तारपूर्वक व्याख्या और स्वरूप अंग्रजी के विद्वानों ने किया है। ''शिल्प अथवा रचना का सम्बन्ध उस परिणति से है जो कृति को सभी रचना विद्या के तत्वों के सहयोग से कृतिकार की प्रतिभा द्वारा प्राप्त होती है। अंग्रजी का टके नीक शब्द इसके सर्वाधिक निकट है। यद्यपि मेकनिक्स शब्द से भी शिल्प विधि का बोध होता है। पर इसके साथ एक विशेष प्रकिृया का भाव लगा रहता है। जो शिल्प के निर्माण में महत्वपूर्ण

भूमिका अदा करती है। डॉ. त्रिभुवन सिंह ने इस विषय पर विस्तार से विचार करते हुये कहा है कि ''वास्तव मे शिल्प रचना एक विशेष पद्यति है। जिसमें उपन्यास के सभी तत्वों का समावेश होता है। कई बार गठन सौन्दर्य के कारण किसी रचना विशेष का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। लघु उपन्यासों में धर्मवीर भारती का ''सूरज का सातवाँ घोड़ा''

इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। अपने गठन और शिल्प सौन्दर्य में यह रचना बहुत अधिक सफल हुयी है'' ।[4]

''शिल्प से तात्पर्य वस्तुतः किसी चीज को बनाने या रचने के ढंग से व मनुष्य को शिल्पविधि के नाम से पुकारा जाता है। अतः शिल्प द्वारा लेखक अपनी मूल प्रेरणा, दृष्टिकोण, उपद्देश्य आदर्श अथवा कुल मिलाकर विषय वस्तु के अभिव्यक्ति प्रदान करता है।'' [5]

अभिव्यक्ति का कोई निश्चित माध्यम नहीं रहा है। समय स्थिति और वातावरण के अनुरूप सृजकों को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम बदले में पड़े यही कारण है कि शिल्प के अनेक नवीन और बदलते हुये प्रयोग हमें प्रयोग हमें लघु–उपन्यासों में देखने को मिलते हैं। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक ई. एम. फास्टर ने एक स्थान पर कहा ''कलाकार सदैव अपनी तकनीक की खोज करते हैं और उनका यह प्रयोग तब तक जारी रहेगा जब तक उनका कार्य उन्हें उद्दीप्त करता रहेगा।''[6]

विषय को सजा सँवारकर ही कलाकार प्रस्तुत करता है। उसे कोई विशिष्ट स्वरूप न देकर और बिना तराशे प्रस्तुत करने में कोई कलात्मकता नहीं रहती । अर्नाल्ड वेनेट ने एक स्थान पर कहा है– ''कलाकार को प्रमुखतया वर्ण्य विषय में नहीं उसके प्रस्तुतीकरण में रुचि रखनी चाहिए। उसमें टेकनीक तथा रूप के प्रति अनुराग होना चाहिए'' । [7]

वैनेट के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कलाकार को अपनी रचना के गठन एवं शिल्प पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। इसी के साथ उसे रूप की भी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जब तक कोई कलाकार शिल्प शैली रूप एवं विन्यास पर संतुलित होकर ध्यान नहीं देगा, तब तक उसकी रचनाएँ सफलता को प्राप्त नहीं कर पायेगी। कलाकार जिस लक्ष्य को ध्यान में रखकर रचना निर्माण करता है, उसमें वह न तो वर्ण्य विषय की उपेक्षा कर सकता है और न ही शिल्पविधान की। रचना के अन्य तत्वों में ही शिल्प की सफलता है।

''उपन्यास रचना एक कला है और उसका शिल्प कला की चरम परिणति। अतः शिल्प और कला यदि एक दूसरे के पर्याय नहीं तो परस्पर सम्बन्धित अवश्य हैं। सौन्दर्य सृष्टि के प्रसंग और उसकी अनुमति के क्रम में कला अपने आप अवतरित होती है।''[8]

रचनाकार अपनी कृति में घटनाएँ, विषय और प्रसंगों को लेकर शिल्प की सहायता से उन्हें कलात्मक रूप देता है और कला की निमित्ती के मूल में सौन्दर्य की अनुभूति ही है। रचना का भी सौन्दर्य शिल्प के द्वारा शिल्प का माध्यम प्राप्त होता है। यदि हम ध्यानपूर्वक इसें देखें तो लद्यु–उपन्यास की विकास की यात्रा में इस दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग हुये है। पर केवल नवीन प्रयोग की दृष्टि से अनेक नवीन प्रयोग हुये हैं। पर केवल नवीन प्रयोग की दृष्टि से कोई रचना सफल नहीं होती । इस विषय में अज्ञेय जी ने कहा है– ''केवल प्रयोगशीलता किसी रचना को बना नहीं देती हमारे प्रयोग का पाठक या सहदय के लिए कोई महत्व नहीं है जो हमें प्रयोग द्वारा प्राप्त हो।''[9]

शिल्प के सम्बन्ध में सबसे पहले हमारे सामने जो रचना आती है, वह है ''सूरज का सातवाँ घोड़ा'' धर्मवीर भारती की यह रचना कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त सशक्त है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार– ''सूरज का सातवाँ घोड़ा'' वस्तु वस्तु निर्माण के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग है। जिसमें क्रमबद्ध कथा का मिलना कठिन है। ''[10]

शिल्प की दृष्टि से दूसरा लघु उपन्यास है शिवप्रसाद मिश्र रुद्र का ''बहती गंगा'' जिसमें कोई पात्र न तो नायक है न ही सूत्रधार जिस प्रकार मानवता का विकास होता है। उसी प्रकार बहती गंगा की सत्रह कहानियों में नायक की भी विकास हुआ है।''[11] किन्तु यह नायक का विकास वस्तुतः नायक का न होकर सम्पूर्ण परिवेश का है। क्योंकि वही नायक आगे चलकर दूसरे प्रसंग वर्णन करने लगता है। इस रचना में नायक की दृष्टि से नितान्त नये प्रयोग हुये हैं। इस प्रकार के शिल्प को लेकर चलने वाला सम्भवतः एक ही लघु–उपन्यास है। साथ ही इसका वैशिष्ट्य भी । वस्तुतः इसमें लगभग दो सौ वर्ष का काल सम्मिलित है। वास्तव मुं यह काशी नगरी की कहानी है जिसका अपना सांस्कृतिक महत्व है। इसमें दो सौ वर्षो के इतिहास का इस प्रकार वर्णन किया गया है कि समस्त काशी–नगरी की परम्परा ही मानों जीवित हो उठी हो।

राही मासूम रज़ा का लघु उपन्यास ''टोपी शुक्ला'' समय की कहानी होते हुए भी व्यक्ति की कहानी हो गयी है। टोपी शुक्ला उस व्यक्ति की कहानी है, जो सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, व्यक्ति सभी मोर्चो पर हारा है। इस व्यक्ति की घर के मूल में यदि कुछ है, तो वह है देश का विभाजन जिसने एक ही रात में व्यक्ति से व्यक्ति को बाँट दिया। आज जो मित्र थे, भाई थे, कल दुश्मन हो गये।

राष्ट्रीयता के गीत गाने वाले सभी असहाय हो गये और देखते–देखते देश हिन्दुस्तान के टुकड़ो में बँट गया। सम्भवतः इ स रचना मुें सबसे पहले देश के विभाजन को लेकर साफगोई से विभाजन की करुण कहानी को कहा गया।

'टोपी शुक्ल' व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक वेदना है। ''वे दिन'' निर्मल वर्मा का लघु–उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन मुहावरे की तलाश है। जिसमें लेखक रिपोतार्ज और संस्मरण एक साथ प्रस्तुत करता है। स्वयं भोगे हुए आनन्द को लेखक ने प्रस्तुत किया है। जिसमें बीते हुए जीवन की अनेक घटनाएँ उभरती हैं। विदेश में अध्ययन के लिए गये हुए भारतीय छात्र की कहानी है। साथ ही इसमें यात्री के जीवन की कठिनाईयाँ एवं उनके रोमानी जीवन को वर्ण्य विषय बनाया गया है, जिसमें समय और स्थान की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकारा गया है।

''बेघर '' ममता कालिया का ऐसा लघु उपन्यास है जिसमें कथ्य और प्रतिपाद्य का नवीन शिल्प दिखाई देता है। ममता कालिया ने स्पष्ट रुप से उन प्रश्नों के उत्तर दिये हैं जो आम तौर पर नारी की नैतिकता को लेकर उठाये जाते हैं। इस शिल्प के विषय में त्रिभुवन सिंह ने कहा है– '' पर उसके कलात्मक अन्त के सम्बन्ध में इसलिये कुछ कहना है कि शिल्प की दृष्टि से सचमुच वह नवीन है। [12] इस रचना में पति का सन्देह बढ़कर पति–पत्नी के सम्बन्धों को लड़खडाता है।'' पति परमजीत के मन में कुवाँरेपन की धारण उसके जीवन की दिशा ही बदल देती है। वह पत्नी संजीवनी से टूटकर अपनी निजता खो बैठता है।'' [13]

शिल्प और गठन की दृष्टि से यह एक उल्लेखनीय रचना है। गिरधर गोपाल का ''कदील और कुहासे'' शिल्प और रचना की दृष्टि से उल्लेखनीय लघु–उपन्यास है। यह रचना नगरीय परिवेश और बोध से जुड़ी है। इस रचना में उसी पीढ़ी की बात उठाई गयी है जो स्वातन्त्रय के बाइस वर्षो में भटक चुकी है जिसकी कोई दिशा नहीं और ना ही कोई अस्तित्व अनागत–आगत के बीच जो पीढ़ी राह खोज रही है, उसी का चित्रण इसमें हुआ है। इस लघु उपन्यास का वैशिष्ट्य यह है, कि इसमें सारी कहानी एक शाम की है। लघु–उपन्यास का सम्पूर्ण कथ्य शिल्प इसके पात्र किसू का होकर उसी की पूरी पीढ़ी बन जाता है।'' इस उपन्यास के सब पात्र टूटते रहते हैं, लेकिन झुकने से इन्कार करते हैं। सुरेन्द्र एक वाद है जो टूटने की स्थिति में व्यवस्था का पुराना वाद बन जाता है और यह आज के बख्त का एक पहलू है।'' [14]

इन रचनाओं के अतिरिक्त भी अन्य रचनाएँ हैं, जो लघु उपन्यास शिल्प के वैशिष्टयगत विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। गत बीसवीं सदी में जो लघु–उपन्यास प्रकाशित हुये वह उनके विकसित वैशिष्ट्य का प्रमाण है। प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व ही शैली का आरम्भ और अन्त है। बनार्ड शा का यह कथन शैली की उपयोगिता एवं महत्व पर प्रकाश डालता है। आज का लघु–उपन्यासकार अत्यन्त सजग है, वह समसामयिक समस्याओं का सूक्ष्म विवेचन कर रहा है, जिसमें वह यथार्थवादी दृष्टिकोण को लिए हुए है। सजग कलाकार युगीन समस्याओं का चित्रण अपनी रचनाओं में लिखे गये व्यंग्य से करता है। प्रेमचन्द से लेकर नये रचनाकारों तक में यह विशेषता हमें देखने को मिलती है।

इस प्रकार लघु–उपन्यास अपनी नवीनतम विधागत विशेषताओं के कारण अधिक सफल एवं लोकप्रिय हो रहा है। उपन्यासकारों ने 'लघुता' पर अपना ध्यान केन्द्रित करके नवीनतम मानवीय अनुभूतियों को मार्मिकता एवं स्वाभाविकता के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। लघु–उपन्यासों का प्रचलन अब तीव्रता के साथ रहा है जो इसकी शिल्पगत विशेषता और विधा की मौलिकता का अकाट्य प्रमाण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा. राम अवध द्विवेदी : आलोचना उपन्यास विषेषांक, पृ0 32.
2. डा. विजयेन्द्र स्नातक : हिन्दी के लघु उपन्यासों की शिल्प भूमिका, पृ. 06
3. हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प – माधुरी खोसला , पृष्ठ सं. –06
4. डा. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ सं. –240
5. माधुरी खोसला : हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प, पृष्ठ सं. –38
6. ई. एम. फास्टर : Two cheers for moeracy page no- 103
7. अर्नाल्ड वैनेट – Journals I
8. डा. त्रिभुवन सिंह : शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ सं.–144
9. अज्ञेय : भूमिका दूसरा सप्तक
10. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ सं.– 255
11. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ सं.– 255
12. त्रिभुवन सिंह : हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग, पृष्ठ सं.– 265
13. डा. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, पृष्ठ सं. – 95
14. डा. इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी उपन्यास पहचान और परख, पृष्ठ सं. – 12

◈◈

बहुदलीय व्यवस्था लोकतन्त्र के लिए घातक

– डॉ. आलोक कुमार सिंह
अध्यक्ष – राजनीति विज्ञान विभाग,
डी. एन. (पी. जी.) कॉलेज,
फतेहगढ़–209601 (फर्रुखाबाद)
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
aloksingh679@gmail.com

लोकतन्त्र शासन प्रणाली की उत्कृष्टतम् व्यवस्था है, जिसमें शासन संचालन की बागडोर जनप्रतिनिधियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष तौर पर जनता के ही हाथों में निहित रहती है। इस प्रकार जनता अपने भविष्य की दशा–दिशा का निर्धारण व चयन करने में सक्षम होती है। सम्भवतः इन्हीं कारणों के दृष्टिगत स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् संविधान सभा द्वारा भारत के लिए लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली को चुना गया। बहुदलीय होने के बावजूद आरम्भिक वर्षों में एकदलीय (कांग्रेस का) एक छत्र राज्य राष्ट्र में रहा तथा नौवीं लोक सभा के अनन्तर यह वर्चस्व टूटा तथा त्रिशंकु संसद व गठबन्धन सरकार की परिकल्पना का प्रादुर्भाव भारतीय राजनीति में हुआ। 1990 के पहले क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय राजनीति में ही भूमिका निभाते थे, लेकिन 1990 के बाद बहुदलीय सरकारों का जो क्रम आरम्भ हुआ उसमें क्षेत्रीय राजनीतिक दल राष्ट्रीय भूमिका निभाने की स्थिति में आ गए। वर्तमान समय में केन्द्र के दोनों बड़े गठबन्धनों राष्ट्रीय लोकतान्त्रिक गठबन्धन तथा संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन में क्षेत्रीय दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

बहुदलीय व्यवस्था में राजनीति के अपराधीकरण क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद तथा भ्रष्टाचार के पनपने के पर्याप्त अवसर विद्यमान रहते हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति में लगभग सभी दलों का एकमात्र ध्येय अधिकाधिक सीटों पर चुनाव जीतना होता है। साध्य की प्राप्ति हेतु मनोवांछित साधन अपनाने की खुली छूट उम्मीदवार को रहती है। चुनावी खर्चों की प्रतिपूर्ति हेतु काले धन का भी जमकर प्रयोग किया जाता है। ऐसे में सत्ता हथियाने के पश्चात माननीयों का सर्वप्रथम उद्देश्य सीट जीतने में हुए समस्त खर्चों की चक्रवृद्धि ब्याज की दर से वसूल होता है। क्या ऐसी परिस्थितियों में सरकार की जन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ लक्षित वर्ग तक पहुँच सकता है? सरकार द्वारा अवमुक्त बजट धनराशि रूपी जल का 'सरकारी नल' तो भ्रष्ट राजनीतिज्ञों व अधिकारियों तथा उद्योगपतियों के घर पर लगा दिया जाता है तथा आम जनता को नसीब हो पाती है– 'पोलियो की दो बूँद खुराख के समान मात्रा'। फिर शुरू होता है आजादी के 72 वर्षों बाद भी विश्व के सबसे बड़े लोकतान्त्रिक राष्ट्र में अपेक्षित विकास न हो सकने के लिए उत्तरदायी कारणों पर चर्चा–परिचर्चाओं का दौर। यह सब निरर्थक ही है जब तक कि प्रचलित बहुदलीय व्यवस्था को छोड़कर वैकल्पिक शासन प्रणाली न अपनाई जाए।

बहुदलीय व्यवस्था राष्ट्र की एकता व अखण्डता के लिए भी अमरबेल के समान है जिसके तहत् दलीय/क्षेत्रीय/जातीय इत्यादि प्रकार के संकीर्ण हितों की तो पूर्ति हो जाती है, परन्तु राष्ट्रीय हित हमेशा गौण रह जाते हैं। यदि अलगाववादी शक्तियों द्वारा समर्थित पार्टी किंग मेकर की भूमिका में आ जाएं तो शत्रु राष्ट्रों का तो अभीष्ट ही सिद्ध हो जाएगा। राष्ट्र की एकता व अखण्डता की कीमत पर बहुदलीय व्यवस्था चाहे वह कितनी भी लाभदायक क्यों न प्रतीत होती हो, को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। यह हमारे धार्मिक व भाषाई विविधताओं से परिपूर्ण सामाजिक ताने–बाने व सम्प्रदायिक सौहार्द के मूल भी विशेष संचरण करती है।

बहुदलीय व्यवस्था में संसद व विधायिका में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर पाना दुष्कर हो गया है। फलतः गठबन्धन सरकारें समय के अनुरूप मजबूरी बन चुकी है। विगत वर्षों के लोकसभा चुनावों के परिणामों के परिप्रेक्ष्य में इसे समझा जा सकता है। विगत अनुभवों के आधार पर कहा जा सकता है कि छोटे–छोटे दलों का उभरना लोकतंत्र के लिए फलदायक नहीं रहा है। किंग मेकर की भूमिका वाले दल द्वारा अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति हेतु सबसे बड़े सत्ताधारी दल (बहुमत से वंचित) को हितों के टकराव वाले मुद्दों पर निर्णयन के समय समर्थन वापसी की धमकी देकर ब्लैकमेल किया जाता है। ऐसे में अनेक महत्वपूर्ण आर्थिक व सामरिक मामलों में सदन में वांछित विधेयक पारित करा पाना टेढ़ी खीर बन जाता है, कई मंचों पर माननीय प्रधानमंत्री जी स्वयं इस बात को स्वीकार कर चुके हैं। इससे भारतीय उद्योग वर्ग तो खासा हताश है, वहीं विदेशी निवेशकों पर भी बुरा असर पड़ रहा है। यह स्थिति राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में बाधक है, क्या हम तीव्रगति से बढ़ रही जनसंख्या की मूलभूत आवश्यकताओं मात्र की भी पूर्ति 5–0 प्रतिशत सरीखी आर्थिक वृद्धि दर (विश्व बैंक के नवीनतम आकलन के अनुसार वर्ष 2013–14 में यह 4.7 प्रतिशत अनुमानित की गई है) से करने में सक्षम हो सकेंगे? भविष्य में बेरोजगारी और गरीबी जैसी समस्याएं हमारे समक्ष और अधिक चुनौतियाँ प्रस्तुत करेंगी। ऐसे में तथाकथित आर्थिक उन्नति से एक बड़ा वर्ग अपेक्षित रह जाएगा। क्या ऐसा ही लोकतन्त्र स्थापित करने का स्वप्न हम स्वतन्त्रता दिलाने की खातिर अपनी प्राणाहुति देने वाले अमर बलिदानियों द्वारा देखा गया था?

अत्यधिक दलों के होने के बावजूद नए–नए दलों का उभरना भी यह दर्शाता है कि आम जनमानस तत्समय उपस्थित बहुसंख्यक दलों की कार्यप्रणाली व आचार–व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं हैं। दिल्ली में आम आदमी पाटी (आप) का उभरना तथा विधान सभा चुनावों में ऐतिहासिक उलट–फेर करना इसी आक्रोश की एक झलक है, कहने का आशय यही है कि दशकों पुरानी बहुदलीय व्यवस्था हमें निराशा मात्र ही दे सकी है। लेकिन अब सवाल यह उठता है कि इसके लिए हम दोष किसे दें और सबक किये सिखाएं? किसी दल विशेष को सबक सिखाने की कोशिश में विधायिका त्रिशंकु की स्थिति में आ जाती है। विकल्प बचता है– गठबन्धन सरकार या 'दोबारा चुनाव'। ये दोनों ही स्थितियाँ लोकतन्त्र के लिए हानिकारक है। क्योंकि गठबन्धन सरकारों में दबाव समूह अत्यधिक प्रभावी हो जाता है और दोबारा चुनाव का वित्तीय बोझ भी आम जनता पर ही पड़ता है, बावजूद इसके पूर्ण बहुमत की कोई गारण्टी नहीं होती।

सीमित संख्या में दलों के होने की स्थिति में (आदर्श रूप में द्विदलीय पद्धति में) मतदाता व विपक्षी पार्टी के पास सत्तारूढ़ दल की कारगुजारियों की समीक्षा मूल्यांकन व आलोचना करने का समुचित अवसर तो प्राप्त होता ही है, साथ ही सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों के प्रति सत्तासीन पार्टी विशेष का उत्तरदायित्व भी आसानी से निर्धारित किया जा सकता है। सत्तारूढ़ दल के निरंकुश होने की स्थिति में आगामी चुनावों में सत्ता परिवर्तन करने की शक्ति मतदाता के पास रहती है। परन्तु बहुदलीय व्यवस्था में खसकर उस स्थिति में जब कि गठबन्धन सरकार में किसी राज्य/क्षेत्र विशेष के दल द्वारा कोई ऐसा कार्य करने के लिए सबसे बड़े सत्तारूढ़ दल को विवश कर दिया गया हो। वैसा अवसर सुलभ नहीं हो पाता (खासकर क्षेत्रीय दल के इतर क्षेत्र के मतदाताओं को) स्वार्थी दलों द्वारा दूसरों के कन्धे पर रखकर बन्दूक चलाई जाती है। लेकिन ऐसे अवसर पर हताहत आम जनता ही होती है।

लोकतन्त्र में जनता के पास सरकार चुनने हेतु विकल्पों का होना अच्छा रहता है। वास्तव में तभी वह अपने वोट की शक्ति का इच्छानुरूप प्रयोग कर पाता है। परन्तु अत्यधिक विकल्प होने की स्थिति भी उसे मंझधार में खड़ा कर देती है। दूध का जला मतदाता छाछ भी फूँक–फूँक कर पीना चाहता है। भूतकालिक अनुभव उसके मन–मस्तिष्क में राजनैतिक दलों के प्रति निराशा उत्पन्न कर देते हैं। कम वोटर टर्न आउट का एक प्रमुख कारण भी यही है। वैश्विक परिदृश्य पर दृष्टिगत करने पर भी दृष्टव्य होता है कि अधिकांश विकसित व विकासशील राष्ट्रों में बहुदलीय नहीं, बल्कि द्विदलीय शासन व्यवस्था है। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र जिसे अनेक राष्ट्रीय आर्थिक, सामरिक व लोक कल्याण के मामलों में त्वरित व प्रभावी निर्णय लेने की आवश्यकता है, में बहुदलीय व्यवस्था प्रगति रथ के मार्ग को अनावश्यक अवरोधित करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बहुदलीय व्यवस्था लोकतन्त्र के लिए घातक है। अतः व्यक्ति समाज व राष्ट्रहित में हमें वैकल्पिक शासन व्यवस्था (द्विदलीय अथवा दलविहीन) के चयन की प्रक्रिया अति शीघ्र प्रारम्भ करनी चाहिए ताकि लोकतन्त्र की मूल भावना– 'जनता का जनता द्वारा जनता के लिए शासन को सही मायनों में साकार किया जा सके।

विपक्ष में तर्क–महेन्द्र सिंह पटवारी के अनुसार एक सच्चे लोकतन्त्र में दलविहीन शासन व्यवस्था की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। दलीय व्यवस्था की अगर बात की जाए तो यह यह भी दो प्रकार की होती है। एक

द्वि–दलीय व्यवस्था तथा दूसरी बहुदलीय–व्यवस्था ब्रिटेन और अमरीका में जहाँ द्विदलीय व्यवस्था है वहीं भारत में बहुदलीय व्यवस्था कायम है।

निःसन्देह भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है, जिसमें विभिन्न संस्कृति और समुदाय के लोग आपस में मिल–जुलकर एक साथ रहते हैं, जो कि बहुलता में एकता का सबसे बड़ा उदाहरण है। इसी को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय लोकतन्त्र की की मजबूती के लिए बहुदलीय व्यवस्था को अपनाया था। इसमें कोई दो–राय नहीं हैं कि इसी कारण आज भारतीय लोकतन्त्र एक मजबूत लोकतन्त्र माना जाता है। अब तक भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में हमने देखा है कि जब–जब सत्तारूढ़ दल ने मनमानी की है और विपक्ष अपनी भूमिका निभाने में कमजोर पड़ा है, तब–तब तीसरे मोर्चे के दलों ने ही सरकार बनाई है। हालाकि तीसरे मोर्चे की सरकारें कभी भी अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी, लेकिन इन्होंने दोनों प्रमुख दलों कांग्रेस और भाजपा के हाथ से सत्ता छीनकर उन्हें उनके रास्ते से भटकने का जोरदार अहसास समय–समय पर कराया है।

पिछले दशक में जब से हमारे देश में निरन्तर मिली–जुली सरकारें और जोड़–तोड़ की राजनीति अस्तित्व में आई है, तब से बहुदलीय व्यवस्था की बजाय दल–विहीन अथवा द्वि–दलीय व्यवस्था अपनाने के लिए एक नई लेकिन निरर्थक बहस शुरू हो गई है। गलती से अगर हमारे यहाँ दल–विहीन या द्वि–दलीय शासन व्यवस्था लागू कर दी गई तो राजनीति में व्याप्त परिवारवाद, सामंतवाद और भ्रष्टाचार इतना बढ़ जाएगा कि एक आम आदमी के राजनीति में आगे बढ़ने के सारे रास्ते ही बन्द हो जाएंगे। प्रारम्भ में वर्णन आया है उसके अनुसार हमारे लोकतन्त्र में दल–विहीन व्यवस्था की तो गुंजाइश ही नहीं बचती, तब भारतीय लोकतन्त्र के परिप्रेक्ष्य में द्विदलीय तथा बहुदलीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन करें तो हम पाएगे कि अब तक जितने भी बड़े–बड़े घोटालों का पर्दाफाश हुआ है और वर्तमान में भी नित नए घपले उजागर हो रहे हैं, इसका प्रमुख कारण भारत में बहुदलीय व्यवस्था का होना ही है। वरना द्विदलीय व्यवस्था में तो मिल–बाँटकर खाने की पद्धति विकसित हो जाती है और चोर (पक्ष)–चोर (विपक्ष) मौसेरे भाई बन बैठते हैं।

अप्रत्यक्ष रूप से द्वि–दलीय व्यवस्था का यह दोषपूर्ण उदाहरण कुछ हद तक हमारे देश क मध्य प्रदेश और राजस्थान राज्य में देखा जा सकता है, जहाँ अभी तक केवल दो दलों की सरकारे ही बनती रही हैं। इस कारण इन राज्यों में सरकार के भ्रष्ट मंत्रियों द्वारा किए जाने वाले घोटाले हमेशा दबा दिए जाते हैं और विपक्ष खुद अपनी–अपनी कलई खुलने क डर से मूकदर्शक बना रहता है। बहुदलीय शासन व्यवस्था की सबसे अच्छी बात यह है कि सत्तारूढ़ दल एवं विपक्षी दल दोनों इस दबाव में ठीक से कार्य करते हैं कि उन पर अन्य दलों की नजरें भी हैं। मान्यता प्राप्त क्षेत्रीय दलों, जिन्हें चुनाव आयोग द्वारा पार्टी की संज्ञा दी जाती है, ने भी 1989 से अब तक अपनी सीटों तथा प्राप्त मतों में वृद्धि दर्ज की है। दूसरी तरफ कांग्रेस का मत प्रतिशत इसी अवधि में 39–5 से घटकर 28–5 रह गया। भारत में केन्द्र में इसी कारण क्षेत्रीय दलों को शामिल कर गठबन्धन सरकार बनाई गई है।

पिछले वर्षों में कई क्षेत्रीय और छोटे–छोटे दलों ने सत्तारूढ़ सरकार को समर्थन देने के बदले सौदेबाजी करते हुए अपने–अपने निजी स्वार्थों को साधा है तथा समय–समय पर सत्तारूढ़ सरकार को अस्थिरता का भय दिखा–दिखा कर सरकार के काम–काज को बुरी तरह से प्रभावित किया है। यह सब छोटे–छोटे दलों की छोटी मानसिकता को दर्शाता है। परन्तु हाल ही में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में अल्प समय में ही 'आम आदमी पार्टी' (आप) का उदय देश के सभी दलों के लिए कड़ी चुनौती के साथ–साथ भारत में मजबूत लोकतन्त्र का प्रमाण है और यह सब बहुदलीय व्यवस्था के कारण ही सम्भव हो सका है। क्योंकि संविधान के अनुच्छेद–19 में भारत के किसी भी नागरिक को दल या संघ बनाने की स्वतन्त्रता का मौलिक अधिकार प्रदान किया गया है। अतः स्पष्ट है कि भारत जैसे विशाल लोकतन्त्र में अगर बहुदलीय व्यवस्था सार्थक है तो फिर विश्व के किसी भी लोकतन्त्र के लिए बहुदलीय व्यवस्था घातक नहीं हो सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– दामोदरन, के. – भारतीय चिन्तन परम्परा।
2– रामगोपाल–भारतीय राजनीति।
3– वी. पी. वर्मा – माडर्न इण्डियन पोलिटिकल थाट पृष्ठ–570
4– दरडा रणजीत सिंह – भारतीय लोकतंत्र और आन्दोलन की राजनीति, लोकतंत्र समीक्षा, 1973
5– ताराचन्द्र – भारती स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास।
6– नागर, पुरुषोत्तम – आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन।
7– सीतारमैया, पट्टाभि – कांग्रेस का इतिहास।
8– वर्मा, आई. एस. पी. और नारायण, इकबाल – वर्तमान समाज में मतदान व्यवहार।
9– हिन्दुस्तान टाइम्स–30 दिसम्बर 2000

◈◈

ISSN : 2349-9273

जनपद एटा का सांस्कृतिक अध्ययन

- मंजू शर्मा
शोध छात्रा - भूगोल विभाग,
जवाहर लाल नेहरू, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, एटा, उत्तर प्रदेश

ई- मेल :
jitenmishra75@gmail.com

सांस्कृतिक भूगोल अध्ययन के प्रमुख बिन्दु -

1- प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले सांस्कृतिक प्रभाव का अध्ययन।

2- प्राकृतिक पर्यावरण अथवा भौगोलिक पर्यावरण की विशेषताओं में मानव समाज पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।

3- आदिकाल से वर्तमान काल तक मनुष्य द्वारा किये गये क्रियाकलापों और उनके द्वारा निर्मित सांस्कृतिक वातावरण का अध्ययन।

4- प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान सांस्कृतिक विकास की सम्भावनाओं का अध्ययन।

5- प्राकृतिक वातावरण में विद्यमान सांस्कृतिक विकास की सीमाओं एवं अधिकार क्षेत्रों का अध्ययन।

6- संस्कृति में निरन्तर परिवर्तन से उत्पन्न धर्म, भाषा, रहन सहन, वेशभूषा आदि में होने वाली महत्वपूर्ण क्रान्तियों का अध्ययन।

जनपद के ऐतिहासिक धार्मिक एवं तीर्थ स्थलों की दृष्टि से जलेसर, सोरो, पटियाली, अतरंजी खेडा, विल्सड, सराटा अगहत, नौहखेडा प्रमुख है।

सोरों में महान साहित्यकार तुलसी एवं पटियाली में अमीर खुसरो जैसी महान हस्तियों का जन्म हुआ। महात्मा बुद्ध जैसी महान हस्ती ने अतरंजी खेडा में प्रचार किया। प्रस्तुत शोध में 'जनपद एटा का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक अध्ययन' विकास की प्रभावी दिशा है।

सांस्कृतिक भूदृश्य - सांस्कृतिक भूदृश्य को समझने के लिए मानवीय क्रियाओं का जानना आवश्यक होता है। मनुष्य अपने कार्यों से किसी भी भूदृश्य को परिवर्तित करके उसके स्वरूप को नवीनता प्रदान करता है। यदि कोई भूखण्ड निर्जन है तो वह केवल मात्र 'भूदृश्य' ही कहलायेगा। वह उतना ही सशक्त होगा जितना कि मानव युक्त भूखण्ड। अतः आज के परिप्रेक्ष्य में प्राकृतिक भूदृश्य की कोई महत्ता नहीं है। अर्थात् सांस्कृतिक भूदृश्य एक क्षणिक घटना नहीं है अपितु इसका ऐतिहासिक विकास होता है, धरातल पर जो दृश्य वर्तमान है उसके पीछे युगों का इतिहास पिरोहित है।[1]

सांस्कृतिक भूदृश्य के अन्तर्गत जनपद में उपयुक्त स्थानों का विवरण -

1- सोरों (शूकर क्षेत्र) - कासगंज तहसील के अन्तर्गत यह नगर कासगंज से 15 किमी. की दूरी पर मथुरा बरेली राजमार्ग 3 तथा कासगंज बरेली छोटी रेल लाइन पर स्थित है। यह जनपद के मुख्यालय एटा नगर से 45 किमी. दूर 270-54" उत्तरी अक्षांश तथा 780-45" पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[2] यह नगर एक पौराणिक तीर्थस्थल है। जिसे शूकर क्षेत्र भी कहा जाता है। हिन्दू संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान विष्णु का तृतीय अवतार 'बराह अवतार' यही हुआ था।

जब दैत्यराज हिरणाक्ष ने पृथ्वी को रसातल में स्थित कर दिया था, तो भगवान विष्णु ने पृथ्वी का उद्धार करने हेतु बराह अवतार धारण किया।[3]

इस नगर में निम्न पौराणिक तीर्थ चिन्ह विद्यमान है-

(क) चक्रतीर्थ चिन्ह - यह सोरों नगर के पश्चिमोत्तर भाग में (चक्रतीर्थ मोहल्ले) के नाम से विद्यमान हैं। इस स्थल पर आदि बराह भगवान का विशाल भव्य मन्दिर है।

(ख) योग तीर्थ - यह चिन्ह नगर के पूर्वात्तर भाग में योग मार्ग नामक मोहल्ले के रूप में स्थित है।

(ग) आदित्य तीर्थ - यह चिन्ह नगर के पश्चिमोत्तर भाग में 'सूर्य कुण्ड' के नाम से योगेश्वर मन्दिर के निकट विद्यमान हैं।

(घ) सोम तीर्थ - यह चिन्ह नगर के उत्तर में स्थित है। सोम तीर्थ की स्मृति स्वरूप हरि की पौडी (वराह कुण्ड) के दक्षिण- पूर्व में भगवान शंकर का सोमेश्वर मन्दिर स्थित है।

(च) ग्रधवट तीर्थ - नगर के पूर्वोत्तर में यह तीर्थ आज वटुकनाथ मन्दिर के नाम से विख्यात है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में इस तरह के विलुप्त 4 वट वृक्ष है। अक्षय वट (प्रयाग), वंशी वट (वृन्दावन), सिद्ध वट (उज्जैन) और ग्रधवट (सोरों) में गिना जाता है।

(छ) शखोटक तीर्थ - यह तीर्थ चिन्ह सोरों के उत्तरी भाग में शाहकोटया नाम से प्रसिद्ध है।

2- **जलेसर** - इसी नाम की एटा जनपद की तहसील के मुख्यालय का नगर जलेसर 270-28" उत्तरी अक्षांश तथा 780-19" पूर्वी देशान्तर पर बसा है। यह एटा मथुरा मार्ग पर एटा से दक्षिण-पश्चिम में लगभग 40किमी. दूर स्थित है। इस नगर का अस्तित्व द्वापर युग से है। उस समय मथुरा के राजा कंस के ससुर मगध नरेश जरासन्ध ने एक दुर्ग का निर्माण कराया था। कहा जाता है कि जरासन्ध का नाम बिगड़कर जलेसर हो गया।

यहाँ हिन्दुओं के मन्दिर भी काफी संख्या में है। जिनमें महावीर जी का मन्दिर, शिवजी का प्राचीन मन्दिर और चिन्ताहरण मन्दिर प्रमुख आकर्षण का केन्द्र है।

3- **नौखेड़ा** - एटा जलेसर (निधौली कला) होकर सड़क मार्ग एटा से 32 किमी. दूर जलेसर तहसील के अन्तर्गत नौखेड़ा अति प्राचीन ग्राम है। नौखेड़ा का प्राचीन नाम कुन्डनिपुर भी था। यह जनश्रुति के अनुसार यही तत्कालीन कुण्डलपुर रुकमणि का जन्म स्थान है।

4- **नदरई** - यह गाँव एटा मुख्यालय से 25 किमी. दूर कासगंज के समीप मथुरा पीलीभीत राजमार्ग पर स्थित है। यहाँ भीमसेन महाबली का चौरासीमन का घण्टा, गणेश मूर्ति तथा नदरई का पुल प्रमुख है। नदरई का घण्टा पुरात्विक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है।

5- **सराय अगस्त** - यह छोटा सा कस्बा जनपद के धुर दक्षिणी पूर्वी होने पर फर्रूखाबाद जनपद की सीमा के निकट अलीगंज से 20 किमी. पूर्व में स्थित है। यहाँ पर वैदिक युग में प्रसिद्ध महर्षि अगस्त मुनि का आश्रम था। इसी कारण इस स्थान का नाम अगस्त से बिगड़कर अगहत हो गया।

इसके समीप 3 किमी. की दूरी पर संकिसा नामक बौद्ध तीर्थ है। 1686 में यह अफगान शासक खिज खाँ, मोहम्मद खाँ, और रसूल खाँ ने एक सराय बनवाई, तभी से इसका नाम सराय अगहत पड़ा।

6- **सकीट** - इस नगर की स्थापना राजा साकेतदेव ने की थी। इस नगर में एक अध बना मन्दिर है, जो महरबों के लिए प्रसिद्ध है।

7- **कादरगंज** - वह एटा के उत्तर पूर्व में गंगा के तट पर एटा से 22 किमी. दूर स्थित है। यहाँ सुजान खाँ की कब्र है। यहाँ रेतशाह नामक फकीर की कब्र भी है। जिसकी मृत्यु 1850 में हुयी थी।[4]

8- **भरगेन** - यह ग्राम उत्तर पूर्व से अलीगंज तहसील में अलीगंज से 14 किमी. उत्तर पूर्व में स्थित है। वैदिक युग में यह महर्षि भृगु के पुत्र भार्गव का आश्रम था।

9- **पटियाली** - यह नगर इसी नाम की तहसील मुख्यालय का नगर है। जो एटा नगर से उत्तर पूर्व 40 किमी. दूर बूढ़ी गंगा के किनारे बसा है।

10- **रुद्रधन तीर्थ** - यह तीर्थ वैदिक कालीन है। गया के समान यहाँ पितृ अमावस्या पर पिण्ड दान या दर्पण किया जाता है। पितृ अमावस्या या सोमवती अमावस्या कुंभ के समान मनाई जाती है।[5]

11- **विल्सड** - वह स्थान एटा से 50 किमी. उत्तर पूर्व स्थित एक गाँव के रूप में दिखायी देता है। पुरातात्विक दृष्टि से इसका महत्व ऐतिहासिक स्थल के रूप में है।

12- **भवभूति कुंज** - यह प्राचीन स्थल पर्यटक स्थल है। आम्र वृक्षों के ताल के किनारे मनोहारी छवि देखने को मिलता है।

13- **सताल** - यह युद्ध क्षेत्र रहा है। यहाँ मृतक वीरों के सामूहिक दाह संस्कार किये जाते हैं।

14- **अतरंजी खेड़ा** - यह एटा से 16 किमी. उत्तर की ओर स्थित है। यह 270-72" उत्तरी अक्षांश और 680-44" पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। अतरंजी खेड़ा अपने पूर्व महत्व का अवसानार्थ हो गया है। यह केवल ध्वस्त ढीला के रूप में एक छोटा सा गाँव मात्र रह गया है। सन् 630 और 644 की अवधि में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने आराध्य भगवान बुद्ध के पवित्र स्थान अतरंजी खेड़ा की धर्म यात्रा की थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- प्रसाद गायत्री, सांस्कृतिक भूगोल - शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1986 पृ. 23

2- सेनसेफ आफ इण्डिया, जार्ज बाइज प्रोविन्सल पापुलेशन, उ. प्र. डिस्ट्रिक एटा 1991

3- प्राचीन तीर्थ सोरो (शूकर क्षेत्र) की महिमा पृ. सं. 1

4- शुक्रचिन्तामणि जनपद एटा का राजनैतिक इतिहास पृ. सं. 62

5- सरस्वती स्वामी आखानंद, सती द्रोपदी पृ. सं. 6

ISSN : 2349-9273

धर्म निरपेक्षता – एक विश्लेषण

– उषा सैनी
रिसर्च स्कालर –
राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर–302001 (राजस्थान)

ई–मेल :
rejavsar@gmail.com

आज समस्त मानव जाति पारमाणविक विभीषिका के साए में कब सो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता। मानव के आपसी सम्बन्ध इतने संकुचित और कुपित हो गए हैं कि वह बस अपने को ही देख पाता है, गैर–बराबरी की खाई इतनी चौड़ी और गहरी होती जा रही है कि इसमें अमीर और गरीब दोनों गिरकर विनाश को प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे संक्रमण काल में अधिनायकवादी रूप के चलते साम्यवाद से भी लोगों का मोह भंग हो रहा है। आज सोवियत संघ भी लोकतांत्रिक मूल्यों का पक्षधर होता जा रहा है जो साम्यवाद का प्रमुख नेता है। साम्यवादी सोवियत संघ धर्म को जनता की अफीम मानता था लेकिन अब लोकतात्रिक मूल्यों के पक्षधर होने के कारण अन्य स्वतंत्रताओं को प्रदान करने के साथ–साथ धार्मिक स्वतंत्रता भी प्रदान करने की वकालत कर रहा है।

दूसरी तरफ कुछ राजनेता राज्य को धर्म सापेक्ष घोषित कर जनतांत्रिक मूल्यों का हनन कर रहे हैं, तो कहीं पर साम्प्रदायिकता अपना नग्न नृत्य कर मानवता का गला घोंट रही है। ऐसी विषम परिस्थिति में राज्य और धर्म के सम्बन्ध पर एक प्रश्न चिन्ह लगता है। इसी प्रश्न का उत्तर हम धर्म निरपेक्षता के विश्लेषण के माध्यम से देने का प्रयास करेंगे।

लोकतांत्रिक मूल्यों में धर्म निरपेक्षता का एक महत्वपूर्ण स्थान है, बिना इसके लोकतंत्र अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त ही नहीं कर सकता। धर्म निरपेक्षता क्या है? यह समझने के लिए उसके ऐतिहासिक पक्ष का सिंहावलोकन अति आवश्यक है।

यदि धर्म निरपेक्षता का सर्वांगीण अवलोकन करें तो हमको उसके तीन पहलू दिखाई देते हैं–पश्चिमी, साम्यवादी और भारतीय। धर्म निरपेक्षता के पश्चिमी पहलू से हमारा तात्पर्य एंग्लो–अमरीकन और यूरोपीय दृष्टिकोण से है। जहाँ पर राज्य और चर्च में हजारों वर्ष तक संघर्ष चलता रहा है। चर्च ने केवल राजनीतिक सत्ता पर ही हस्तक्षेप नहीं किया बल्कि स्वयं एक राजनीतिक सत्ता के रूप में उभरने की कोशिश की। ग्रेगरी सप्तम, इनोसेण्ट तृतीय, वोनीफेस अष्टम ने धार्मिक सत्ता के साथ राजनीतिक सम्प्रभुता का भी दावा किया था। इनोसेण्ट तृतीय ने तो पूरे इटली में अपना राज्य ही कायम कर लिया था। जैसे–जैसे रोम साम्राज्य की राजनीतिक सत्ता क्षीण होती गई, वैसे–वैसे मध्युगीन यूरोप में राजनीतिक सत्ता पर पोप की पकड़ बढ़ती गई और इतनी बढ़ गई कि यूरोपीय शासक बिना पोप की अनुमति के ईसाइयों पर टैक्स तक नहीं लगा सकता था। चर्च की सम्पत्ति पर नियंत्रण और विवाह सम्बन्ध भी स्थापित नहीं कर सकता था। रोम साम्राज्य के पूर्व और पश्चिम में बँटते ही पोप अपने को साम्राज्य का पूर्ण अधिकारी मानने लगा। कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट में जब ईसाई धर्म बँटा तक इतना खून बहा कि लोगों की धर्म के नाम से वितृष्णा सी हो गई। पोप की सत्ता क्षीण होते ही राज्य सत्ता ने धर्म को एकदम राजनीति से बाहर निकालने का प्रयास किया। धर्म निरपेक्षता इसी भावना का परिणाम है। इस दृष्टिकोण के अनुसार धर्म को राजनीति से अलग रहना चाहिए।

मार्क्सवादियों ने धर्म को जनता की अफीम कहा है और धर्मविहीन

तथा राज्यविहीन साम्यवादी व्यवस्था बनने की कल्पना की। उनके लिए मानव जीवन का विकास है जबकि दूसरे लोग धर्म के विकास को मानव जीवन का विकास मानते हैं।

भारत में धर्म और राजनीति का सम्बन्ध परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि सहयोगी रहा है। प्राचीन काल में राजा का पुत्र एक ऐसा ऋषि होता था जो सांसारिक भोग–विषय में तटस्थ रहता था और मानव–कल्याण के विषय में बिना किसी स्वार्थ और राग–द्वेष के राजा को उपदेश देता था। भारत में भी धर्म के नाम पर रक्तपात हुआ। कभी शैव और शाक्तों में, कभी शैव और वैष्णवों में, कभी हिन्दुओं और जैनों, कभी हिन्दुओं और बौद्धों में और कभी हिन्दुओं और मुसलमानों में। वैसे भारतीय संस्कृति की परम्परा सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की रही थी। यहाँ धर्म को 'चतोदभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि' कहकर परिभाषित किया गया। यहाँ धर्म का अर्थ 'सत्यम शिवम् सुन्दरम्' की खोज करना और उसकी उपलब्धियों के लिए एक साधना थी। उपलब्धियों की एक श्रृंखला थी। राज्य इन्हीं उपलब्धियों से सीखता था और धर्म के निर्देशन को स्वयं आमंत्रित करता था। राजा श्रद्धा और सम्मान में ऋषियों के लिए अपना सिंहासन छोड़ देता था। ऋषि व्यष्टि के धरातल से ऊपर उठकर समष्टि के धरातल पर पहुँचा व्यक्ति होता था, सांसारिक भोग–विलास उसके लिए एक तुच्छ धातु हुआ करती थी। प्रायः इन सबको भोगकर ही कोई ऋषि हुआ करता है। राजा और धर्माचार्य के बीच तब द्वेष पैदा होता है जब धर्माचार्य की लौकिक सुख भोग और सम्प्रभुता की इच्छा संतुष्ट नहीं हो पाती है। इसकी प्राप्ति के लिए वह राजा को अपना प्रतिद्वन्द्वी मान लेता है। 'अपने वास्तविक रूप में प्राचीन भारतीय जीवन उन मानवीय लोकमंगलकारी तथ्यों से सम्बन्धित था जो राष्ट्रीयता तथा अन्तर्राष्ट्रीय की भावना से ओत–प्रोत थे।'

प्रथम दो दृष्टिकोण धर्म और राजनीति को एक दूसरे के विरोधी के रूप में स्थापित करते हैं और राजनीति के कुशल संचालन में धर्म की बाधा मानते हैं, जबकि तीसरा दृष्टिकोण धर्म और राजनीति को एक दूसरे का सहयोगी मानता है। इस दृष्टिकोण का मानना है कि धर्म मानव के अभ्युदय निःश्रेयस का विचार प्रस्तुत करता है, इसे व्यावहारिक रूप देने के लिए राजनीतिक की प्रबल आवश्यकता होती है। इसी प्रकार के विचार को प्रतिपादित करते हुए डॉ. राम मनोहर लोहिया ने कहा है कि ''धर्म और राजनीति एक सिक्के के दो पहलू हैं। दीर्घकालिक राजनीति धर्म है और अल्पकालिक धर्म राजनीति है। धर्म का कार्य अच्छा कार्य करना और हर अच्छे कार्य की प्रशंसा करना और राजनीति का कार्य हर बुराई का विरोध करना और उसकी निन्दा करना। लेकिन जब धर्म अच्छा कार्य न कर केवल प्रशंसा करता है तो वह पाखण्डी हो जाता है और राजनीति बुराई का विरोध न कर केवल निन्दा करने लगती है तो वह कलड़ी हो जाती है', अतः मानव जाति के वास्तविक विकास के लिए धर्म और राजनीति दोनों को अपने वास्तविक स्वरूप में साथ–साथ रहना अति आवश्यक है।

राजनीति और धर्म के सम्यक् बोध पर बल देते हुए प्लेटो कहते हैं कि 'राज्यों (यूनान के) की बुराई कम होने की कोई आशा नहीं है और मेरी सम्मति में मानव मात्र की। यह केवल तभी सम्भव है जब राजनीतिक शक्ति और दर्शन में सहयोग हो और उन साधारण लोगों को जबरदस्ती अयोग्य कर दिया जाए जो इसमें से किसी एक में कार्य करते हैं और दूसरे से अनभिज्ञ हों। यह सहयोग मेरी सम्मति में केवल दो प्रकार से सम्भव है, या तो दार्शनिक लोग हमारे राज्यों के राजा हो जाएं या आज जो राजा और अधिपत कहे जाते हैं, वे वास्तविक और पूर्णरूप से दार्शनिक हो जाएं।'

भारतीय परम्परा में धर्म को कभी राजनीति से अलग करके नहीं देखा गया है, जबकि पाश्चात्य परम्परा में राज्य और धर्म के मेल का बुरा असर पड़ा है। कभी पादरियों ने अपने को स्वर्ग का ठेकेदार बताया, तो कभी राजाओं ने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि। दोनों ने भोली–भाली जनता का खूब शोषण किया। एक तरफ धर्म की विशुद्धता समाप्त हुई तो दूसरी तरफ व्यक्ति की स्वतंत्रता का अन्त हुआ। राजनीति के प्रभाव से चर्च विलासिता, व्यभिचार और दुराचार का अंग बन गया। इसी स्थिति का वर्णन करते हुए पेट्रार्क (1304–74) ने एबिग्रोन के चर्च के विषय में लिखा है कि– 'यहाँ वसुन्धरा का नर्क है बुराइयों का कोप और विषय का गंदा नाला है यहाँ श्रद्धा है और न दान का भाव, न धर्म और ईश्वर का भय।' अगूढ़ागमन माता–बहिन आदि निकट के निषिद्ध सम्बन्धियों के साथ सहवास, बलात्कार, परस्त्रीगमन आदि पोप के दरवार की कामुक क्रीड़ाओं के आनन्द हैं।

इन्हीं सब बुराइयों के खिलाफ पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में एक नवीन–प्रवृति का जन्म हुआ। इसकी अगुआई मार्टिन लूथर और जॉन काल्बिन ने की। इसी नई–प्रवृति ने धर्म और राजनीति को अलग–अलग क्षेत्रों में स्थापित करने का कार्य किया। मैकियावेली पहला विचारक है, जिसने राजनीति को धर्म से जान–बूझकर और औपचारिक रूप से अलग किया। मार्टिन लूथर और जॉन काल्विन का आन्दोलन धर्म सुधार का था। राजनीतिक और आध्यात्मिक विचारों की दृष्टि से 17वीं सदी धर्म निरपेक्षता की सदी थी। इसका श्रेय अल्यूसियस, ग्रेशियस तथा हॉब्स को दिया जाता है। इन विचारकों ने धर्म निरपेक्षता के आधार के लिए प्राकृतिक कानून की बुद्धि युक्त व्याख्या प्रस्तुत की। धर्म

निरपेक्षता की झलक जॉन लॉक के प्राकृतिक अधिकारों और धार्मिक सहिष्णुता सम्बन्धी विचारों में मिलती है। लॉक स्वतंत्रता को व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार मानते थे। उसके अनुसार धार्मिक विश्वास व्यक्ति की अन्तरात्मा का विषय है। किसी व्यक्ति को धर्म विशेष मानने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति के धार्मिक मामलों में राज्य हस्तक्षेप नहीं करेगा, यदि ऐसा करता है तो इससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचेगा। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान निर्माताओं में विशेषकर मेडीसन ने प्रारम्भिक काल में ही चर्च और राज्य की पृथकता पर बल दिया था।

आधुनिक काल के धर्म निरपेक्षता के विचारकों में हेनरी डेविड, जॉन रस्किन, टालस्टाय, महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और डॉ. राममनोहर लोहिया का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। टॉलस्टाय और महात्मा गाँधी वैसे तो कट्टर धर्म पन्थी थे, लेकिन विचार किसी विशेष धर्म पर आधारित न होकर नैतिकता और आध्यात्मिकता पर आधारित थे।

धर्म निरपेक्ष राज्य–राज्य दो प्रकार के होते हैं– एक धर्म सापेक्ष राज्य और दूसरे पंथनिरपेक्ष राज्य। धर्म सापेक्ष राज्य वह राज्य होता है, जिसमें रहने वाली जनता का वही धर्म होता है जो राजा का या राज्य द्वारा घोषित होता है। प्राचीन भारत के कुछ राजाओं ने राजधर्म घोषित किया था जैसे– बिम्बसार, अशोक, कनिष्क, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य द्वितीय, हर्ष आदि। लेकिन इन्होंने कभी भी और जबरदस्ती से अपना धर्म मानने के लिए बाध्य नहीं किया। हृदय परिवर्तन के द्वारा अपने धर्म का प्रचार किया और इनके राज्य में अन्य धर्मों के मानने की पूरी आजादी थी। धर्मनिरपेक्ष राज्य वह राज्य होता है, जिसमें राज्य की तरफ से कोई धर्म नहीं होता है। वहाँ राज्य की जनता को अपना–अपना धर्म मानने और प्रचार करने की स्वतंत्रता होती है। राज्य का सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता पूर्ण रुख होता है। सभी नागरिकों को बिना किसी भेद–भाव के सभी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं कि ''धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ है– धर्म और आत्मा की स्वतंत्रता। जिनका कोई धर्म नहीं, उनके लिए भी स्वतंत्रता का अभिप्राय है– सब धर्मों के लिए स्वतंत्रता। इनका अर्थ है– सामाजिक और राजनीतिक समानता।'' डोनाल्ड ई. स्मिथ धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में लिखते है कि ''धर्मनिरपेक्ष राज्य निजी और सामूहिक रूप में धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी देता है। वह व्यक्ति के साथ उसके धर्म का विचार किए बिना नागरिक के रूप में व्यवहार करता है। सार्वजनिक तौर पर वह किसी धर्म से सम्बन्धित नहीं होता और न किसी धर्म की प्रगति का प्रयास करता है और न किसी धर्म में हस्तक्षेप ही करता है।''

धर्मनिरपेक्ष राज्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए संविधान सभा में श्री हरि विष्णु कामथ ने कहा था कि ''एक धर्मनिरपेक्ष राज्य न तो ईश्वर रहित राज्य है, न ही वह अधर्मी राज्य है और न ही धर्म विरोधी राज्य।'' इसी प्रकार प्रो. टी. के. पोपे लिखते हैं कि ''भारत के धर्मनिरपेक्ष होने का यह अर्थ नहीं है कि इसमें ईश्वर के अस्तित्व को नहीं माना जाता। भारतीय संविधान में ईश्वर के अस्तित्व को मान्यता प्रदान की गई है। देश के प्रमुख पदाधिकारी पद ग्रहण करते समय ईश्वर के नाम पर शपथ ले सकते हैं।''

धर्मनिरपेक्ष राज्य धर्म को समाज को सामूहिक कार्य न मानकर व्यक्ति का व्यक्तिगत कार्य मानता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होता है। यह सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता का भाव रखता है। वह धार्मिक कट्टरता और सर्वाधिकारवाद का विरोध करता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य में लोकतंत्र पर आधारित संसार का प्रत्येक धर्म मानव कल्याण की बात करता है तथा राजधर्म राज्य और राजा के कल्याण की। जबकि साम्प्रदायिकता अपने मत को सर्वश्रेष्ठ बताती है और दूसरों के ऊपर जबरदस्ती अपना मत थोपना चाहती है और राजनीति में राजनीतिज्ञ किसी तरह से अपने स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है। अपने इसी स्वार्थी स्वभाव के चलते दोनों किसी न किसी स्थान पर टकरा जाते हैं।

अर्थ प्रधान इस युग में अब धर्म केवल अशिक्षित लोगों द्वारा ही सुरक्षित है, शिक्षित लोगों का कोई धर्म नहीं है, उनके प्रत्येक कार्य के केन्द्र में अर्थ रहता है। अशिक्षित लोग जो धर्म को मानते हैं वह या तो धर्म के असली स्वरूप को जानते नहीं या जानते हैं तो सिर्फ धर्म के पाखण्डमय

रूप को। जितने भी साम्प्रदायिक दंगे होते हैं उनमें वही लोग सक्रिय भाग लेते हैं, जिनको धर्म का वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं होता और अधिकांश साम्प्रदायिक दंगे राजनीति से प्रेरित होते हैं।

हमारा संविधान कहता है कि देश के किसी भी नागरिक के साथ धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन हमारे राजनीतिक स्वार्थ के चलते हिन्दुओं पर परिवार नियोजन लागू करते हैं और मुसलमानों पर नहीं। उन्हें अल्पसंख्यक के नाम पर तमाम सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, जिनके चलते आज देश का अधिकांश वर्ग अपने को असंतुष्ट पाता है। धर्मनिरपेक्ष राज्य लोक कल्याण को महत्व देता है।

कुछ लोगों का मानना है कि धर्मनिरपेक्ष राज्य का शीघ्र छिन्न–भिन्न हो जाना सम्भव है। धर्मनिरपेक्ष राज्य लोक मंगलकारी नहीं हो सकता। इसमें सरलता से विकृति आ सकती है। इसमें धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था न होने के दुष्परिणाण होने की संभावना होती है। बहुसंख्यक धार्मिक वर्ग की भावनाओं को आघात पहुँचेगा। वे सम्पूर्ण आलोचनाएँ धर्म को केन्द्र में रखकर की गई हैं।

भारतीय और पाश्चात्य धर्म निरपेक्षता सम्बन्धी तथ्यों के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में धर्म निरपेक्षता का विचार धर्म का राजनीतिक सम्प्रभुता को अपने हाथों में लेने के कारण पर आधारित नहीं है, जबकि पाश्चात्य धर्म निरपेक्षता का विचार प्रतिनिधि मानकर जनता का शोषण करने पर आधारित है। पाश्चात्य में राजनीति को धर्म की अपेक्षा नहीं है। दूसरी बात पाश्चात्य में केवल एक धर्म और राजनीतिक सत्ता का विरोध है। भारत में विभिन्न धर्मों का आपसी द्वन्द्व रहा, लेकिन वह कभी भी राजनीति से टकराया नहीं। इसलिए यहाँ पर धर्म निरपेक्षता का अर्थ सर्वधर्म सभाव समझा गया न कि धर्म का राजनीति से एकदम अलगाव।

यदि हम स्वस्थ बुद्धि से विचार करें तो जाएंगे कि धर्म और राजधर्म में कोई विरोध नहीं है। विरोध है तो साम्प्रदायिकता और कूटनीति में। प्रत्येक धर्म नेता अपने धर्म को श्रेष्ठ घोषित करवाने के प्रयास में लगा है जिससे फिरकापरस्ती को बल मिलता है। मुस्लिम वर्ग अपने धर्म के अनुसार तमाम अधिकारों को मांगता है लेकिन मुस्लिम दण्ड संहिता को कभी स्वीकार नहीं करता। इन सब तथ्यों को देखते हुए हमको पंडित ब्रजनारायाण चक्रवर्ती की ये पंक्तियाँ बहुत उपयुक्त लगती हैं कि–

पुरानी काबिशें दैरो–हरम की मिटती जाती हैं।
नई तालीम के झगड़े हैं अब शेखों–बिरहमन में।।

अन्त में हम यही कहना चाहते हैं कि धर्म निरपेक्षता में सर्वधर्म समभाव रखने का विचार अनेक धर्म मानने वाली भारतीय जनता की राजनीतिक और धार्मिक दोनों भावनाओं का सम्मान है, लेकिन साम्प्रदायिकता को धर्म मानने की भूल धर्म के नाम पर कलंक है और हमारी एकता के लिए एक खतरा, जिसका आए दिन राजनीतिक और धार्मिक नेता फायदा उठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए तमाम सीधे–सादे लोगों को काल के गाल में झोंक देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– घोष एम. के. – मुस्लिम पालिटिक्स इन इण्डिया, पृष्ठ–18
2– वेग एम. आर. – द मुस्लिम डिलेमा इन इण्डिया, पृष्ठ–31
3– तिवारी अरुण – धर्म की राजनीति और राजनीति का धर्म, नवभारत टाइम्स, 23 दिसम्बर, 1992
4– सिवाच जे. आर. – डायनामिक्स ऑफ इण्डिया गर्वनमेन्ट एण्ड पालिटिक्स, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978 पृष्ठ–467
5– दरडा रणजीत सिंह – भारतीय लोकतंत्र और आन्दोलन की राजनीति, लोकतंत्र समीक्षा, 1973
6– कश्यप सुभाष – भारतीय सरकार एवं राजनीति – नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
7– वसु दुर्गादास – कन्टीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया –प्रेन्टिस हाल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
8– श्रीनिवास एम. एन. – कास्ट इन मार्डन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई।

◈◈

चित्रकला की अद्‌भुत संकल्पना : विष्णुधर्मोत्तरपुराण

- डॉ. सुधा गुप्ता
अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर -
संस्कृत विभाग,
जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी.कालेज,
कानपुर-208004 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
sudhagupta059@gmail.com

'कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।'[1]

चित्रकला धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक पुरुषार्थचतुष्टयप्रदात्री समस्त कलाओं में श्रेष्ठतम् कला है। रस-भावसमन्वित यह कला पूर्णतया आत्माभिव्यञ्जना है, जिसका मूल आनन्द में निहित है। कलाकार की सृष्टि आनन्दसम्भूत होती है और उसका परिपाक लोकरंजन व लोककल्याण से ओत-प्रोत होता है। कला की सिद्धि के मूल में सौन्दर्य का विशिष्ट योगदान रहता है। 'रस' कला का प्राणतत्व है, आत्मा है।

पौराणिक वाङ्मय में विष्णुधर्मोत्तरपुराण प्राचीन भारतीय कला का सांगोपांग विषद वर्णन प्रस्तुत करता है। यह उपपुराण चित्रकला, मूर्तिकला, नृत्यकला तथा वास्तुकला आदि पर ऐतिहासिक महत्व का ज्ञानवर्द्धक तात्विक विवरण प्रस्तुत करने वाला एकमात्र पुराण है। अनुमानतः पाँचवींशती में रचित यह पुराण पाँचवीं-छठी शताब्दी में निर्मित अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी कला और शिल्पविधियों का अवनद्य परिचय प्रस्तुत करता है। तत्कालीन भारतीय कला की कल्पना, योजना, शिल्प, शैली और विधि का जो उन्नत प्रारूप इस पुराण में दृष्टिगोचर होता है, वह आश्चर्य चकित करने वाला है। अजन्ता की गुफाओं के चित्र विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वर्णित चित्रकला पर आधारित होने से प्राचीन भारतीय कला का जहाँ एक ओर चरमोत्कृष्ट निदर्शन कराते हैं, वहीं दूसरी ओर चित्रकला के सिद्धान्तों, शैली, शिल्प और विधि-प्रविधि की जीवन्त व्याख्या भी करते हैं।

विष्णु धर्मोत्तरपुराण का कला सम्बन्धी अंश विविध कलाओं के ज्ञान का अक्षय भण्डार है। इसकी गवेषणात्मक दृष्टि चित्रकला, मूर्तिकला, संगीतकला, वास्तुकला तथा काव्यकला आदि सभी विषयों को प्रकाशित करती है। चित्रकला की इसकी गवेषणा पर विचार करने से पूर्व कला को जानना अत्यन्त आवश्यक है। अंग्रेज कवि शैली के अनुसार - 'कल्पना को अभिव्यक्त करना कला है।'[2] फ्रेंच विद्वान फागुए के अनुसार - 'कला भाव की उस अभिव्यक्ति को कहते है, जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।3 इसके अतिरिक्त टालस्टाय का कथन है कि 'कला मानवी चेष्टा है।' [4] कला मर्मज्ञ ओम वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में- 'जिस जगह रस, प्राण और श्री तीनों एकत्र रहते हैं, वहीं कला रहती है।[5]

इन सबके कथन से इतना तो स्पष्ट है कि कला का सम्बन्ध मानवीय भावों की अभिव्यक्ति से है। अभिव्यक्ति की सुन्दरता और सार्थकता कला की उपयोगिता और श्रेष्ठता सिद्ध करती है। अर्थपूर्ण भावाभिव्यक्ति दृष्टा अथवा श्रोता को रसप्लावित करती है, आनन्दातिरेक से भर देती है। कला वस्तुतः दो प्रकार की होती है - (1) उपयोगी कला तथा (2) ललित कला।

व्यवसाय में निहित कला उपयोगी कला की श्रेणी में आती है, जिससे दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जब कि ललित कला का सम्बन्ध अन्तरात्मा की प्रसन्नता से है, रसाभिव्यक्ति से है, रस बोध से है। ललित कला का प्राण ही रस है, जिसका मूल आनन्द में निहित होता है। उपरोक्त चित्रकला,

मूर्तिकला, संगीतकला, काव्यकला तथा वास्तुकला - ये पाँचों ऐसी ही रसासक्ति, आनन्ददायी ललित कलाएँ हैं। इन पाँचों ललित कलाओं में से चित्रकला सर्वश्रेष्ठ कला है। तभी तो विष्णुधर्मोत्तर पुराण के 43वें अध्याय में कहा गया है कि -

'यथा सुमेरूः प्रवरो नगानां, यथाण्डजानां गरुड़ः प्रधानः ।
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः।।'[6]

कला में रसाभिव्यक्ति की कसौटी इस पुराण का 'चित्रसूत्र' है किन्तु -

'बिना तु नृत्यशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।'

से स्पष्ट है कि चित्रसूत्र के परिज्ञानार्थ नृत्तसूत्र का ज्ञान आवश्यक है, जिसका वर्णन इस ग्रंथ के अध्याय, एक, दो तथा तीस से पचासी तक विस्तार से किया गया है। यथा - प्रथम अध्याय में चित्रसूत्रविधानानुसार इष्टदेव की प्रतिमास्थानपूर्वक अर्चना का कथन है -

'अर्चागतविशेषेण पूज्यन्ति विधानतः ।
चित्रसूत्रविधानेन देवतार्चा विनिर्मिताम्।'[7]

वस्तुतः चित्रसूत्र के सम्यक् ज्ञान के लिए नृत्तशास्त्र, नृत्तशास्त्र के ज्ञान के लिए आतोद्य (वाद्यशास्त्र) आतोद्य के ज्ञानार्थ गीत और गीतशास्त्र के परिज्ञानार्थ भाषा का ज्ञान आवश्यक है।[8] इस प्रकार चित्रसूत्रकारानुसार एक कला दूसरी कला के ज्ञान की अपेक्षा रखती है। नृत्तसूत्र प्रकरण का तीस और इकतीस अध्याय रस और भावों की विशद व्याख्या करता है, जो कि चित्रकला में प्राण का संचार करते हैं।

'चित्रसूत्रम्' प्रकरण का अध्याय पैंतीस से सैंतीस 'प्रमाण' पर, अड़तीस व उनतालीस 'रूपभेद' पर, चालीस 'वर्णमिश्रण' पर, इकतालीस 'वर्णिकाभंग' के साथ 'लावण्ययोजना' पर, बयालीस 'रूपनिर्माण' के साथ-साथ 'सादृश्य योजना' पर तथा तैतालीसवाँ अध्याय श्रृड्गारादि रसों का विशद वर्णन करते हुए चित्र के प्राणतत्व 'भाव' का अत्यन्त हृदयग्राही विश्लेषण प्रस्तुत करता है। चित्रकला के षडङ्ग और गुणाष्टक चित्र के निकष (कसौटी) होते हैं, जो चित्र की श्रेष्ठता अथवा निकृष्टता सिद्ध करते हैं। यही कारण है कि इन गुणाष्टकों की आवृत्ति दो बार करते हुए चित्रसूत्रकार ने कहा है कि -

'स्थानप्रमाणभूलम्बो मधुरत्वं विभक्तता ।
सादृश्यं क्षयवृद्धी च गुणाश्चित्रस्य कीर्तिताः।'[9]
'स्थानं प्रमाणं भूलम्भो मधुरत्वं विभक्तता ।
सादृश्यं क्षयवृद्धि च गुणाष्टकमिदं स्मृतम् ।।'[10]

गुणवर्णन के पूर्व ग्रन्थकार ने दोषों की ओर भी ध्यान आकृष्ट करते हुए 41वें अध्याय में कहा है कि -

'दौर्बल्यबिन्दुरेखत्वमविभक्तत्वमेव च ।
बृहद्गण्डौष्ठनेत्रत्वमविरुद्धत्वमेव च ।
मानवाकारता चेति चित्रदोषाः प्रकीर्तिताः।।'

अपि च -

'दौर्बल्यं स्थूलरेखत्वमविभक्तत्वमेव च ।
वर्णानां संकरश्चात्र चित्रदोषाः प्रकीर्तिताः।।'

चित्र सम्बन्धी यह गुण-दोष वर्णन अध्याय इकतालीस से तैंतालीस के मध्य विस्तार से प्राप्त है। चित्रोत्पत्ति चित्रसूत्रकारानुसार त्रैलोक्य की अनुकृति मात्र है -

'यथा नृत्ते तथा चित्रे त्रैलोक्यानुकृतिः स्मृता'[11]

किन्तु श्रेष्ठ चित्रकार वही हो सकता है जो -

1- असीम वैश्विक सौन्दर्य से सीधा सम्पर्क स्थापित करके अखण्ड आनन्दानुभूति आत्मसात् करने में समर्थ हो।

2- परिवर्तनशील जागतिक आनन्द से विचलित न हो।

3- नरत्व की भूमि से ऊपर उठकर मनन, इन्द्रिय निग्रह तथा समाधि से नारायणत्व प्राप्ति की सामर्थ्य वाला हो।

4- असीम दिव्य सौन्दर्य को असीम माध्यम से जीवन्त करने की क्षमता वाला हो।

5- दिव्य सौन्दर्य सृष्टा होकर लोक कल्याण व लोकरञ्जनार्थ सृष्टि करता हो।

अतः चित्रकार को समस्त ललित कलाओं (मूर्ति, चित्र, नृत्त, वाद्य और गीत) का सम्यके ज्ञान होना आवश्यक है। किसी एक का सम्यक् ज्ञान दूसरी कलाओं के ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। तभी तो सूत्रकार का स्पष्ट कथन है कि -

'चित्रसूत्रं न जानाति यस्तु सम्यङ् नराधिप ।
प्रतिमालक्षणं वेत्तुं न शक्य तेन कर्हिचित्।।'[12]

चित्रसूत्र के सम्यक् प्रयोग से किसी भी चित्र में प्राण-रस का सञ्चार किया जा सकता है, क्योंकि विभिन्न ललित कलाओं के बीच समानता, घनिष्ठता एवं एकता स्थापित करने का मूल स्रोत 'रस' है। कलाओं का जन्म रसाभिव्यक्ति के लिए ही हुआ है। रस कला की आत्मा है। रस और उनके वर्ण का वर्णन अध्याय तीस में किया गया है। यथा - श्रृंगार रस का वर्ण श्याम, रौद्र रस का रक्त, हास्य का श्वेत, भयानक का कृष्ण, वीर का गौर, अद्भुत का पीत, करुण का कापोत, वीभत्स का नीला तथा शान्त रस का स्वाभाविक वर्ण होता है।[13]

वर्ण की ही भाँति प्रत्येक रस के देवताओं की भी परिकल्पना यहाँ की गई । यथा - श्रृंगार के देवता विष्णु, रौद्र के रुद्र, हास्य के प्रमथ, भयानक के कालदेव, वीर के महेन्द्र, अद्भुत के ब्रह्मा, करुण के यम, वीभत्स के महाकाल तथा शान्त

रस के देवता पर पुरुष है।[14] विष्णुधर्मोत्तरपुराण का 'भावाध्याय' नामक इकतालीसवाँ अध्याय रूप में रस, स्थायी भावौर संचारी भावों की सुन्दर व्याख्या करता है। वस्तुतः कला में रसाभिव्यक्ति के लिए प्रमुखतः चार तत्व आवश्यक है-

1- इन्द्रियग्राही बाह्य जागतिक बोध।

2- लोककल्याणकारी व्यापक सार्वजनीन बीजभाव से प्रेरिच भावोद्रेक।

3- भावपूरित प्रेरक कल्पना।

4- शैलीगत चमत्कारपूरित मार्मिक अभिव्यञ्जना।

इसी प्रकार भावों की सफल अभिव्यञ्जना के लिए भी कुछ कौशलपूर्ण प्रयोग किए जा सकते हैं, जिनका उल्लेख इस पुराण में संक्षिप्ततः इस प्रकार देखा जा सकता है -

1- शारीरिक अवयवों में वांछित परिवर्तन करके।

2- पृष्ठभूमि के दृश्यों में वांछित उन्नतावनत उभार दिखाकर।

3- प्राकृतिक उपमाओं का सफल चित्रण करके।

4- परिधानों एवं अलंकारों का समुचित प्रयोग करके।

5- विभिन्न प्रतीकों यथा - आसन, मुद्रा, वाहन, आयुध तथा केतु आदि का सफल प्रयोग करके इत्यादि।

उपर्युक्त समस्त तत्वों को ध्यान में रखते हुए चित्रसूत्र में चित्ररस का ज्ञान कराने के लिए परम तपस्वी मार्कण्डेय जी महाराज वज्र से आयामोच्छायमान अर्थात् लम्बाई चौड़ाई तथा परिमण (प्रमाण) का वर्णन करते हैं। यथा- भावाभिव्यक्ति एवं रसाभिव्यक्ति हेतु पाँच प्रकार के पुरुष एवं स्त्री आकृति के प्रमाण व लक्षण बतलाते हुए वे कहते हैं, कि -

'हंसो भद्रोऽथ मालव्यो रुचकः शशकस्तथा ।

विज्ञेयाः पुरुषाः पञ्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ।।'[15]

हंस, भद्र, मालव्य, रुचक तथा शशक पुरुष लम्बाई, चौड़ाई के प्रमाण से अपनी अंगुलि की नाप से क्रमशः 108 अंगुल, 106 अंगुल, 104 अंगुल, 100 अंगुल तथा 90 अंगुल की ऊँचाई से ज्ञात होते हैं। स्त्रियों की ऊँचाई पुरुष के कन्धे तक ही अंकित की जानी चाहिए। पाँच प्रकार के नेत्रों का वर्णन शारीरिक अवयवों में वांछित परिवर्तन के उत्कृष्ट उदाहरण है, जो कि पाँच प्रकार के भावों का द्योतक है। यथा-

1- **चापाकार अथवा धनुषाकार नेत्र** - प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण भाव को प्रकट करते हैं।

2- **मत्स्योदर नेत्र** - कामुकता व विलासिता के भाव को अभिव्यक्त करते हैं।

3- **नीलोत्पल नेत्र** - सरलता, निर्विकार, सात्विक, गम्भीर शान्ति के द्योतक हैं।

4- **शाराकृतिनेत्र** - कुपित तथा व्यथित व्यक्ति के दर्शाये जाते हैं -

'क्रुद्धस्य वेदनान्तस्य नेत्रशाराकृतिर्भवेत् ।'[16]

इसी प्रकार केशों के भिन्न-भिन्न प्रकार विभिन्न भावों - विचारों व चरित्रों की अभिव्यक्ति के लिए बताए गये हैं-

'कुन्तलादक्षिणावर्तास्तङ्गाः सिंहकेसराः ।

वर्धरा जूटटसरा इत्येताः केशजातयः।।'[17]

सर्व लक्षण सम्पन्न चित्र कल्याणकारी होता है। लक्षणविहीन, मानहीन, चित्र सर्वथा त्याज्य होता है। लक्षण सम्पन्न प्रशस्त चित्र आयुष्य, यश तथा धन-धान्य वृद्धिकारक होता है -

चित्रलक्षणसंयुक्तं प्रशस्तं सर्वमुच्यते ।

आयुष्यं च यशस्यं च धनधान्यविवर्धनम्।।'[18]

39वाँ अध्याय 'क्षयवृद्धि प्रकरण' काल्पनिक चित्रों के अंकन हेतु भारतीय चित्रकला के नौ प्रकारों के उन स्थानों का वर्णन करता है, जो अपनी भंगिमाओं द्वारा भावाभिव्यक्ति करते हैं। यथा - ऋत्वागत, अनृजु, साचीकृत, अर्धविलोचन, पार्श्वागत, परावृत्त, पृष्ठागत, पुरावृत्त एवं समानत।[19]

चालीसवाँ अध्याय रंग योजना, रंगसम्मिश्रण की कला सिखाने वाला है, जो कि कला में नूतन रस - सृष्टि का द्योतक हैं। वर्ण विन्यास चित्र रचना में चित्रकार के चातुर्य्य की कसौटी माना जाता है। श्वेत, रक्त, पीला, काला और हरा - ये पाँच रंग प्रमुख हैं। इनके सम्मिश्रण से तथा भाव की कल्पना से उत्पन्न हुए अवान्तर वर्णों की संख्या अनगिनत होने से बतलाई नहीं जा सकती है -

'श्वेतो रक्तस्तथा पीतः कृष्णो हरितमेव च ।

संख्यैवान्तरवर्णानां लोके कर्त्तुं न शक्यते।'[20]

लोक में सम्मिश्रण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होने से श्याम और गौर वर्णों के विभाग को गौरी के पाँच प्रकार तथा श्यामा के बारह भेदों द्वारा स्पष्ट किया गया है -

'गौरी पञ्चविधा तत्र श्यामा द्वादशधा भवेत्।'[21]

रंग सम्मिश्रण भरत मुनि के नाट्यशास्त्र का भी अत्यन्त सुस्पष्ट एवं भावाभिव्यक्ति में सर्वोत्तम सहायक है। चित्रभेद की संकल्पना में सत्य, वैणिक, नागर और मिश्र जैसे चार प्रकारों का वर्णन करते हुए मार्कण्डेय जी ने चित्र के गुण-

दोषों का भी अतिसूक्ष्मता से विश्लेषण किया है। चित्रकारी के चार भूषण इस प्रकार हैं-

'रेखा च वर्तना चैव भूषणं वर्णमेव च ।

.... चित्रकर्मसुभूषणम् ।।[22]

अपि च -

'रेखा प्रशंसन्त्याचार्या वर्तनां च विलक्षणाः ।

स्त्रयो भूषणमिच्छन्ति वर्णाढ्यमितरे जनाः।।'[23]

चित्र में छाया - प्रदर्शन के महत्व को समझते हुए मार्कण्डेय जी ने पत्र, ऐरिक और बिन्दुज नामक तीन वर्तनाओं (छाया - प्रदर्शन) का वर्णन किया है। रूप निर्माण (देवता, मुनि, राजा, गन्धर्व, किन्नर आदि। प्राकृतिक दृश्य, नगर, चित्र, ऋतुचित्र तथा रात्रि-दिवस आदि का रचना विधान यहाँ अति सुन्दर निरूपित हैं। अगणित अलंकार, परिधान, आसन, मुद्राएँ वाहन, आयुध एवं प्रतीकों का विशद वर्णन है, जो कि अगणित भावों, विचारों एवं शक्तियों को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य रखते हैं। विभिन्न रसों एवं भावों के उद्दीपनार्थ अथवा अभिव्यक्ति की आवश्यकतानुसार पृष्ठभूमि के दृश्यों का भी बड़ा ही हृदयग्राही उपयोग यहाँ वर्णित है।[24] दृष्ट पदार्थ का चित्र ठीक उसी के सदृश बनाया जाना चाहिए -

चित्रे सादृश्यकरणं प्रधानं परिकीर्तितम्।'

यथा - राजा देवता के समान तो सेनापति विशालकाय, चौड़े कन्धे वाला, उन्नत वक्षस्थल चित्रित होना चाहिए। प्रत्येक पात्र का चित्रण उसके व्यक्तित्व का स्पष्ट संकेत देने वाला होना चाहिए। यथा - किन्नर दो प्रकार के होते हैं- एक मनुष्य मुख और शरीराकृति घोड़े की तो दूसरा मनुष्य देह और अश्वमुख। अलंकारों से विभूषित तथा तेजस्वी अंकित होना चाहिए। रस, भाव, और नृत्य आदि का यथोचित काल, देश और अवस्था के अनुकूल चित्रण प्रशंसित चित्रश्रेणी वाला होता है। श्रृंगार 26, हास्य 27, करुण 28, रौद्र 29, वीर 30, भयानक 31, वीभत्स 32, अद्भुत 33, शान्त 34 आदि नवों रसों का अत्यन्त सूक्ष्म विश्लेषण एवं चित्रांकन करने की अद्भुत कला इस पुराण में वर्णित है।

रसहीन चित्र की निन्दा करते हुए चित्रसूत्र मर्मज्ञ मार्कण्डेय जी ऐसे चित्र निर्माण को वर्जित मानते हैं-

'स्थानहीनं गतरसं शून्यदृष्टिमलीसम्।

चेतनारहितं वा स्यात्तदशस्तं प्रकीर्तितम् ।।'[35]

अपि च -

'हीनाङगं मलिनं शून्यं बद्धव्याधिभयाकुलम् ।

वृत्तं प्रकीर्णकिशैश्चासुमङ् गल्यै विवर्जयेत्।।'[36]

यथा- काव्य में नवरसोन्मेष काव्योत्कर्ष विधायक होता है, तथैव चित्र में भी रसों का चित्रण उत्कर्षाधायक है, चित्र का प्राण है, आत्मा है। भावपूर्ण चित्ररसवर्षण की सामर्थ्य वाला होता है। इतना ही नहींज्ञानपूर्वक चित्र संकल्पना उद्भूत चित्र पुरुषार्थ चतुष्टय सिद्धिदायक होते हैं। अतः रसाभिव्यक्ति तथा भावाभिव्यक्ति हेतु विष्णुधर्मोत्तर पुराण की चित्रकला संकल्पना जनित चित्रसूत्रम् के चित्ररस का सम्यक् ज्ञान अत्यन्तावश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- विष्णुधर्मोत्तर पुराण 3/43/38
2- श्री विष्णुधर्मोत्तर में चित्रकला, बद्रीनाथ मालवीय, इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग 1960, पृ. 2
3- तत्रैव
4- तत्रैव
5- कलानिधि, वासुदेव शरण अग्रवाल, भारत कला भवन, वाराणसी प्रथम अंक पृ. 9
6- विष्णु धर्मो. पु. 3/43/39
7- तत्रैव 3 / 1/5
8- तत्रैव 3/1/6, 7
9- तत्रैव 3/41/9
10- तत्रैव 3/43/19
11- तत्रैव 3/35/5
12- तत्रैव 3/2/1-8
13- तत्रैव 3/30/1, 4, 5, 6, 29, तथा 3/43/1 भी दृष्टव्य
14- तत्रैव 3/30/6-8
15- तत्रैव 3/35/8
16- तत्रैव 3/37/15
17- तत्रैव 3/37/8
18- तत्रैव 3/38/25
19- तत्रैव 3/39/2, 3
20- तत्रैव 3/27/8, 9
21- तत्रैव 3/27/10-16
22- तत्रैव 3/41/10
23- तत्रैव 23/3/41/11
24- तत्रैव 3/43/2, 3/42/73, 75, 76 आदि
25- तत्रैव 3/42/48
26- तत्रैव 3/43/2-10 दृष्टव्य
26- तत्रैव 3/43/20
27- तत्रैव 3/43/22, 23 भी दृष्टव्य

◈◈

ISSN : 2349-9273

भारत श्रीलंका सम्बन्ध

- डॉ. इन्द्रजीत कौर
प्रवक्ता -
आर. सी. आर. डी. कन्या महाविद्यालय,
चकरपुर-सचेंडी,
कानपुर नगर (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
drindrajeetkaur12@gmail.com

विश्व के अन्य देशों की भाँति भारत-श्रीलंका भी उपनिवेशीकरण का शिकार हुए थे। भारत की भाँति श्रीलंका भी लगभग 150 वर्षों तक विदेशी प्रभुत्व के आधीन रहा। श्रीलंका की भूमि चाय के उत्पादन के लिए काफी उपयुक्त थी तथा इसकी बाजार में काफी माँग थी। अंग्रेजों ने इस माँग की पूर्ति के लिए चाय बागानों को सुदृढ़ बनाने का बीड़ा उठाया। इसके लिए उन्हें सस्ते श्रमिकों की आवश्यकता थी। श्रमिकों की पूर्ति के लिए भारत जैसे विशाल देश की ओर निगाह बढ़ाई। सबसे पहले वे भारत के तमिलनाडु राज्य से श्रमिकों को ले जाने में सफल हो गये। इन श्रमिकों को वह ले जाने से पहले वादा किया था कि वह पर उन्हें सिंहलियों के समान अधिकार प्राप्त होंगे। इस तरह के प्रयास से श्रीलंका में तमिलों की संख्या दस लाख हो गयी। तमिलों ने अपने परिश्रम से वहाँ की अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार किया। इस तरह वहाँ पर इनका प्रभाव बढ़ गया। तमिलों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर सिंहली इनको घृणा की दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने बागों में काम करने वाले भारतीय श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार को देखकर भारत सरकार ने वहाँ जाने वाले तमिलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे श्रीलंका की आर्थिक स्थिति डगमगा गयी। श्रीलंका सरकार ने भारतीय सरकार से अनुरोध किया कि वह अपने श्रमिकों को श्रीलंका भेजना जारी रखे। उनके साथ किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया जायेगा। श्रीलंका के इस आश्वासन ने भारत सरकार में विश्वास की भावना उत्पन्न की।1847 में भारत सरकार ने श्रीलंका जाने वाले को श्रमिकों अपनी अनुमति प्रदान की।1920 एवं 1923 के मध्य बने संविधान में श्रीलंका सरकार ने सिंहली नागरिकों की भाँति तमिलों को नागरिकता प्रदान की। उन्हें मताधिकार भी प्राप्त हो गया। 1931 यह तक मताधिकार उन्हें अनवरत प्राप्त होता रहा। लेकिन 1935 के बाद परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ।

तमिलों के प्रति श्रीलंका सरकार की नीति भेदभाव पूर्ण हो गयी। भारत सरकार श्रीलंका की इस नीति का निरन्तर विरोध करती रही तथा हर परिस्थिति में तमिलों को समर्थन करती रही। इस समस्या का समाधान हो इसके पूर्व ही समूचे विश्व में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। इस महायुद्ध का प्रभाव भारत और श्रीलंका पर भी पड़ा। दोनों देश महायुद्ध से उपजी समस्या से उलझ गये। लेकिन 1944 में जब महायुद्ध समाप्त होने की स्थिति में आ गये तो अंग्रेजों ने सिलोन सरकार के संविधान का अध्ययन प्रारम्भ किया। उन्होंने तमिल समस्या के समाधान के लिए लार्ड सोलेवरी के नेतृत्व में एक सोलेवरी आयोग का गठन किया। इस आयोग ने तमिल एवं सिंघलियों से अलग अलग अलग वार्ता करके समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न किया। लेकिन वे लक्ष्य में सफल नहीं हो पाए। इसका कारण यह था कि वे तमिल आयोग से विधायिका की बराबर में हिस्सेदारी माँग रहे थे। अन्ततः यह आयोग अंतिम निष्कर्ष देने में असमर्थ रहा।

अल्पसंख्यक समूहों की तरह आत्मरक्षा के भाव से श्रीलंका के उत्तरीय तटीय इलाके में वे सघन तरीके से बसते गये उनमें अल्पसंख्यकीय हीनता के भावना से ग्रस्त होते गये और बहुसंख्यक सिंहली के अत्याचार से मुक्ति हेतु जाफना इलाके की स्वतंत्रता की मांग को उन्होंने तीव्र किया। उन्होंने अपने संघर्ष को हिंसक मोड़ दिया और आतंकवाद के नये तौर तरीके अपनाये। विश्व के आतंकवादी इतिहास

में सर्वोच्च बलिदान का नया रूप तमिल ईलम आतंकवादी गुटों ने दिखलाया और अपने विरोधी के खात्मे के लिए मानव बम का इस्तेमाल एक नयी खोज की। 1983 के दंगों में भारत ने पहली बार हस्ताक्षेप किया। श्रीमती गाँधी ने कहा- कि तमिल समस्या में भारत दूसरे देशों के समान नहीं रह सकता क्योंकि इसका सम्बन्ध भारत एवं श्रीलंका दोनों देशों से है।

जुलाई, 1987 में श्रीलंका की सरकार ने सेना की आवश्यकता को महसूस किया। भारत ने 1500 शान्ति सैनिक को श्रीलंका भेजा धीरे-धीरे संख्या बढ़ती गयी। कुछ ही दिनों में शान्ति सेना ने तमिल छापामारों को आत्म-समर्पण करने के लिए मजबूर कर दिया लिट्टे उग्रवादियों ने अपने हथियार भी डालने शुरू कर दिये, बाद में लिट्टे ने भारतीय शान्ति सेना का जमकर विरोध किया। लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण ने अपने वक्तव्य में कहा कि इस समझौते में तमिल जनों के हितों की अपेक्षा की गयी है। इसके बाद तमिल उग्रवादी 11 अक्टूबर, 1987 को शान्ति सैनिकों के सामने आ गये। तमिलों की इस तरह की प्रतिक्रिया से समझौते पर प्रश्न चिन्ह लग गया।

दोनों गुटों (तमिल उग्रवादी एवं शान्ति सेना) के मध्य ऐसा रक्तपात शुरू हो गया जिसकी भारतीय सरकार ने कल्पना भी नहीं की थी। 1988 वामपंथी धड़े और सिंहल राष्ट्रवादी पार्टी जनता विमुक्ति पैरामुना (जे. वी. पी.) ने भारत-श्रीलंका समझौते के खिलाफ अभियान शुरू किया राष्ट्रपति प्रेमदासा भारतीय शान्ति सेना के विरोधी थे। लेकिन वे अपनी विचारधारा को स्पष्ट नहीं कर रहे थे। प्रेमदासा ने भारत विरोधी नीति अपनायी। इसी बीच लिट्टे उग्रवादी अपनी सरकार का इशारा पा कर शान्ति सेना पर तीव्र हमला भी करने लगे। उग्रवादियों के हमले में शान्ति सेना के कई सैनिक भी मारे गये। अतः दोनों देशों (भारत-श्रीलंका) के मध्य गहरा मतभेद उत्पन्न हो गया शान्ति सेना वहाँ की कुटिल राजनीति का शिकार बन गयी। शान्ति सेना की वापसी हेतु दोनों देशों ने 18 सितम्बर, 1989 में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। श्रीलंका के विदेश मंत्री रंजन विजयरत्ने भारत की यात्रा पर आये और उन्होंने 4 फरवरी, 1990 तक शान्ति सेना की वापसी का अनुरोध किया। भारतीय प्रधानमंत्री वी. पी. सिंह ने आये हुए विदेशी मंत्री से कहा कि उनकी सरकार शान्ति सेना की वापसी के लिए कुछ विषयों पर निर्णय करने के उपरान्त ही विचार करेगा। इसी बीच श्रीलंका सरकार ने प्रयास कर के शान्ति सेना की वापसी के लिए भारत सरकार से अनुमति प्राप्त कर ली। इसी के साथ 24 मार्च, 1990 तक भारतीय शान्ति सेना की अन्तिम टोली भी भारत आ गयी। 21 मई, 1991 को भारतीय पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या इन्हीं तमिल चीतों ने मानव बम का प्रयोग करके किया। जब भारत में इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिल गया कि राजीव गाँधी की हत्या के पीछे तमिल चीतों का हाथ है, तो तमिलों के प्रति भारतीयों की सहानुभूति समाप्त हो गयी।

मई, 1993 को राष्ट्रपति प्रेमदासा की हत्या भी इन्हीं तमिल चीतों ने की। अगस्त, 1994 में चन्द्रिका कुमारतुंगा श्रीलंका की प्रधानमंत्री बनी नवम्बर में हुए चुनाव में श्रीमती तुंगा राष्ट्रपति निर्वाचित की गयी। दिसम्बर, 1998 में श्रीमती कुमारतुंगा की भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों में मुक्त व्यापार को बढ़ाने हेतु एक समझौता 1 मार्च, 1999 में प्रभावी हो गया। इससे दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार बढ़ेगा। श्रीमती कुमारतुंगा की यात्रा भारत में मई, 1998 के पोखरन परमाणु परीक्षण के बाद हुई जिससे सिद्ध होता है कि श्रीलंका ने भारत की सुरक्षा सम्बन्धित पहल का उचित आंकलन किया है। इस दौरान भारत व श्रीलंका के मध्य मित्रता की कोशिश जारी रही।

2000 में श्रीलंका में आन्तरिक संकट काफी गहरा हो गया। श्रीलंका सरकार ने भारत से सहायता करने का अनुरोध किया। 2002 के प्रारम्भ में विक्रम सिंघे भारत की यात्रा पर बंगलौर आये उनकी यात्रा का उद्देश्य शान्ति प्रयासों के लिए भारत का समर्थन हासिल करना था।

2 अप्रैल, 2004 महिद्रा राजपक्षे श्रीलंका के प्रधानमंत्री बने जो कि लिट्टे के घोर विरोधी थे। श्रीलंका सरकार और लिट्टे के बीच लड़ाई के दौरान निहत्थे तमिल नागरिक के मारे जाने का घटनाओं पर भारत ने गम्भीर चिन्ता व नाखुशी व्यक्त की। अतः 17 मई, 2009 को लिट्टे प्रमुख प्रभाकरण को श्रीलंका सरकार ने मार गिराया तथा लड़ाई समाप्त हो गयी। यह लड़ाई लगभग 25 वर्षों तक चली, इस लड़ाई का उद्देश्य तमिलों को अधिकार दिलाना था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- डॉ. बी. एल. फड़िया - अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

2- अनिल अमर सिकेरा - काइसिस इन श्रीलंका, कोलम्बो,1973

3- एस. अरसरत्नम - श्रीलंका अप - टर इंडीपेंडस, मद्रास, 1986

4- पी.आर. रामा राव - इंडो सीलोन रिलेशन

5- टाइम्स ऑफ इंडिया, कानपुर संस्करण

6- हिन्दुस्तान, दिल्ली संस्करण

7- दैनिक जागरण, कानपुर संस्करण

8- अमर उजाला, कानपुर संस्करण

9- अमृत प्रभात, आगरा संस्करण

10- इंडिया टुडे

ISSN : 2349-9273

कानपुर नगर-देहात जनपद के ग्रामीण विकास में क्षेत्र से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर बैंकों की भूमिका की नियोजन योजना

- डॉ. अजय कुमार तिवारी
विभागाध्यक्ष - भूगोल विभाग,
श्रीरामकृष्ण परास्नातक महाविद्यालय,
कुरारा-हमीरपुर (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
tiwariajay246@gmail.com

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र में ग्रामीण विकास में बैंकों की भूमिका पर जनपद कानपुर देहात के ग्रामीणों को वर्ष 1981-82 से वर्ष 1990-91 तक कृषि विकास, व्यापार / सेवा क्षेत्र एवं लघु उद्योग क्षेत्र में दिए गये ऋण के सामायिक वितरण तथा क्षेत्रीय वितरण के अध्ययन के उपरान्त प्रस्तुत अध्ययन में पिछले अध्यायों से निकले निष्कर्षों के आधार पर जनपद में आदर्श ग्रामीण विकास में बैकों की भूमिका की नियोजन योजना प्रस्तुत की गई है।

प्रस्तुत ग्रामीण विकास में बैकों की भूमिका नियोजन योजना 9 वर्षों में प्रति विकास खण्ड स्तर पर मिले कुल ऋण के वार्षिक औसत पर आधारित है। इस तथ्य की नियोजित योजना में प्रमुखता इसलिए दी गई है। क्योंकि साधारणतया कृषि क्षेत्र में ऋण कृषकों की कृषिगत भूमि को देखकर तथा लघु उद्योग क्षेत्र में मार्जिन मनी या भूमि बंधक तथा व्यापार / सेवा क्षेत्र में मार्जिन मनी या भूमि बंधक कर दिया जाता है। यद्यपि वर्ष 1976-77 से विकास खण्डों में व्यवसायिक सहकारी एवं कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों लघु एवं सीमान्त वर्ग के कृषकों को एकीकृत ग्राम विकास योजना तथा हरिजन (स्पेशल) कम्पोनेट प्लान जैसी योजनाओं के अन्तर्गत बिना भूमि बंधक किए कृषि ऋण दिया जाना आरम्भ हो गया, फिर भी अधिकांशतयः मध्यावधि तथा दीर्घावधि ऋण आज भी कृषि भूमि को बंधक बनाकर दिया जाता है।

नियोजित योजना प्रस्तुत करते समय अधिकतम वार्षिक औसत को ध्यान में रखकर उसकी तुलना प्रत्येक विकास खण्ड के वार्षिक औसत से की गई है। ऐसा इसलिए किया गया है कि है क्योंकि माना गया है कि जो राशि अधिकतम वार्षिक औसत की है। उतनी ही वार्षिक औसत की राशि प्रत्येक विकास खण्ड की होनी चाहिए। कृषि क्षेत्र में औसत ऋण 19,18,388 हजार रुपये एवं सर्वाधिक ऋण विकास खण्ड पतारा में व्यवसायिक बैंकों द्वारा 61,478 हजार रुपये दिया गया। अन्य विकास खण्डों से तुलना करने के लिए पूर्णांक करके 61,500 हजार रुपये मान लिया गया है। ऐसा अध्ययन की सरलता की दृष्टिकोण से किया गया है, इसलिए अधिकतम ऋण 61,500 की तुलना अन्य विकास खण्डों से करते समय यह दिखाए का प्रयास किया गया है कि कितना और ऋण प्रत्येक विकास खण्ड को दिया जाये, जिससे इन विकास खण्डों का औसत ऋण अधिकतम् ऋण के बराबर हो जाय। इस प्रकार के अध्ययन में विकास खण्ड स्तर पर कुल अन्तर का महत्व प्रासांगिक नहीं है, क्योंकि नियोजित योजनायें अधिकतम वार्षिक औसत की राशि का आधार मानकर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि इतनी ही राशि प्रत्येक विकास खण्ड को मिलनी चाहिए।

इसी प्रकार सहकारी बैंकों ने 9 वर्षों में कृषि क्षेत्र में 4,34,028 हजार रुपये का ऋण वितरण हुआ, यानी प्रति विकास खण्ड औसत ऋण का वितरण 25,531.05 हजार रुपयों का हुआ। सर्वाधिक ऋण का वितरण 32,063 हजार

रुपये (विकास खण्ड शिवराजपुर में हुआ) अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे 32,100 कर लिया गया है। 32,100 की तुलना अन्य विकास खण्डों से करते समय यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि कितना ऋण प्रत्येक विकास खण्ड को दिया जाए।

इसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRB) ने 1,63,953 हजार रुपये का ऋण वितरित किया गया, जिसमें प्रति विकास खण्ड औसत ऋण का वितरण लगभग 9,644.29 हजार रुपये का हुआ तथा सर्वाधिक ऋण का वितरण विकास खण्ड घाटमपुर में 1,327 हजार रुपयों का हुआ। अध्ययन की सुविधा के लिए इसे 13,500 कर लिया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कृषि के क्षेत्र में विभिन्न बैंकों ने अलग-अलग विकास खण्डों में सर्वाधिक ऋण वितरित किया है। व्यवसायिक बैंक ने विकास खण्ड पतारा में सहकारी बैंक विकास खण्ड शिवराजपुर में तथा कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ने विकास खण्ड घाटमपुर में सर्वाधिक ऋण प्रदान किया है। अध्ययन क्षेत्र में बैंकों की स्थिति कृषि के क्षेत्र में प्रथम स्थान पर सहकारी बैंक दूसरे नम्बर पर व्यवसायिक बैंक तथा तीसरे स्थान पर कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण विकास का नम्बर है।

लघु उद्योग क्षेत्र की योजनाओं में सहकारी बैंकों ने 4,085 हजार रुपये का ऋण वितरित किया। प्रति विकास खण्ड औसत ऋण का वितरण 240.29 हजार रुपयों का हुआ (अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे 300 हजार रुपये मान लिया गया है)। सर्वाधिक ऋण विकास खण्ड रसूलाबाद में 442 हजार रुपये का हुआ जिसे अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे 500 हजार रुपये कर लिया गया है। 500 हजार रुपये की तुलना अन्य विकास खण्डों से करते समय यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि कितना ऋण प्रत्येक विकास खण्डों को दिया जाए।

अध्ययन क्षेत्र में लघु उद्योग क्षेत्र में विभिन्न बैंकों ने अलग-अलग विकास खण्डों में सर्वाधिक ऋण प्रदान किया गया है। व्यावसायिक बैंक ने विकास खण्ड पतारा में सहकारी बैंक ने विकास खण्ड रसूलाबाद में तथा कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों ने विकास खण्ड घाटमपुर में सर्वाधिक ऋण प्रदान किया।

अध्ययन क्षेत्र में लघु उद्योग क्षेत्र में व्यावसायिक बैंक प्रथम स्थान पर दूसरे स्थान पर कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा सहकारी बैंक का स्थान तीसरा है।

अध्ययन क्षेत्र में विभिन्न बैंकों ने अलग-अलग विकास खण्डों में सर्वाधिक ऋण प्रदान किया है। व्यावसायिक बैंक ने विकास खण्ड पतारा में सहकारी बैंक ने विकास खण्ड घाटमपुर में तथा कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक ने भी विकास खण्ड घाटमपुर में सर्वाधिक ऋण व्यापार / सेवा क्षेत्र में प्रदान किया जनपद में व्यावसायिक बैंक का प्रथम स्थान तथा कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का दूसरा तथा सहकारी बैंक तीसरे स्थान पर व्यापारह्व सेवा क्षेत्र में है। जनपद कानपुर देहात के ग्रामीण विकास में विभिन्न बैंकों ने वर्ष 82-83 से 90-91 तक कुल 9 वर्षों में 1,77,24,99 हजार रुपयों का ऋण 11,30,439 लोगों को वितरित किया गया।

जिसमें से व्यवसायिक बैंकों ने 6,35,669 हजार रुपयों का रुपये 197324 लोगों में वितरित किया गया सर्वाधिक ऋण विकास खण्ड पतारा 103764 हजार रुपये 50962 न्यूनतम ऋण विकास खण्ड डेरापुर में 16,523 हजार 4337 लोगों में वितरित किया गया।

अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक ऋण सहकारी बैंकों ने दिया इसका स्थान प्रथम दूसरे नम्बर पर व्यवसायिक बैंक तथा तीसरे स्थान पर कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों का है। ग्रामीण विकास में यदि कृषि ऋण के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होता है। कि जनपद में अल्प अवधि ऋण सबसे अधिक दिया गया, इसका तात्पर्य यह है कि फसली ऋण वितरण की अध्ययन क्षेत्र में अधिवकता रही। इस तथ्य को सन्तोषजनक इसलिए कहा जा सकता है कि अल्प अवधि ऋण की राशि तथा ऋण वापसी की अवधि रबी एवं खरीफ पर आधारित होने के कारण यह ऋण अधिक संख्या में वितरित हो जाता है। यद्यपि ग्रामीण विकास में कृषि के विकास में मध्यावधि तथा दीर्घावधि ऋणों की आवश्यकता है। फिर भी अधिक संख्या में कृषकों को लाभान्वित करने के दृष्टिकोण से अल्प अवधि ऋण जनपद में अधिक से अधिक कृषकों को वितरित किये जाने चाहिए। ग्रामीण विकास में कृषि की प्रधानता के साथ दूसरे स्थान पर लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास होना चाहिए। इसके साथ-साथ व्यापार / सेवा क्षेत्र के विकास से ग्रामीण विकास होना चाहिए।

सहकारी बैंकों की शाखाओं ने अध्ययन क्षेत्र में कृषि ऋण कृषक को अधिक सुलभ कराया है। इस तथ्य को ऋण वितरण की प्रक्रिया में शुभ संकेत इसलिए माना जा सकता है क्योंकि देश में अभी तक के अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कृषक आज भी इन सहकारी समितियाँ से स्वयं को अधिक निकटता से जुड़ा पाते हैं। यह समितियाँ विकास खण्ड स्तर पर स्थापित होने के कारण कृषकों की आवश्यकताओं तथा

समस्याओं से अधिक निकट से जुड़ी हैं।

जनपद में व्यवसायिक बैकों की शाखाएँ प्रत्येक विकास खण्ड में है और वह भी कृषि क्षेत्र में ऋण वितरित कर रही है। व्यवसायिक बैंक तथा कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का योगदान भी सन्तोषजनक कहा जा सकता है।

विभिन्न योजनाओं के तथा विभिन्न उद्देश्यों के अन्तर्गत सबसे अधिक ऋण कृषि क्षेत्र की योजनाओं तथा कृषि क्षेत्र के उद्देश्यों के अन्तर्गत सर्वाधिक ऋण फसली ऋण के लिए कृषकों को दिया गया तथा इसके बाद क्रमशः लघु सिचाई यन्त्र ट्रैक्टर, दुग्ध पालन, गोबर गैस संयंत्र तथा अन्य उद्देश्यों हेतु कृषकों को ऋण प्रदान किया गया।

भविष्य में जनपद में डेरी विकास, भेड़ पालन, बकरी पालन, सुअर पालन तथा मुर्गी पालन इत्यादि कृषि से सम्बन्धित क्रियाओं के अन्तर्गत और अधिक ऋण देने की आवश्यकता है।

विभिन्न वर्ग के कृषकों को ऋण दिए जाने के संदर्भ में सर्वाधिक ऋण जनपद में लघु सीमान्त वर्ग के कृषकों को दिया गया इसके बाद सीमान्त वर्ग के कृषकों को ऋण प्रदान किया गया उच्च वर्ग के कृषकों को ऋण अध्ययन क्षेत्र में बहुत ही कम प्रदान कियान गया है। ऋण लेने वाले कृषकों की संख्या में भी इसी प्रकार की अनुकूलता देखी जा सकती है। वर्तमान समय में जनपद में कुल कृषक संख्या में 80 प्रतिशत कृषक लघु एवं सीमान्त वर्ग के हैं। लेकिन जनपद में कुल 9 वर्षों में विभिन्न वर्गों के कृषकों को दिये गये ऋण में मात्र 35 प्रतिशत लघु तथा सीमान्त वर्ग के कृषकों को ऋण प्रदान किए गये। इस स्थिति को कदापि सन्तोषजनक नहींकहा जा सकता है। भविष्य में लघु सीमान्त वर्ग के कृषकों को अधिक से अधिक ऋण सुलभ कराने हेतु बैकों को विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत ऋण देकर उनके जीवन स्तर को उठाने का प्रयास करना चाहिए।

यही स्थिति लघु एवं कुटीर उद्योग की नजपद में है। बैंकों को अधिक से अधिक ऋण इस क्षेत्र में भी उपलब्ध कराना चाहिए, जिससे जनपद का विकास लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र में हो सके। भविष्य में बैंके सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के अन्तर्गत इस क्षेत्र में ऋण उपलब्ध करा सकती है।

व्यापार / सेवा क्षेत्र में बैंक ऋण सरकार की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत उपलब्ध कराती है। परन्तु सबसे अधिक ऋण इस क्षेत्र में कानपुर क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के द्वारा उपलब्ध कराया गया। यह ऋण अधिकतर गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों को ही उपलब्ध कराया गया है।

सर्वेक्षण विधि के आधार पर अध्ययन करते समय ऋण लेने वालों की तथा ऋण प्रदान करने वाली बैंकिंग संस्थाओ की समस्यायें भी उभर कर सामने आई। इन समस्याओं का सरकार की ओर से तथा व्यक्तिगत स्तर सुलझाया जाना चाहिए। कृषकों की सबसे बड़ी समस्या अशिक्षा की है तथा लघु एवं कुटीर उद्योग के क्षेत्र की समस्या उसके कुशल संचालन की है एवं व्यापार / सेवा क्षेत्र की समस्या अशिक्षा और सरकार द्वारा दी जाने वाली छूट है। क्योंकि सरकार द्वारा जनपद को प्रत्येक विकास खण्ड के लिए अलग-अलग योजनाओं में अलग-अलग ऋण दिया जाता है। जैसे- पान की दुकान के लिए ऋण, घोड़ा गाड़ी के लिए ऋण, सिलाई की दुकान के लिए ऋण आदि अनेक प्रकार से ऋण दिया जाता है। इन्हीं योजनाओं की छूट का लाभ उठाने के लिए ऋण प्राप्तकर्ता अनेक प्रयास कर उसे प्राप्त करना चाहता है। चाहे वह उसका पात्र हो या न हो।

अधिकांश कृषक अशिक्षित होने के कारण अपने कार्यक्रमों के बारे में जानकारी रखने में असमर्थ रहते हैं। इस समस्या के निदान हेतु जनपद में प्रत्येक विकास में अधिक से अधिक शिक्षा केन्द्र तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को खोलना चाहिए और समय-समय पर सरकारी अधिकारियों को ग्रामों में जाकर कृषकों को उनके कार्यक्रमों तथा अन्य लोगों को सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के बारे में अवगत कराना चाहिए। यद्यपि सरकार इस ओर जागरुक है। फिर भी इन प्रयासों में तेजी लाने की आवश्यकता है।

जनपद में यातायात के साधन अच्छे नहीं हैं, फिर भी प्रत्येक विकास खण्ड सड़क मार्ग से जुड़े हैं। लेकिन ग्रामों को विकास खण्ड से पक्की सड़क मार्गों द्वारा जोड़ा जाना चाहिए, जिससे कृषक आसानी से ऋण शाखाओं में जाकर ऋण ले सकें तथा उनके धन तथा समय का अपव्यय न हो सके।

जनपद में कृषक तथा अन्य ऋण प्राप्तकर्ता स्थानीय राजनैतिक तथा सामाजिक शोषण के दुष्चक्र से भी ग्रस्त हैं, परिणामस्वरूप कृषक तथा अन्य प्राप्त कर्ता को अपेक्षित ऋण नहींमिल पाता है। इस दिशा में सुधार लाने हेतु बैंकों को आगे आना चाहिए। इसी के साथ ऋण लेने की प्रक्रिया में भी सुधार की आवश्यकता है। वर्तमान समय में ऋण लेने की प्रक्रिया का जो प्रारूप है, उसमें कृषक तथा अन्य ऋण प्राप्तकर्ता का धन तथा समय का अपव्यय होता है। ऋण प्रक्रिया को सरल बनाने हेतु तहसील तथा विकास खण्ड स्तर पर सरकारी कार्यालयों का हस्ताक्षेप कम होना चाहिए।

ग्रामीण विकास के उद्देश्यों हेतु व्यवसायिक सहकारी

तथा क्षेत्रीय बैंकों में वातावरण कुछ इस प्रकार होना चाहिए, जिससे ऋण प्राप्तकर्ता तथा ऋण प्रदान करने वाली बैंकिंग संस्था के बीच की दूरी कम हो सके। यदा-कदा यह भी देखने को आता है। कि ऋण प्राप्तकर्ता ऋण का दुरुपयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में जिस उद्देश्य हेतु ऋण लिया जाता है। उस कार्य में राशि को व्यय न करके उस राशि को व्यक्तिगत तथा पारिवारिक कार्यों में व्यय कर देता है।

इस प्रकार की स्थिति भी लगभग प्रत्येक विकास खण्ड में देखने में आई है। इस दिशा में बैंकों के अधिकारियों को सजग रहकर समय-समय पर ऋण प्राप्त कर्ता के यहाँ निरीक्षण करना चाहिए।

बैंकों की प्राथमिकताओं एवं वित्तीय प्रावधानों में विसंगति पाई जाती है। जिससे सामाजिक, आर्थिक विषमता उत्तरोत्तर बढ़ती है।

राजनैतिज्ञ कारकों ने भी बैंकों की ऋण व्यवस्था को प्रभावित किया है। पिछड़े हुए क्षेत्रों में बैकों के आर्थिक क्रिया-कलापों के प्रजनन में अक्षम रहे हैं।

क्षेत्रीय विकास की योजनाओं एवं बैंकिग की स्वीकृतियों के मध्य अनेक कड़ियाँ खण्डित हैं, जिसके कारण उपलब्ध ऋण अंशमात्र ही लाभार्थी को मिल पाता है।

जनपद में लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा कृषि से सम्बन्धित उद्योगों को आंशिक रूप से ऋण दिया गया है। इस दिशा में जनपद के विकास खण्डों में स्थित बैंकिंग संस्थानों को ग्रामीण उद्योगों के विकास हेतु ग्रामीण कारीगरों को अधिक ऋण प्रदान करना चाहिए। वर्तमान समय में जनपद में लघु एवं कुटीर उद्योग का विकास कम है। जिला उद्योग के विकास के लिए समन्वित योजना बनाकर अधिक से अधिक ऋण का प्रावधान करने की आवश्यकता है।

क्षेत्रीय आधार पर ग्रामीण विकास में बैंकों की ऋण वितरण की भूमिका का प्रारूप तैयार करना अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य रहा। इसलिए इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए क्षेत्रीय आधार पर ऋण वितरण के सन्तुलन को दूर किये जाने की आवश्यकता है।

जनपद में शत-प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण होने के कारणों यह आवश्यक हो जाता है कि क्षेत्र में अधिक से अधिक ऋण कृषकों तथा अन्य ऋण प्राप्तकर्ता को सुलभ कराया जाये, जिससे कृषि के साथ ग्रामीण विकास की ओर कदम बढ़ाये जा सकें।

जनपद में ग्रामीण विकास हेतु प्रत्येक विकास खण्ड में प्रत्येक विकास खण्ड की ग्राम सभा स्तर पर व्यवसायिक, सहकारी तथा क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की शाखाओं का गठन होना चाहिए। निश्चय ही भविष्य में नवीन बैंकिंग शाखाओं के गठन के साथ जनपद कानपुर देहात बहुमुखी ग्रामीण विकास की ओर उन्मुख होगा तथा देश के ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को मजबूत करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देगा क्योंकि ग्राम न्यायपंचायत, विकास खण्ड जनपद स्तर पर सर्वोन्मुख विकास का प्रत्यक्ष देश के विकास से जुड़ा होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Financial Institutes of India - Edited by Vadilal Dagli, Editor - Commerce Weekly Bombay Commerce Economic Studies Vol. XII.
2. Agricultural Credit in India - `An Appraisaly by B. N. Dubey, Editor- J. Kadi Sia Publication - World Agriculture Fair Formers Welfare Trust Society I-I Nizamuddin West, New Delhi.
3. Multi Agency Approach in Agricultural Credit by R. D. Bedi.
4. Recent Strategies in Agricultural Finance from Credit to Development Banking by M. N. Upadhaya.
5. Financing of Primary Agricultural Credit Societies Commercial Banks by T. S. K. Chari.
6. Problems of Financing Agricultural Credit Co-operatives, by Agricultural Department (R. B. I.).
7. New Orientation in Rural Credit by Bank of India Buletin.
8. Raj K. N. - Indian Economic Growth Performance and Prospects (Nalanda Lecturers) Bombay Allied Publication-1965.
9. Baghchi, Amiya Kumar - Shadow Prices Controls and Tariff Protection in India. Indian Economics Reviews New Services Vol., 1 April, 1966.
10. Sen, Lalet K. - Readings on Micro Level Planning and Rural Growth Centres Hyderabad National Institute of Community Development 1972.

◈◈

रुक्मिणीहरण ईहामृग एवं उर्वशीसार्वभौमेहामृग के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन

– श्रीमती सन्नो देवी
असि. प्रोफेसर – संस्कृत विभाग,
ए. एन. डी. कालेज, हर्षनगर,
कानपुर–208021 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
sannodevi03@gmail.com

नाटकीय पात्रों का चरित्र मानव–हृदय की विभिन्न अनुभूतियों, जीवन की विभिन्न दशाओं तथा अनेक लोकादर्शों का संवहन करता है। वस्तुतः चरित्र से असम्बद्ध नाटकीय कथानक, घटनाएँ और परिस्थितियों से युक्त रूपक बुद्धिहीन बाल–प्रयास ही माना जाता है। अतः चरित्र–चित्रण रूपकों का अनिवार्य एवं स्थायी तत्त्व है।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से रूपक का द्वितीय भेदक तत्त्व नेता (नायक) है।[1] रूपक के नेता तत्त्व से प्रायः नायक, नायिका तथा उनके सहायक आदि सभी पात्रों ग्रहण हो जाता है। पात्रों की भिन्न–भिन्न संज्ञाएँ होती हैं। पुरुष पात्रों में नायक, उपनायक, प्रतिनायक, पीठमर्द, सूत्रधार, विदूषक, विट, चेट आदि स्त्री पात्रों में नायिका, उपनायिका, चेटी आदि संज्ञाएँ होती हैं।

महाकवि वत्सराजकृत रुक्मिणीहरण ईहामृग और प्रधानवेङ्का–मात्यकृत उर्वशीसार्वभौमेहामृग दोनों ही रचनाएँ रूपक–भेद ईहामृग कोटि की हैं। आलोच्य ईहामृग रूपकों का पात्र–योजना की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार है –

नायक –

रुक्मिणीहरण ईहामृग रूपक का नायक कृष्ण पराक्रम, औद्धत्य, दर्प एवं विकत्थना आदि गुणों से युक्त है। नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार उसका समावेश धीरोद्धत नायक की कोटि में किया जाता है। कृष्ण का व्यक्तित्व मनोहर तथा वीरत्व का व्यंजक है।

कृष्ण के चरित्र में शौर्य तथा साहस के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। वह रुक्मिणी को भेजे गये शिशुपाल के पत्र से स्वयं को अपमानित अनुभव कर प्रतिशोध के लिए उद्धत हो जाता है और गृहस्थपरिपाटीकदर्थना को छोड़कर अपने खड्ग नन्दक को दूत बनाता है।

रुक्मिणी को रथ में बिठाकर ले जाता हुआ कृष्ण जब शिशुपाल को बलदेव का पीछा करता हुआ देखता है, तो अकेला ही उसे ललकार कर लड़ने को उद्धत हो जाता है–

आः तिष्ठ तिष्ठ–
मा मूढ! झम्पां कुरु वाडवाग्नौ
चेदीन्द्र!मा रोषय रौहिणेयम्।
अस्मिन्मनागप्यधिरूढरोषे
कालस्य पुर्यां परमस्ति वासः।।[2]

आलोच्य रूपक का नायक कृष्ण शत्रुओं का संहार करने में समर्थ है, किन्तु सच्ची वीरता केवल शत्रु को परास्त करने में नहीं, अपितु उसके शरण में आ जाने पर क्षमा प्रदान करने में है। वीरों का विरोध व्यक्ति से नहीं, नीति से होता है। अतएव कृष्ण अपनी शरण में आये हुए शिशुपाल एवं रुक्मी को दण्डित कर छोड़ देते हैं। वह निर्भीक, साहसी, रणकुशल योद्धा होने के साथ–साथ परदुःख कातर भी है। उसकी भ्रातृ–भावना, बड़ों के प्रति श्रद्धा, रूप तथा शिष्टाचार सभी के द्वारा प्रशंसित है।

किशोरावस्था की चंचलता और यौवन के उत्साह के कारण उसमें औद्धत्य, दर्प एवं विकत्थना का भाव भी दिखाई देता है –

कृष्णः –
अयि सुमन्त्रिणः ! किमुच्यते युष्मासु?
दम्भोलिरुत्पलपलाशमृदुस्तदग्रे
यैरक्रियन्त परमाणुचयैर्भवन्तः।
तैर्दृप्तवैरिपरुषाक्षरतीक्ष्णटटै–
र्येषामकारि हृदयेषु न कोप्युपाधिः।।[3]

यद्यपि कृष्ण में दृढ़ता के साथ विनय एवं स्वाभिमान भी विद्यमान है, तथापि कहीं–कहीं उनकी उक्तियों में आत्मश्लाघा एवं अहंकार की भावना मुखरित हो उठी है। यथा –

क्षतसमदगजानां कुम्भमुक्ताफलौघै–
र्वितरति वनदेशे केसरी यश्चतुष्कम्।
चपलचटकडिम्मे दातुमिच्छोश्चपेटं
कथमिव बत लज्जा तस्य नैवोज्जिहीते।।[4]

नायक मायावी भी है। चतुर्थ अंक में वह अपनी माया से तार्क्ष्य का आह्वान कर आकाश में उड़ जाता है, जहाँ वह रुक्मि और शिशुपाल को परास्त कर देता है।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग का नायक पुरुरवा है। नाट्यशास्त्रीय निकष पर प्रस्तुत रूपक के नायक को समीक्षित करने पर स्पष्ट होता है कि पुरुरवा धीरोद्धत कोटि का नायक है। यद्यपि राजा पुरुरवा और प्रतिनायक महेन्द्र दोनों ही धीरोद्धत कोटि के हैं, तथापि नायक पुरुरवा ही है, क्योंकि नायिका उर्वशी पुरुरवा से प्रेम करती है, तथा उर्वशी रूप फल की प्राप्ति पुरुरवा को ही होती है महेन्द्र को नहीं, अतः नायक पुरुरवा ही है। उसमें दर्प, मात्सर्य, औद्धत्य, अहंकार, क्रोध आदि धीरोद्धत नायक के गुण विद्यमान हैं। राजा पुरुरवा में दर्प का दर्शन तो प्रथम अङ्क में ही हो जाता है जब इन्द्र की सहायता के लिए जाते समय विदूषक राजा के साथ चलने के लिए कहता है, तो उसे यह कहते हुए मना करता है –

"नेयं मोदक खण्डिका।"[5]

महाराज पुरुरवा उर्वशी के श्रुति परिचय मात्र से ही उसके आकर्षण में बँध जाते हैं। जब उन्हें यह ज्ञात होता है कि देवराज इन्द्र भी उर्वशी की अभिलाषा रखता है। महेन्द्र त्रैलोक्य वल्लभ, सुर वल्लभ है और उर्वशी स्वर्ग लोक की एक अप्सरा जो कि इन्द्र की वशवर्तिनी है। अतः राजा ईर्ष्या के वशीभूत होकर कहता है–

महेन्द्रप्रतिबद्धा सा मम किं वशमेष्यति।
घनाघनसमाक्रान्ता कलेव शिशिरत्विषः।।[6]

उर्वशी के प्रति अतिकामुकता के वशीभूत हो राजा की प्रकृति चंचल हो उठती है। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उर्वशी के मिलन की उदात्त भावनाओं से एक तरफ तो राजा श्रद्धावनत होता है, तो दूसरी तरफ विदूषक को उर्वशी को न लाने के फलस्वरूप मृत्यु तक का भय दे डालता है।

राजा में क्रोध का दर्शन हमें तृतीय एवं चतुर्थ अंक में होता है। तृतीय अंक में जब राजा मातलि के साथ मन्दार वन में प्रवेश करता है तब उर्वशी के साथ छद्मवेषधारी पुरुरवा को देखकर अत्यधिक क्रोधित हो जाता है, तथा विचार करत है कि कोई राक्षस छद्मवेश धारण कर उर्वशी का हरण करना चाहता है। वह क्रोधपूर्वक कहता है –

अरे ! रे !
राक्षसापसद मदीयवेषेण कथमेनां प्रलोभयसि ?
ततः तव शिर एव अपहरिष्यामि ।[7]

राजा को जब छद्मवेषधारी इन्द्र के विषय में ज्ञात होता है तो वह क्रोधावेश में आकर महेन्द्र को मृत्यु तक का भय दे डालता है।

राजा पुरुरवा अप्रतिम पराक्रमी है। प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही नेपथ्य में सूचना मिलती है कि राजा पुरुरवा इन्द्र की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं। राक्षसों के साथ युद्ध में देवताओं को पुरुरवा की सहायता की अपेक्षा रहती है। प्रतिहारी की निम्न उक्तियों से यह स्पष्ट होता है –

असुरैरभियुक्तो महेन्द्रः सहायं महाराजम–भिलषतीति कथयति ।[8]

असुरों के द्वारा अभियुक्त बनाये गये देवराज इन्द्र ने पुरुरवा से सहायता की याचना के लिए मातलि को भेजा। राजा पुरुरवा इन्द्र की सहायता के लिए अविलम्ब तैयार हो जाता है। उसकी हुँकार में अद्भुत पराक्रम परिलक्षित होता है –

विभ्र्य दानवबलं विनिपात्य भूमौ
विद्राव्य च प्रतिदिशं (विचितावसृष्टान्)।
विस्मार्य संप्रति विपक्षभयं सुराणां
विस्तारयामि कुशलं विबुधाधिनेतुः ।।[9]

प्रस्तुत ईहामृग के तृतीय[10] एवं चतुर्थ[11] अङ्क में अनेक उदाहरण हैं, जो राजा पुरुरवा के पराक्रम को बतलाते हैं। चतुर्थ अङ्क की समाप्ति पर नारद मुनि राजा पुरुरवा के शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं –

जित्वा सुरारिसमितिं समितिप्रकामं
कृत्वा सुरेन्द्रमपि निर्जितमात्तकामम् ।
नीत्वा वशं च दयितां जयसीह कामं
त्वादृशोऽस्ति नयनोत्सवदः प्रजानाम् ।।[12]

राजा पुरुरवा शक्तिशाली होने के साथ ही साथ रूप, शील एवं यौवन सम्पन्न भी है तभी तो स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी त्रैलोक्य–वल्लभ इन्द्र को छोड़कर राजा पुरुरवा पर आसक्त हो जाती है। राजा पुरुरवा की सुन्दरता का वर्णन उर्वशी अपनी सखी के समक्ष अधोलिखित शब्दों में करती है–

पूर्णेन्दुरिव वदनं कर्णान्ताविष्टनेत्र कमले च ।

मधुमधुरं किल वचनं मम मानसदर्पण इव विलग्नम्।।[13]

राजा पुरुरवा एक आदर्श प्रेमी भी है। उर्वशी से अगाध प्रेम करता है। उर्वशी के प्रति दृढ़ानुराग होने पर भी वह कभी भी उसे अनुचित रूप से प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता। प्रथम अङ्क में वह चन्द्र, लता, कामदेव, पवन, कोयल सभी को उपालम्भ देते हुए उर्वशी – मिलन की प्रार्थना करता है।

राजा पुरूरवा उदात्त चरित्र व्यक्ति है। यही कारण है कि वह अपने प्राणों की चिन्ता किए बिना प्रथम अङ्क में राक्षसों के विरुद्ध इन्द्र की सहायता के लिए सहर्ष तैयार हो जाता है।

राजा पुरुरवा प्रकृति–प्रेमी है, और प्रकृति–प्रेमी व्यक्ति तो सहज ही कवि बन जाते हैं। राजा पुरुरवा में हृदय की कोमलता विद्यमान है। वह सुकुमार प्रकृति का प्रेमी है। प्रकृति के कण–कण में उसे कविता का अपूर्व आनन्द दिखाई देता है। प्रकृति का कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसे वह अपनी कल्पना के चमकीले रंगों में सिक्त कर भव्य कविता में व्यक्त न कर सके।

इस प्रकार नायक पुरूरवा के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत ईहामृग का नायक पुरुरवा ईहामृगोचित धीरोद्धत नायक के शास्त्रीय लक्षणों से परिपूर्ण है, परन्तु उसमें धीरोदात्त एवं धीरललित नायक के भी पर्याप्त गुण दृष्टिगत होते हैं। किन्तु धीरोदात्तादि नायक के गुण उसके स्वरूप का निर्धारण न करके उसकी अवस्था विशेष के परिचायक हैं। जो किसी भी रूपक के प्रकारों में नायकों की हो सकती है।

इसप्रकार दोनों आलोच्य ईहामृग रूपक के नायक कृष्ण और पुरुरवा धीरोद्धत कोटि के हैं। दोनों में ही औद्धत्य, विकत्थना, दर्प, मात्सर्य, आत्मश्लाघा की भावना आदि विद्यमान है। रुक्मिणीहरण ईहामृग का नायक कृष्ण मायावी है, नायक पुरुरवा में यह गुण नहीं है। कृष्ण दिव्य नायक है, पुरुरवा मनुष्य है। दोनों ही नायक रूप, शील एवं पराक्रम सम्पन्न हैं।

प्रतिनायक –

चेदिराज शिशुपाल अत्यन्त अभिमानी, क्रूर, क्रोधी एवं उद्धत योद्धा है। वही इस रूपक का प्रतिनायक है। अन्यकामा रुक्मिणी को बलात् अपनी पत्नी बनाने के प्रयास के कारण वह कृष्ण का द्वेषी है।

रुक्मी कौण्डिनपुरनरेश भीष्मक का ज्येष्ठ पुत्र तथा नायिका रुक्मिणी का भ्राता है। रुक्मी अत्यन्त अहङ्कारी तथा दुराग्रही है। वह शिशुपाल का अभिन्न मित्र है और मित्रता को अन्तिम क्षण तक निभाने का प्रयत्न करता है। छल–छद्म उसके स्वाभाविक गुण हैं और वक्रता उसके व्यक्तित्व का अभिन्न अङ्ग है। वह वञ्चना और कुटिलता से प्रतिपक्षियों को पराजित करना चाहता है। यथा–

"अयि चेदीन्द्र ! प्रकटसमरकेलिदुःशिक्षितावेतौ बलदेवगोविन्दौ। तदेवं तावत्। (कर्णे एवमेव), (प्रकाशं सक्रोधम्) आः। किमेकेन रामेण ? आगच्छतं रामकृष्णौ।[14]

शिशुपाल का कृष्ण के साथ पुराना वैमनस्य है। रुक्मी ने कृष्ण से द्वेषवश रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित कर दिया है, जबकि स्वयं रुक्मिणी कृष्ण से विवाह करना चाहती है। जब शिशुपाल को यह बात ज्ञात होती है, तो वह पत्र भेजकर कर कृष्ण का अपमान करता है। वह कृष्ण की रुक्मिणी से विवाह की बात उसी प्रकार उपहासास्पद मानता है जैसे कोई बालक चन्द्रमा को पाने की इच्छा व्यक्त करे। यथा –

यशोदायाः स्तन्यैस्तव तनुरयासीदुपचयं
वनान्तेषु भ्रान्तस्त्वमसि सह तैस्तर्णकशतैः।
यदि त्वादृक्कश्चिद्वत नृपतिपुत्रीं वरयते
तदानीं कः क्रोधः किमु न शशिनं वाञ्छति शिशुः।।[15]

शिशुपाल रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध छल–छद्म से उससे विवाह के लिए लालायित है। शिशुपाल के इसप्रकार के कृत्यों से ईर्ष्या की अग्नि भड़कती है। अक्रूर इसे उसका बालिशत्व मानता है। यथा– "अहो ! बालिशत्व शिशुपालस्य ।"[16]

यद्यपि शिशुपाल रुक्मिणी के रूप–सौन्दर्य पर मुग्ध हो उसके समक्ष संपूर्ण संसार को तुच्छ मानता है, किन्तु उसकी राक्षसी आकृति, क्रूर प्रकृति एवं कुत्सित रूप का वर्णन सुनकर रुक्मिणी को देखना भी रुचिकर नहीं है। वह सुबुद्धि से पूछती है–

" भगवति! किमेष राक्षसः कोऽपि?" [17]

चेदिराज शिशुपाल अत्यन्त उद्धत एवं आत्मश्लाघी प्रवृत्ति का है। वह कृष्ण से कहता है कि क्या तुम ही पराक्रमियों में एकमात्र हो, तुम्हारा पराक्रम तो जगत्प्रसिद्ध है। इस प्रकार व्यङ्ग्य करता है। वह दर्प के कारण बलराम का उपहास करता हुआ कहता है–

शिशुपालः – "अयि बलदेव! किमुच्यते भवतः सौभ्रात्रं, यत्कृष्णाय धावितमपमृत्युमाहूयात्मनि पातयसि।"[18]

रुक्मी के औद्धत्य एवं अहङ्कार का परिचय अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। बलराम को वह बालक ही

समझता है और उसपर अनेक व्यङ्ग्य कसकर अपनी उद्दण्डता का परिचय ही देता है। यथा–

"अये हलमस्य महायुधम्। अयि बलभद्र ! बालिशोऽसि। किमस्मिमन्दुःसञ्चरे सद्वीरवर्त्मनि प्रवर्त्तसे।"[19]

शिशुपाल दुर्गणों का आकर है तथा युद्ध में माया, छल, छद्म आदि सभी का प्रयोग करता है। रुक्मी और शिशुपाल दोनों कृष्ण से युद्ध करते हुए अपनी मायावी शक्ति से अदृष्ट होकर आकाश से बाण–वृष्टि करने लगते हैं। उनके इस मायावी रूप और कपटपूर्ण आचरण से विवश हो कृष्ण को गरुण का स्मरण करना पड़ता है।

ईहामृग के प्रतिनायक के रूप में दर्प, मात्सर्य, उद्धतता, आत्मश्लाघा, क्रूरता एवं माया, छल–छद्म आदि जिन उपादानों की आवश्यकता होती है, उन सभी का महामात्य वत्सराज ने चेदिराज शिशुपाल और रुक्मी के चरित्र में समावेश किया है।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग में महेन्द्र ही प्रतिनायक है, क्योंकि वह नायक पुरुरवा का प्रतिद्वन्द्वी है। इन्द्र के चरित्र में प्रतिनायक के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। देवराज इन्द्र में दर्प, मात्सर्य, छल–छद्म, कपट, अहङ्कार, क्रोध आदि धीरोद्धत नायक के गुण विद्यमान हैं। महेन्द्र नायक पुरुरवा का प्रतिद्वन्द्वी है उसमें प्रतिनायक के समस्त लक्षण विद्यमान है।

इन्द्र देवराज है अतएव वह शूरता आदि के घमण्ड से युक्त है। वह इस बात से निश्चिन्त है कि उर्वशी और उसके मध्य कोई नहीं आयेगा। मन्दार वन में उर्वशी व उसकी सखी के मध्य वार्तालाप को सुनकर उसे अपने विषय में मानता हुआ चित्ररथ से कहता है–

निर्स्त्रिशपातनिपतन्निजपक्षमूल–
नीरन्ध्रर्नियदरुणारुणरक्त पुराम्।
अद्यापि धातुरसरञ्जित निर्भराख्या–
मातवन्ते हि तमवोऽपि कुलाचलानाम्।।[20]

स्वर्गाधिपति इन्द्र भी अप्सरा उर्वशी पर आसक्त है। किन्तु उसको जब यह ज्ञात होता है कि उर्वशी मुझसे नहीं अपितु किसी मनुष्य अर्थात् पुरुरवा से प्रेम करती है तब वह मात्सर्य अर्थात् ईर्ष्या से ग्रसित होकर कहता है –

कुलं न खलु काश्यपं न गणितं क्रतूनां शतं
निरस्तमखिलेशता न खलु मानसे चिन्तिता ।
ममाद्य खलु मुग्धया मनुजमात्रजाताशया
कयाचिदिव कस्यचिज्जयति दुर्विलासो विधेः।।[21]

इन्द्र मायावी है। वह अपनी दैवीय विद्या से किसी का भी रूप धारण करने में समर्थ है। महेन्द्र से यह तनिक भी सह्य नहीं होता कि उर्वशी उसे छोड़कर राजा पुरुरवा पर आसक्ति रखे। वह येन–केन प्रकारेण उर्वशी को प्राप्त करना चाहता है। अतः इन्द्र अपने अनुचर चित्ररथ की सलाह से पुरुरवा का छद्म वेश धारण कर उर्वशी के समक्ष उपस्थित हो जाता है तथा अपने को पुरुरवा सिद्धकर उर्वशी से कामासक्ति की इच्छा रखता है।

महेन्द्र अस्थिर मनोवृत्ति वाला तथा भीरु प्रकृति का है। वह चित्ररथ के बार–बार कहने पर छद्मवेष तो धारण कर लेता है, परन्तु अहिल्या प्रकरण में प्राप्त शाप के स्मरण आते ही वह भयभीत हो जाता है। वह चित्ररथ से कहता है कि कहीं उर्वशी उसके छद्मवेष को जानकर उसे श्राप न दे दे।

इन्द्र क्रोधी प्रवृत्ति का है। उसका क्रोध तृतीय अंक और चतुर्थ अंक में दृष्टिगोचर होता है। उर्वशी के समक्ष पुरुरवा के आने पर इन्द्र स्वयं को पुरुरवा सिद्ध करते हुए क्रोधपूर्वक कहता है –

अहमखिलरक्षोविक्षोभणधुरन्धरः पुरुरवा नाम ।
त्वं तु राक्षसोऽसि ।
यत्कैतवेन मामपोह्य मन्मनः प्रियामपजिहीर्षसि ।[22]

इन्द्र राजा पुरुरवा के समान ही पराक्रमी, साहसी एवं वीर योद्धा भी है। तृतीय एवं चतुर्थ अङ्क में संग्राम के समय इन्द्र का पराक्रम दृष्टिगत होता है। छद्मवेष के रहस्योद्घाटन हो जाने पर वह कायरों की तरह पलायन करने के स्थान पर डटकर सामना करता है, तथा क्रोधपूर्वक पुरुरवा से कहता है –

अरे ! नराधम ! किं प्रलपसि ?
मनोरथप्रियायाः मे मनोरोधेन यत्कृतम् ।
तदेव देवताभर्तुः कलुषीकृत्य कथ्यसे ।।[23]

इन्द्र के प्रभाव का वर्णन उर्वशी की सखी निम्न शब्दों में करती है–

"सकल लोकपाल किरीट पूजित पादनखशिखरो माननीयः खलु महेन्द्रः।"[24]

इस प्रकार दोनों आलोच्य ईहामृग रूपकों के प्रतिनायकों का तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि शिशुपाल और महेन्द्र दर्प, मात्सर्य, औद्धत्य, क्रोध, छल–छद्म परायण, मायावी आदि लक्षणों से युक्त धीरोद्धत कोटि के हैं। दोनों ही नायक के प्रतिद्वन्द्वी हैं तथा अन्यकामा स्त्री से प्रेम करते हैं, तथा येन केन प्रकारेण उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।

नायिका –

कौण्डिन्यपुर की राजकुमारी रुक्मिणी रुक्मिणीहरण ईहामृग रूपक की नायिका है। यह महाराज भीष्मक की पुत्री और रुक्मी की बहन है। रुक्मिणी नारी सुलभ कोमलता और संकोच से परिपूर्ण मुग्धा नायिका है।

वह कृष्ण से अगाध प्रेम करती है।

कृष्ण के गुण–श्रवण और आलेख्य–दर्शन मात्र से ही रुक्मिणी के हृदय में पूर्वराग का उदय हो जाता है। वह कृष्ण के रूप पर मुग्ध है, उससे विवाह करने की इच्छुक है। वह दूत भेजकर कृष्ण के पास सन्देश भी पहुँचाती है। अपने प्रियतम कृष्ण के प्रति उसका गाढ़ानुराग है। राजपथ पर कृष्ण को देखकर गोपियों के भाग्य की सराहना करती है। भविष्य की चिन्ता भाग्य के अधीन छोड़कर मुहूर्त मात्र दर्शन से ही अपने जन्म को सफल मानती है। यथा–

" मुहूर्तमात्रे गृह्णीतं तावज्ज्जन्मफलम्। को जानीते किं करिष्यति अग्रतो भगवान् प्रजापतिः।"25

कृष्ण से अतिरिक्त अन्य पुरुषों से उसे घृणा है। वह शिशुपाल को देखकर भयभीत हो जाती है। उसे राक्षस कहती हुई मरण का अनुभव करती है –

"भगवति! किमेष राक्षसः कोऽपि ?

अनुमन्यस्व मम मरणमहोत्सवम्। तव प्रभावेण लब्धस्वर्गगतिः तत्रैवेन्द्राणीमर्चयिष्ये।"[26]

अपने भ्राता के स्वभाव, हठ और व्यवहार को देखकर रुक्मिणी का मन अनेक कुशङ्काओं से घिरा हुआ है। रुक्मिणी के हृदय में यद्यपि कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम है और गुरुजनों भाई आदि के प्रति उसके हृदय में क्षोभ है, क्रोध है परन्तु असम्मान का भाव नहीं है। यद्यपि उसे यह प्रिय नहीं कि उसका भाई अपने हठ की पूर्ति के लिए उसे शिशुपाल के हाथ में सौंप दे, परन्तु यह होते हुए भी वह आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करती ।

रुक्मिणी के चरित्र में शील–संरक्षण की भावना भी पूर्णतया विद्यमान है। प्रेम का उद्दाम वेग कुल और मर्यादा का उल्लङ्घन करने के अभाव को नहीं उभारता है। रुक्मिणी में स्त्री–सुलभ हाव–भाव तथा रूठने की प्रतिक्रिया विद्यमान है। वह अपनी धात्रेयिका, मंत्रोपदेशिका तथा मकरन्दिका को अपने मनोगत भाव निःसंकोच सुनाती है।

रुक्मिणी के रूप और वाणी की प्रशंसा सभी करते हैं। वह सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति, गुणों की आश्रयभूत तथा शील –संकोच की देवी है। नारी हृदय की मूक प्रणय–वेदना उसके मर्म को स्पष्ट करती है–

"वारयतु मुहूर्तमात्रं भगवती वत्सलतया मम जीवनं निस्सरन्तम्।"[27]

वह साहस के साथ कठिन परिस्थितियों का सामना करती है। सुवत्सला एवं सुबुद्धि की सहानुभूति से उसके हृदय में आशा और विश्वास का सञ्चरण होता है। कृष्ण के प्रति उसका जो शुद्ध, प्रलोभन रहित, उदात्त तथा परिष्कृत प्रेम है उसे हृदय में ही संभालती हुई भाग्य के सहारे जीवन यापन करती है।

इस प्रकार आलोच्य रूपक में रुक्मिणी के दुःखमय जीवन का अंश ही चित्रित किया गया है। उसके चरित्र में प्रेम और परिवार की प्रतिष्ठा का संघर्ष वत्सराज ने बड़ी ही चतुरता के साथ चित्रित किया है।

उर्वशीसार्वभौमेहामृग की नायिका उर्वशी है। नाट्य लक्षण ग्रन्थों में निरूपित नायिका भेदों के अनुसार उर्वशी स्वकीया नायिका है, तथा स्वकीया नायिका के भेदों में भी वह मुग्धा नायिका है। उर्वशी स्वर्ग की एक दिव्योद्भवा अप्सरा है। उसकी उत्पत्ति अन्य अप्सराओं की भाँति जल से नहीं हुई है, अपितु अलौकिक रूप से नारायण मुनि के प्रसाद स्वरूप हुई है। जैसा कि राजा पुरुरवा के उद्गारों से स्पष्ट है –

आवेदिता या सुदतीमणी प्रा–

गासादिता मय्यनुरागभारात् ।

नारायणस्येव तव प्रसादात्

आराधयामस्सकला श्रेयोऽसि।।[28]

अप्सराओं की उत्पत्ति जल से मानी जाती है, अतः अप्सराएँ मानवीय रूप से उत्कृष्ट रूप वाली होती हैं। ऐसी दिव्य रूप सम्पन्न अप्सराओं में दिव्योद्भवा उर्वशी सर्वातिशायी लावण्यवती है। उर्वशी अनुपम कान्ति सम्पन्ना है। उसके अङ्ग–प्रत्यङ्ग से तेज प्रस्फुटित हो रहा है। चित्ररथ बार–बार उर्वशी की प्रशंसा में कहता है–

सा सर्वलोकवनिताजनमौळिरत्नम् ।[29]

लोकैकललामभूता उर्वशी चन्द्रमा के समान सुन्दर, आकर्षक रूप–सम्पन्न एवं मनोहारी है। राजा पुरुरवा तृतीय अङ्क में उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुए कहता है–

अनुरूप चतुर्विधाङ्गहारैरहरन्मे मन एव सेति मन्ये।[30]

इसीलिए तो नारद ने उर्वशी को त्रिभुवन सुन्दरी कहा है –

" किं सा न लोकैकललामभूता !"[31]

उर्वशी मुग्धा नायिका है, अतएव वह लज्जाशील प्रकृति की है। वह मन ही मन पुरुरवा से प्रेम करने लगती है, वह अपनी सखियों से भी अपने प्रेम प्रकाशन में लज्जा का अनुभव करती है। यद्यपि मानवीय व्यवहार से वह परिचित नहीं है, तथापि उसमें मानव–व्यवहार का पूर्ण समावेश दिखाई देता है। वह अपने प्रेमी पुरुरवा के प्रेम में जब अत्यधिक व्यथित हो जाती है तब वह अपनी सखी से अपने मनोरञ्जनार्थ पुरुरवा के चित्र–दर्शन की प्रार्थना करती हुई कहती है कि–

"किं न्यवन्यत् तस्यैव महाराजस्य प्रतिकृतिमन्तरेण।"[32]

उर्वशी के स्वभाव में स्त्री सुलभ कोमलता विद्यमान है। उसका यह गुण प्रस्तुत ईहामृग में कई बार दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि वह पुरुरवा से प्रेम करती है, तथापि सखी द्वारा अपने प्रति महेन्द्र की आसक्ति के विषय में जानकर वह व्यथित हो जाती है, और कहती है–

"तथा यदि महेन्द्रस्य तस्यापि महान् मामुद्दिश्य विरोधो भविष्यति। कस्य केन परिभवो भविष्यतीति न जानामि। व्याकुलास्मि। "[33]

उर्वशी स्वभाव से ही कोमल है। चतुर्थ अङ्क में युद्ध देखने में असमर्थ उर्वशी भयपूर्वक आँखें बन्द करके अपनी सखी से लिपट जाती है, तथा कहती है–

"न शक्नोमि समरस्य प्रेक्षणेऽपि। वञ्चितास्मि नेत्रनिमीलनासहेन विधिना। इति सभयं सखीमलिङ्गति।"[34]

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उर्वशी में मुग्धा स्वकीया नायिका के समस्त गुण विद्यमान हैं। वेङ्कामात्य को उसके चरित्र–चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

आलोच्य ईहामृग रूपकों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि रुक्मिणी और उर्वशी दोनों नायिकाएँ स्वकीया नायिका–भेद के अन्तर्गत मुग्धा नायिका हैं। दोनों ही अनुपम कान्ति–सम्पन्ना, शील, सौन्दर्य, लज्जा एवं संस्कार से युक्त नायिका हैं। उर्वशी दिव्योद्भवा अलौकिक सुन्दरी अप्सरा है। रुक्मिणी अदिव्या नायिका है। दोनों ही आदर्श प्रेमिका है।[35]

अन्य पात्र –

रूपक में प्रधान नायक, नायिका और प्रतिनायक के अतिरिक्त भी पात्रों की योजना की जाती है, जिससे कथावस्तु अबाधगति से फलप्राप्ति की ओर अग्रसर होती है। रुक्मिणीहरण ईहामृग में नायक कृष्ण के सहायक के रूप में बलराम, अक्रूर, उद्धव सात्यकि आदि पात्र हैं। उर्वशीसार्वभौमेहामृग में राजा पुरुरवा की सहायता विदूषक, मातलि तथा नारद ऋषि करते हैं। नायिका रुक्मिणी की सहायिकाएँ धात्री सुवत्सला, गौरीमंत्रोपदेशिका सुबुद्धि तथा मकरन्दिका है। नायिका उर्वशी की सहायिका उसकी सखी है। प्रतिनायक शिशुपाल की सहायता उसका मित्र रुक्मी करता है, तथा प्रतिनायक महेन्द्र का सहायक और मार्गदर्शक चित्ररथ है।

रुक्मिणीहरण ईहामृग में अन्य पात्र हैं – वसुदेव–देवकी, भीष्मक, दारुक, प्रियंवद, संधानक और तार्क्ष्य। उर्वशीसार्वभौमेहामृग में अन्य पात्र हैं – सुन्दरक, कमलाकर, कलानिधि, शेखरक और गन्धर्व। नाट्यशास्त्रीय पात्रों में, रुक्मिणीहरण ईहामृग में – सूत्रधार, स्थापक, प्रतिहारी और कञ्चुकी दीपक। इसमें विदूषक की योजना नहीं की गई है। उर्वशीसार्वभौमेहामृग में – सूत्रधार, नटी, प्रतिहारी और कञ्चुकी ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रुक्मिणीहरण ईहामृग और उर्वशीसार्वभौमेहामृग में पात्र–योजना सशक्त एवं नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुरूप है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. रुक्मिणीहरण ईहामृग 4 / 12
2. रुक्मिणीहरण ईहामृग 2 / 4
3. रुक्मिणीहरण ईहामृग 1 / 23
4. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ 36
5. उर्वशीसार्वभौमेहामृग – 1 / 17
6. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ 89
7. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ 35
8. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 1 / 31
9. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 3 / 22, 23
10 उर्वशीसार्वभौमेहामृग 4 / 19, 20, 22
11. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 4 / 20
12. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 2 / 3
13. रूपकषट्कम् पृष्ठ 71
14. रुक्मिणीहरण ईहामृग 1 / 16
15. रूपकषट्कम् – पृष्ठ 38
16. रूपकषट्कम् पृष्ठ 67
17. रूपकषट्कम् पृष्ठ – 68
18. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 2 / 8
19. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 2 / 13
20. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 2 / 10
21. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 3 / 24
22. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ –42
23. रूपकषट्कम् पृष्ठ– 60
24. रूपकषट्कम् पृष्ठ – 60
25. रूपकषट्कम् पृष्ठ – 65
26. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 4 / 23
27. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 3 / 7
28. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 3 / 17
29. उर्वशीसार्वभौमेहामृग 4 / 27
30. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ – 80
31. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ 43
32. उर्वशीसार्वभौमेहामृग पृष्ठ 43
33. रूपककार वत्सराज – डॉ. लक्ष्मणनारायण शुक्ल
35. आधुनिक संस्कृत नाटक – रामजी उपाध्याय
365. दशरूपकम् – आचार्य धनंजय

ISSN : 2349-9273

भारतीय ज्ञान भण्डार परिवर्तन और शिक्षा व्यवस्था

– डॉ. रीना चन्द्रा
अध्यक्षा एवं एसोसिएट प्रोफेसर –
शिक्षाशास्त्र विभाग,
डी. ए. वी. (पी. जी.) कालेज, देहरादून (उत्तराखण्ड)

ई–मेल :
dr.reenachandra@rediffmail.com

सारांश

बालकों को उन्नयन के लिए प्राचीन काल से लेकर आज तक विभिन्न साँस्कृतिक, शैक्षिक, नैतिक परिवर्तनों से परिचित कराके शिक्षा की व्यवस्था में विद्यालय, कक्षाकक्ष और शिक्षकों में परिवर्तन आवश्यक है। जिससे वे विभिन्न पारम्परिक और आधुनिक मूल्यों को आत्मसात् करके देश की प्रगतिशील दिशा में कार्य करने में अधिक से अधिक सक्षम हो सके। पाठ्यक्रम में अपरा विद्या और परा विद्या दोनों हैं। छात्र को दोनों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को कहा जाता है। भौतिक सृष्टि के अध्ययन, उत्पादन, जीव जगत के अध्ययन, ज्ञानात्मक शिक्षा, आत्मा को उन्नत तथा उसकी अनुभुति से सम्बन्धित अध्ययन आदि विषयों को स्थान दिया जाता है। इसके अन्तर्गत ज्ञान प्राप्ति क्रम भी मनोवैज्ञानिक है।

Keywords:- ज्ञान, विद्या, वेद, दर्शन, विद्यालय भारतीय शिक्षा व्यवस्था और परिवर्तन समयानुकूल।

यजुर्वेद के अनुसार – विद्यायमृतश्नुते अर्थात् 'विद्या से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

किसी भी देश की संस्कृति और सभ्यता उस देश के नागरिकों और सामाजिक जीवन का आधार होती है। भारतवर्ष एक उन्नतिशील देश है, जिसके आँचल में असीमित पुरातन धरोहर और ज्ञान छिपा है, इसका किसी को अनुमान ही नहीं है। यह एक ऐसा देश है जिससे आर्कषित होकर अनेकों शासक विभिन्न समय–समय पर आकर अपना शासन करके चले गये। ऐसे भारतवर्ष के अन्तर्गत विभिन्न (अनेकों) वेद और संस्कृति सम्माहित हैं। वेद भारतीय संस्कृति की धरोहर एवं प्राण है। वेद केवल आर्यो के जीवन के पुराने साहित्यिक प्रमाण ही नहीं, वरन् विश्व की प्राचीनतम् निधि है। (वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, व उपनिषद् हमारे ज्ञान के भण्डार है।) जैसा कि माना गया है कि 'ऋग्वेद' में गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, भिष्टुप, बृहती, जगती एवं पंक्ति आदि सात छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार 'सामवेद' को भारतीय संगीत का स्रोत, 'यजुर्वेद' में प्रार्थनाएँ, यज्ञीय भेंट के समर्पण, यज्ञीय कर्म का संकेत, देवताओं की प्रशंसा या रचना, यज्ञकर्ता की इच्छाओं की अभिव्यक्ति, अथर्ववेद में विशुद्ध लोक प्रचलित विश्वास, धर्म एवं जादू–टोने का ज्ञान, बाह्मण ग्रथों से यज्ञीय सूत्रों एवं अनुष्ठानों का ज्ञान प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् आरण्यक ग्रंथों से वानप्रस्थों द्वारा संहिताओ की ज्ञानमार्गीय व्याख्या की गयी है।

भारतीय दर्शन में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह वेदों के निचोड़ माने जाते हैं। ये ज्ञान के भण्डार हैं, इसके अन्तर्गत शिष्य गुरू के समीप बैठकर ज्ञान अर्जित करता था। उपनिषदों में ईश्वर या ब्रह्म विषयक विचारों, सृष्टि रचना, कर्म और पुनर्जन्म, माया विचार, मोक्ष विचार, आदि

बातों का ज्ञान उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त चार्वक दर्शन, जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, सॉख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसा दर्शन, वेदान्त दर्शन का ज्ञान प्राप्त होता।

भारत का वर्तमान इतिहास वैदिक युग से आरम्भ होता है। जिसके अनुसार वैवस्वतमनु से महाभारत के काल को एक प्रकार से वैदिक युग कहा जाता है। हम वैदिक साहित्य, रामायण और महाभारत में शिक्षा के स्वरूप का अवलोकन कर सकते हैं।

प्राचीन भारतीय शिक्षा का उद्देश्य –

''स्वतंत्र चिन्तन द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति और आत्मज्ञान था। 'ज्ञान', 'कर्म' और भक्ति तीनों को व्यवहार में उतारना था। गुरू एवं शिष्य का घनिष्ठ सम्बन्ध था। शिक्षा के चार स्तर थे –

1– स्मरण कराना,

2– स्पष्टीकरण करना,

3– शास्त्रार्थ करना एवं

4– सिद्धान्त निरूपण करना।

बौद्ध युग में शिक्षा का महत्व बहुत था। क्योंकि 'निर्वाण' ज्ञान द्वारा ही सम्भव था। पठन–पाठन की रुचि लोगों में थी। आज की शिक्षा के अनुरूप देखें तो प्राचीन काल में भी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। 'आश्रम' एक प्रकार से विद्यालय, 'चरण' माध्यमिक विद्यालय कहे जा सकते थे और परिषदें उच्च शिक्षा के लिये थीं, जो एक प्रकार से संघीय विश्वविद्यालय थे। 'तक्षशिला' व 'नालन्दा' जैसे विश्वविद्यालय धरोहर के रूप में दीपित थे।

मौर्यकाल में भी शिक्षा का कार्य आचार्य, क्षत्रिय व पुरोहित करते थे। चाणक्य जैसे विद्वान 'तक्षशिला' विश्वविद्यालय में शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते थे।

मौर्य वंश के पश्चात् पतंजलि जैसे मुनि हुए। गुप्त युग में ज्ञान – विज्ञान के अनेक विषयों में पढ़ाई होती थी। कालिदास, आर्यभट्ट, वाराहमिहिर जैसे गणितज्ञ एवं ज्योतिषाचार्य हुए तथा पाठ्यक्रम का स्वरूप भी विस्तृत था।

उपनिषद् –

वर्तमान परिस्थितियों में यदि उपनिषद् के शैक्षिक विचारों का दृष्टिपात करें तो ज्ञात होगा कि –

1– ज्ञान की प्राप्ति स्वयं प्रयास द्वारा की जा सकती है। परन्तु इस प्रक्रिया में गुरू की सहायता एवं मार्गदर्शन आवश्यक है।

2– ज्ञान रहस्यमय एवं गुप्त है। ये ज्ञान योग्य व्यक्ति को ही दिया जाता है।

3– शिक्षा सामूहिक न होकर वैयक्तिक प्रक्रिया है जिसमें शिष्य अपनी आवश्यकता, क्षमता एवं योग्यता के अनुसार अपनी गति से योजनानुसार शिक्षा ग्रहण करता है।

विद्या को अमृत प्राप्ति अर्थात् आत्मानुभूति का साधन माना गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मानुभूति के साधन हैं ज्ञान, कर्म और योग। अतः शिक्षा व्यक्ति को ज्ञान के योग्य बनाती है। इस प्रकार शिक्षा के उद्देश्य विद्या से असत्य का नाश करना और आनन्द प्राप्त करना। इसका अर्थ जीवन के भौतिक पक्ष की प्राप्ति, स्वस्थ्य शरीर का निर्माण, मानसिक विकास करना एवं सत्य–असत्य का भेद बताना।

पाठ्यक्रम में अपरा विद्या और परा विद्या दोनों है। छात्र को दोनों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को कहा जाता है। भौतिक सृष्टि के अध्ययन, उत्पादन, जीव जगत के अध्ययन, ज्ञानात्मक शिक्षा, आत्मा को उन्नत तथा उसकी अनुभुति से सम्बन्धित अध्ययन आदि विषयों को स्थान दिया जाता है। इसके अन्तर्गत ज्ञान प्राप्ति का क्रम भी मनोवैज्ञानिक है। इसमें प्रमुख शिक्षण विधियाँ निम्न हैं–

1– स्वयं–अन्वेषण विधि,

2– पहेली विधि,

3– सूत्र प्रणाली,

4– व्युत्पत्ति प्रणाली,

5– कक्ष कथा प्रणाली,

6– चर्चा,

7– संश्लेषण प्रणाली,

8– अनुरूपता प्रणाली, आदि प्रणाली आती है। जिनका अनुसरण विद्यार्थी आज भी महाविद्यालयों में करता हैं, और अनुशासन की दृष्टि से भी आत्म–अवधारणा, आत्मसंयम, छात्र में ज्ञान–प्राप्ति के लिए उत्कृष्ट अभिलाषा के लिए शिक्षक का मार्गदर्शन अनिवार्य था।

हम न्याय दर्शन के पाठ्यक्रम के अवलोकन करें तो आवश्यक रूप से पाठ्यक्रम में आसन एवं व्यायाम, इन्द्रिय प्रशिक्षण, मानसिक और भौतिक विकास के लिए भाषा, साहित्य, गणित और तर्कशास्त्र आदि विषयों का समावेश मिलता है।

न्याय दर्शन की शिक्षण विधियों में पहली प्रत्यक्ष विधि आती है, जिसमें छात्र किसी वस्तु का ज्ञान अपनी इन्द्रियों द्वारा सीधे प्राप्त करता है। दूसरी अनुमान विधि है जिसमें पूर्व ज्ञान के पश्चात् आने वाला ज्ञान है जो नये ज्ञान का विकास करता है। तीसरी उपमान विधि है जिसमें ज्ञात और ज्ञेय को सादृश्य देखकर ज्ञान प्राप्त करना होता है।

चौथी शब्द विधि है जिसमें ज्ञानी पुरुषों के मुख से सुनकर अथवा उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों का अध्ययन करके ज्ञान प्राप्त करना है।

आज शिक्षण की जितनी भी मौखिक युक्तियों–प्रश्नोत्तर, विवरण, व्याख्या आदि का प्रयोग किया जाता है, ये सब शब्द प्रणाली के विभिन्न रूप हैं। पाठ्य पुस्तक प्रणाली भी शब्द प्रणाली का रूप है। पर्यवेक्षित अध्ययन इसी प्रणाली का सबसे अधिक निखरा हुआ रूप है। आज हम शब्द विधि द्वारा सीखते है, जैसे रेडियो, टी. वी., प्रेस आदि सभी शब्द विधि के रूप है। इस विधि द्वारा शिक्षा में –

1– इन्द्रियों का प्रयोग।

2– निरीक्षण द्वारा अनुभव प्राप्ति।

3– आगमन तथा निगमन प्रक्रियाओं का प्रयोग।

4– विश्लेषण–संश्लेषण प्रक्रिया का प्रयोग।

5– विचार–विमर्श विधि का उपयोग।

6– स्वशिक्षा पर बल।

7– चिन्तन–प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक आधार का आधुनिक शिक्षा में प्रयोग किया जाता है।

आज वर्तमान में यदि हम देखें तो रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रसिद्ध रचना 'गीतांजलि' जो एक विश्वविख्यात ग्रंथ है, का उल्लेख मिलता है। जिसने देश–विदेश में उनको महाकवि के रूप मे प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'शान्ति निकेतन' की स्थापना की जो आज 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय के नाम से विख्यात है। साहित्य, कला, दर्शन पर उनके शैक्षिक विचार 'स्वानुभव' पर आधारित थे। टैगोर प्रकृतिवादी थे, पर दूसरों से भिन्न थे, वे समाज को प्राकृतिक नियमों के अनुरूप बनाना चाहते थे। पाठ्यक्रम में मातृभाषा, संस्कृत, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, प्रकृति अध्ययन विज्ञान, कला और संगीत आदि विषय सम्मलित थे।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार –''शिक्षा वह है जो जीवन की सम्पूर्ण सत्ता के साथ समन्वय स्थापित करने की शक्ति देती है।

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द वेद एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। उन्होंने 'राजयोग' से सत्य ज्ञान की अनुभुति की। उन्होंने वेदान्त को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उतारने का प्रयास किया। शिक्षा के पाठ्यक्रम में लौकिक विषय–भाषा, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित, राजनीति, अर्थशास्त्र, खेलकूद, व्यायाम, समाज और राष्ट्र सेवा तथा आध्यात्मिक विषयों में धर्म, दर्शन, पुराण, उपदेश, श्रवण, कीर्तन आदि को सम्मलित किया।

शिक्षण विधियों में स्वामी विवेकानन्द ने –

1– योग विधि

2– केन्द्रीयकरण विधि।

3– तर्क, व्याख्यान, विचार–विमर्श, उपदेश–विधि, आदि।

4– अनुकरण विधि,

5– व्यक्तिगत निर्देशन, और परामर्श विधि आदि विधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – ''मनुष्य में पूर्व ही अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है।''

इसी प्रकार गाँधी जी ने सभी को सत्य – अंहिसा का पाठ पढ़ाया। उनका उद्‌देश्य सभी मनुष्यों में आत्मबल, सत्यमार्ग की ओर अग्रसर होना था। इन्हीं बातों ने 'सर्वोदय दर्शन' का उदय हुआ। इस दर्शन को 'भौतिक ज्ञान' और आध्यात्मिक ज्ञान में बाँटा गया। भौतिक ज्ञान की प्राप्ति के लिये इन्होने 'स्वयं करके,' स्वानुभव द्वारा सीखने पर बल दिया और आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए गीता के पाठ, भजन–कीर्तन एवं सत्संग के महत्व को स्वीकार किया।

जहाँ एक ओर भारतीय दर्शनों के पक्ष में एक विहंगम दृष्टि डालें तो 'बृहस्पति' श्रृषभदेव, महात्मा गौतम बुद्ध, महर्षि कपिल, महर्षि पतंजलि आदि का वर्णन मिलता है। वहाँ दूसरी तरफ समय के साथ – साथ भारत को सम्पदा के रूप में भारतीय संस्कृति; परम्पराओं को अविरल रूप से जन–मानस तक जीवित रखने के लिए, श्री अरविन्दो घोष, डॉ. जाकिर हुसैन, गिज्जू भाई, जे. कृष्णमूर्ति, परमहंस योगानन्द एवं भारतीय शिक्षा के इतिहास के क्षेत्र मे डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् डॉ. ए. लक्ष्मण स्वामी मुदालियर, प्रोफेसर डॉ. एस. कोठारी एवं समाज सुधारक के रूप में राजा राममोहन राय आदि प्रमुख हैं।

यदि हम मनोविज्ञान की दृष्टि से देखें तो शिक्षा के द्वारा हजारों वर्षों से संचित ज्ञान और सामाजिक अनुभव हस्तान्तरित होकर व्यक्ति को नवीन परिस्थितियों में सीखने में सहायता करते हैं। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति राष्ट्रीय संस्कृति को ग्रहण करता है। शिक्षा के माध्यम से प्रत्येक सामाजिक व्यक्ति का मानसिक, शारीरिक, नैतिक अध्यात्मिक व चरित्र निर्माण होता है। भारतीय चिन्तन में अज्ञान को अंधकार एवं ज्ञान को प्रकाश माना गया है। प्रत्येक राष्ट्र का अपना जीवन दर्शन होता है, जो उस राष्ट्र के व्यक्तियों का जीवन लक्ष्य एवं आदर्शों का निर्माण करता है तथा उन्हीं जीवनादर्शों को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

श्री अरविन्द के अनुसार – ''इसमें सन्देह नहीं कि

प्राचीन पद्धतियों की अपेक्षा आज की यूरोपीय शिक्षा – पद्धति बहुत आगे बढ़ी हुई है, किन्तु उसकी त्रुटियाँ भी स्पष्ट दिखायी देती हैं। वह मानव मनोविज्ञान के अपर्याप्त ज्ञान पर आधारित है। आज भारत में मनोविज्ञान का अध्ययन पश्चिमी मनोविज्ञान तक ही सीमित है। भारत में मनोविज्ञान, वेदों और उपनिषदों तथा अन्य दार्शनिक विचारधाराओं से सम्बन्धित रहा है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मूल में भी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें हैं।

उपरोक्त अध्ययनों और धरोहर की आज वर्तमान परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण विद्यालयों में भी नवचेतना के रूप में पड़ा जैसे विद्यालयों और विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों ने शैक्षिक दृष्टि से चिन्तन, शैक्षिक परिस्थितियों में पुरातन बिन्दुओं पर विचार कर परिवर्तन किया।

इस प्रकार विभिन्न वेदों – ग्रंथों की चेतना के साथ आज वर्तमान में हम सब एक नये युग में प्रवेश कर चुके हैं, जो आगे चलकर भारतवर्ष के लिए और अधिक उत्साहवर्धक एवं नवीन चेतना के साथ इतिहास को गौरवशाली बनायेगा।

सुझाव –

1– छात्रों को भारतीय ज्ञान से अवश्य परिचित करवाना चाहिए।

2– छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिए वेदों को जानना आवश्यक है।

3– छात्रों को पाठ्यक्रम के माध्यम से पुरातन विषयों का समावेश प्रत्येक स्तर पर परिचित कराया जाना चाहिए।

4– आज के परिवर्तित समाज में धर्म, कर्तव्य और नैतिकता का क्या अर्थ है ? उस पर विचार करना बताया जाना चाहिए।

5– प्राचीन काल से लेकर शिक्षा व्यवस्था के परिवर्तनों को भी समझना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1– कुमार अमित, शिक्षा दर्शन, प्रकाशक, संजय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली 110002 पेज नं.–46–47, 56–58. ISBN –81–7453–202–1, प्रथम संस्करणः 2006.

2– 'रत्नेश' डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा. लि. जयपुर, ISBN –81–8198–102–2, प्रथम संस्करण : 2006.

3– डॉ. शर्मा राजेन्द्र, शिक्षा दर्शन, प्रकाशक, साहित्यगार, चौड़ा रास्ता, जयपुर पेज नं.–40–60, संस्करण : 1999.

4– श्रीवास्तव, मदन मोहन, शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, प्रकाशक, वन्दना पब्लिकेशन, 4 बी. अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली –110002. पेज न0– 91–119, संस्करण : 2006.

5– तोमर लज्जाराम, भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान के आधार, विद्या भारती प्रकाशन, संस्कृति भवन, कुरूक्षेत्र, हरियाणा, पेज नं. 41–45, प्रथम संस्करण।

6– वेदालंकार जयदेव, भारतीय दर्शन, प्रकाशक, न्यू भारतीय बुक कॉपोरेशन न्यू चन्द्रावल, दिल्ली –110007. पेज न0 41–111, ISBN –81–87418–32–X,

◈◈

ABHINAV GAVESHNA

Multi Displinary Quareterly International Referred Research Journal

RNI : UPMUL00620/24/1/2014/TC I.S.S.N. : 2394-4366

(Multi Displinary Quareterly International Refreed Research Journal)

(in Multi Language: Hindi + English + Sanskrit)

SUPER PRAKASHAN Presents : `Abhinav Gaveshna'

Sector-K-444, `Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027 (U.P.)

Contact- 08896244776, 09335597658,

E-mail: super.prakashan@gmail.com

Website: www:superprakashan.com

ISSN : 2349-9273

मूल्यपरक शिक्षा - वैदिक परिप्रेक्ष्य में

- डॉ. (श्रीमती) ममता शुक्ला
एसोसिएट सहायक प्रोफेसर
आ. न. दे. न. नि. महिला महाविद्यालय,
कानपुर-208012

ई-मेलः
manasshukla276@gmail.com

भौतिकी प्रगति के अभूतपूर्व एवं नित्य नूतन सोपान पार करती हुई आधुनिक सभ्यता ने विकास के उच्च कीर्तिमान स्थापित किए हैं। विकास की इस तीव्र गति ने मानव जीवन को भी प्रभावित किया जन सामान्य की जीवन शैली के साथ-साथ उसके विचारों में भी परिवर्तन आया। भौतिकता के चरमोत्कर्ष में आत्म-चिन्तन् चारित्रिक विकास जैसे शब्द लुप्त प्राय हो गये हैं। भोगोन्मुखी वैश्वीकरण के वर्तमान युग में मानव जीवन के परम्परागत वैदिक मूल्यों, दया, दान दाक्षिण्य सहजता, सरलता, सहिष्णुता आदि का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। ईर्ष्या, द्वेष, असूया, क्रोध, लोभ, मोह असत्य भाषण आदि का प्राधान्य हो गया है। आज मनुष्य अपने छोटे से स्वार्थ के लिए दूसरे की हत्या तक करने में संकोच नहींकरता। यही कारण है कि आज मनुष्य के साथ-साथ समाज व राष्ट्रका भी पतन हो रहा है।

भौतिकता व स्वार्थपरता के दंश से पीड़ित समाज के नैतिक कल्याण के लिए हमारी दृष्टि वेदों पर जाती है, जहाँ मानवता का आह्वान करते हुए कहा गया है 'मनुर्भव'1 अर्थात् मनुष्य बनो क्योंकि बिना मानवता के समाज का नैतिक कल्याण सम्भव नहीं है। भारत की वाङ्मयी परम्परा वेद मानव मात्र के लिए कल्याणकारी लक्ष्यों के साधक व अमंगल के नाशक हैं। वेद मंत्र प्राचीन काल से लेकर आज तक सम्पूर्ण विश्व को विविध कल्याणकारी उपदेश देते हुए समय-समय पर आलोकित करता है। इनमें सदाचार, नैतिक, आदर्श, एकता, अखण्डता, दानवीरता, त्याग, बलिदान, देश प्रेम, राष्ट्रप्रेम आदि आदर्शों की भावनाएँ सन्निहित हैं। वैदिक युग के आर्षचक्षुमण्डित दृष्टाओं की वाणी में सार्वभौमिक व सार्वकालिक नैतिकता एवं धर्म की मूल प्रेरणाओं का स्फुरण हुआ है, जो आज भी मनुष्य को सन्मार्ग पर ले जाने की दक्षता रखता है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में धर्म ही जीवन यात्रा का मुख्य उपयोगी साधन हैं।

सुगा ऋतस्य पन्थाः ।[2] **सत्यमे व जयते नानृतम् ।**[3]

सत्यस्तव नावः सुकृतमपीपरन् ।[4]

सदाचार की प्रशंसा करते हुए वेद में कहा गया है कि सदाचारवान् व्यक्ति ही समाज का कल्याण कर सकता है। उसका चित्त हमेशा परहित में लगा रहता है। उसमें आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना पायी जाती है। ईशावास्योपनिषद् में भी उक्त है-

आत्मवत् सर्वभूतेषु, सर्वभूतेषु चात्मवत् ।
आत्मना प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।।[5]

आचार के अन्तर्गत, सत्य, दया, अहिंसा, परोपकार, मानवता इत्यादि गुण निहित हैं। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि वेदों में उपदेशित नियमों के अनुकूल आचरण ही सुख एवं समृद्धि का हेतु बन सकता है जब कि प्रतिकूल आचरण दुःख और अल्पायुत्व की ओर ले जायेगा।[6]

वेद मनुष्य को कर्मठता एवं देश भक्ति की शिक्षा देता है। स्वावलम्बी मानव के मूलमन्त्र का रहस्य बतलाता है -

न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।[7]
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतमं समाः

एवं त्वायि नान्यथेतोऽस्ति नकर्म लिप्यते नरे।[8]

भौतिक भोग साधनों के परिग्रह में लिप्त मानव को उपदेश देते हुए ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि इस चराचर जगत में जो कुछ भी जड़चेतनमय जगत है, वह सब ईश्वर से परिव्याप्त है। उसको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक संसार का उपभोग करो। समस्त भौतिक साधन नश्वर है इसमें आसक्ति कथमपि उचित नहीं है -

ईशावास्यमिदं सर्व यात्किञ्चअगत्याजगत् ।

तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मामदृः कस्यस्विद्धनं ।।[9]

कठोपनिषद् कहता है कि मनुष्य को अधिक धन से तृप्त नहीं किया जा सकता है - **न वित्तेन तर्पणीयो लप्स्यामहे वित्तमद्रकाक्ष्म चेत्वा।**[10] तथाहि - **श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्त कौत्सर्वोन्द्रिन्द्रियाणां जारयन्ति तेजः ।**

छन्दोग्योपनिषद् में जीवन को एक यज्ञ के रूप में कल्पित किया गया है तथा तप, दान, आर्जव, अहिंसा एवं सत्यवादिता को उस यज्ञ की दक्षिणा बताया है। समस्त वेदोपनिषदों में दान की विशिष्ट महिमा हैं। अथर्ववेद में दान के विषय में इस प्रकार कहा गया है - **रयि दानाय चोदय।।**[11] अर्थात् दान के लिए कमाओ। संग्रह के लिए अथवा विलासिता के लिए धन नहीं है।

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। हिमा देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वावृत वा स्यात्।[12]

त्याग के विषय में वेद में उक्त है कि मनुष्य त्याग को अपने जीवन का प्रमुख विचार माने व सदाचार सम्पन्न हो - **न स सखा यो न ददाति सख्ये।**[13] अथर्ववेद के अनुसार- **शतहस्त सनाहार सहस्रहस्त सं कर ।**[13] अर्थात् सौ हाथों से कमाओ और हजार हाथों से खर्च करो।

वेद ईर्ष्या व द्वेष को त्याग कर मनुष्य को अविरोध भाव से साथ-साथ आगे बढ़ने का संदेश देते हैं। क्योंकि समानता एकता व अखण्डता ही समाज का राष्ट्रका उत्थान करने में समर्थ है - ऋग्वेद के दशम मण्डल में कहा गया है -

संसमिद्युतसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इकस्पदे, समिध्यसे स नो वसून्या भर ।।
सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागमं यथा पूर्वे सञ्जानानां उपासते ।।
समानो मन्त्र, समिति, समानी समानं मनः सहचित्तभेषाम्।
समानं मन्मभमि मन्त्रये वः समनिने वो हविषा जुहोमि ।
समानी व आकृति समाना ह्रदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति ।।[15]

कि 'हे मनुष्यो! तुम मिलकर रहो एक साथ स्तोत्र पाठ करो तुम सबका मन और हृदय एक समान हो, तुम्हारा कर्म समान हो। जैसे देवता एक साथ होकर अविरोध भव से अपना हविर्भाव ग्रहण करते हैं। उसी प्रकार तुम भी एक साथ होकर अपना प्राप। ग्रहण करो।

अन्यत्र भी कहा गया है - **'आरे देवा अस्मतयुयोतन।'**

हे देवो हमसे द्वेष को दूर रखो और हमें विस्तृत सुख प्रदान करो । वाह्य आडम्बरों से दूर रहने के लिए मंत्र निर्देशित करते हैं कि अन्दर बाहर से एक बनो अर्थात् निष्कपट बनो -

यदन्तरं तदबाह्यांमद् वाह्ययं तदन्तरम् ।

मनुष्य अपने अन्दर समाविष्ट दुर्व्यसनों अज्ञान, ईर्ष्या, हिंसक, प्रवृत्ति, अति कामुकता, अहंकार आदि का त्याग करने के पश्चात् ही मानव की श्रेणी में आ सकता है। अतः वेद मनुष्य को उपदेश देते हैं छः प्रकार के दुर्व्यसनों का त्याग करें।

उलूकयातु शुशुकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।

सुपर्णयातुभुत गृध्रयातुं वृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र।।[16]

उल्लू सी अज्ञान चाल, भेड़िए सी हिंसक प्रवृत्ति, कुत्ते जैसी ईर्ष्या, चकवा-चकवी पक्षी जैसी अतिकाम भाव, गुरुड़ सा अहंकार और गृध जैसे लालच से इन्द्र हमारी रक्षा करें ।

दुर्गुणों से बचाव के विषय में वेद कहते हैं - **विश्वानि देव सवितर्दुस्तानिः परासुव । यदभद्रं तन्न आसुव ।।**[17]

वैदिक शिक्षाएँ इतनी दिव्य है कि उनके द्वारा समस्त विश्व शाश्वत सुख एवं विमल शान्ति प्राप्त करता है। उपनिषद मानव जीवन की नैतिक शिक्षा को पुनः प्रेरणा प्रदान करती है - उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्यवरान्निषोधत् ।

निष्कर्षत -

यह कहा जा सकता है कि मानवता एवं मानव मूल्यों के ह्रास से समस्त विश्व जिस कलह, हिंसा व अशान्ति की लपेट में आ गया है यदि वह वैदिक मूल्यों व वैदिक धर्म का धारण करें तो निश्चित रूप से हमारी मानवता टिकी रह सकती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- ऋग्वेद10/53/6
2- ऋग्वेद 8/3/13
3- मुण्डकोपनिषद्
4- ऋग्वेद 9/73/1
5- ईशावास्योपनिषद्
6- ऋग्वेद 10/134/6
7- ऋग्वेद 4/33/11
8- ईशावास्योपनिषद्
9- ईशावास्योपनिषद्
10- कठोपनिषद्
11- अथर्ववेद 3/20/5
12- वैत्तिरीयोपनिषद् शीलावल्ली
13- ऋग्वेद 10/117/4
14- अथर्ववेद 3/24/5
15- ऋग्वेद 10/12/191
16- ऋग्वेद
17- ऋग्वेद

◈◈

ISSN : 2349-9273

भारत में आर्थिक उदारीकरण : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में

– डॉ. ए. के. जैन
असि. प्रोफेसर – कामर्स विभाग,
डी. ए. वी. (पी. जी.) कालेज,
कानपुर–208001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
akjain_knp@yahoo.com

मोटे तौर पर दुनिया के सभी देशों का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि आधारों पर एक दूसरे से निकटतम से निकटतम जुड़ाव वैश्वीकरण कहा जा सकता है। इस परम्परा में पूरे विश्व को अलग–अलग देखने की बजाय उन्हें एक 'ग्लोबल विलेज' के रूप में देखने की प्रक्रिया शुरू हुई है। भारतीय अर्थशास्त्री प्रोफेसर अमर्त्य सेन वैश्वीकारण को ऐतिहासिक प्रक्रिया मानते हुए कहते हैं कि यह अनिवार्य रूप से पश्चिमी नहीं है, लेकिन व्यापार और अर्थ व्यवस्थाओं के वैश्वीकरण को रोक पाने का प्रयास करना तो किसी के लिए सम्भव ही नहीं है। प्रोफेसर जगदीश भगवती मुक्त व्यापार के समर्थक है, उनका मानना है कि मुक्त व्यापार में अर्थ व्यवस्था के विकास में व्यापक रूप से मदद की है। नव मार्क्सवादी मानते हैं कि वैश्वीकरण साम्राज्यवाद का एक नया रूप है और यह उदारवादी संकीर्ण नीतियों का विस्तार है। उनका कहना है कि पश्चिमी विकसित देश अपनी–अपनी अर्थव्यवस्थाओं को बचाने के लिए उदारीकरण का सहारा ले रहे हैं और इससे केवल उन्हें ही लाभ मिलेगा न कि कमजोर राष्ट्रों को।

भारत में उदारीकरण की शुरुआत 1991 से मानी जाती है, जब नवीन औद्योगिक नीति अपनाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को दुनिया के अन्य देशों के लिए खोल दिया गया। उत्पादन इकाइयों की प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाकर अर्थव्यवस्था की विकास दर को तेज करना उदारीकरण का प्रमुख उददेश्य रहा है और इस हेतु विदेशी विनिमय की रुकावटों को धीरे–धीरे समाप्त करना, लाइसेन्स परमिट राज्य से मुक्ति, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश हेतु बहुराष्ट्रीय निगमों को प्रोत्साहन आदि अनेक कदम उठाये गये हैं। उदारीकरण के 25 वर्ष बाद देश के जी. डी. पी. में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। 1991 में देश का कुल जी. डी. पी. 586212 करोड़ रुपये था जो 25 साल में बढ़कर 13576086 करोड़ रुपये हो गया है अर्थात् 2216 प्रतिशत की वृद्धि। जी. डी. पी. की वृद्धि दर के आधार पर भारत विश्व की 9वीं सबसे बडी अर्थव्यवस्था है। जी. डी. पी. वृद्धि दर के मामले में भारत दुनिया की तेज उभरती अर्थव्यवस्थाओं में से नम्बर 2 पर है। चीन की वृद्धि दर घटने की ओर है और अब हमारी गिनती विश्व की सबसे वृद्धि दर प्राप्त करने अर्थव्यवस्थाओं में होगी, इस बात की पूरी सम्भावना है।

उदारीकरण के पूर्व देश का घरेलू क्षेत्र अपनी बचतों को वित्तीय पूंजी के रूप में रखने की बजाय भौतिक परिसम्पत्तियों के रूप में रखना पसन्द करता था। लेकिन अब वह धीरे धीरे वर्ष प्रतिवर्ष वित्तीय परिसम्पत्तियों की ओर होता चला जा रहा है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है– (तालिका देखें)

उदारीकरण से पूर्व ज्यादातर लोग अपनी संचित बचतों से ही व्यय करना पसन्द करते थे लेकिन अब उनकी प्रवृत्ति में बदलाव आया है और वे संस्थागत उधार लेकर खर्च करना पसन्द करने लगे हैं। आज मकान, कार,

Financial Assets of the households (2012-16)
(Rs. in Billion)

Year	Currency	Bank Deposits	Non Bank Deposits	Life insurance funds	Provident & pension fund	Shar Deber
2012-	1115	5751	279	1799	1565	17
13	995	6481	217	1840	1902	42
2013-	1341	5933\	333	2482	2050\	53
14	2006	6159	403	2725	2111	91
2014-						
15						
2015-						
16						

कम्प्यूटर और अन्य तमाम कन्ज्यूमर गुड्स ई. एम. आई. के सहारे चल रहे है। घरेलू क्षेत्र की वित्तीस देयतायें जो वर्ष 2015 में 3204 बिलियन रुपये थी, वह बढकर 2016 में 4212 बिलियन रुपये हो गई है।

आज भारत विश्व के 190 देशों को लगभग 7500 वस्तुएं निर्यात करता है तथा 140देशों से लगभग 6000 वस्तुएँ आयात करता है। वर्श 2014 में भारत ने 318.2 बिलियन अमेरिकी डालर के मूल्य का सामान निर्यात किया तथा 462.9 बिलियिन अमेरिकी डालर के मूल्य का सामान आयात किया। भारत का विदेशी व्यापार (टेबिल देखें)।

वर्ष 2014 में निर्यात की गई वस्तुओं में सर्वाधिक 19.2 प्रतिशत हिस्सा रिफाइन्ड पेट्रोलियम का और 13 प्रतिशत हिस्सा बहुमूल्य रत्न और आभूषणों का है। इसी वर्ष आयात की प्रमुख मदों में बहुमूल्य धातुओं और रत्नों का हिस्सा 13 प्रतिशत व पेट्रोलियम का हिस्सा 38.3 प्रतिशत है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि भारत बहुमूल्य धातुओं व रत्नों के रूप में जितना आयात करता है, लगभग उतने की प्रतिशत वह निर्यात करता है लेकिन पेट्रोलियम के क्षेत्र में आयात के प्रतिशत (38.3%) और शोधित पेट्रोल के निर्यात (19%) लगभग दूने का अन्तर है। कहने का तात्पर्य यह है कि बहुमूल्य धातुओं के रूप में अपन बचतों को संभाल कर रखने की विरासत वाला देश आज पेट्रोल पर खूब खर्च कर रहा है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः .... के उद्घोश के साथ सामाजिक सरोकार रखने वाला भारत प्राचीन काल से ही विश्व के सुदूर देशों के साथ व्यापार करता आया है। प्राचीन काल में मसालों और विलासिता की वस्तुओं का निर्यात करता था। उसके आयात कम थे और निर्यात अधिक। व्यापार सन्तुलन सदैव उसके पक्ष में रहता था। व्यापारिक भुगतान सोने या चाँदी के सिक्कों या फिर भारत की प्राचीन मुद्रा बहुमूल्य लाल मूंगे के रूप में होता था। भारत हाथी दांत की कारीगरी और मलमल के लिए प्रसिद्ध था। जिसे रोम के साहित्य में 'बुनी हुई हवा' कहा जाता था। रोमन लेखक पिल्नी ने लिखा है कि ''ऐसा एक भी वर्ष नहीं जाता जब भारत 50 मिलियन सेस्टरसीज रोम से न ले जाता हो।'' कुछ इतिहासकारों के अनुसार भारत मूलरूप

भारत का विदेशी व्यापार

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार घाटा
2010	201.1	327.0	−125.9
2011	299.4	461.4	−162.0
2012	298.4	500.4	−202.0
2013	313.2	467.5	−154.0
2014	318.2	462.9	−144.7
2015	310.3	447.9	−137.6

से वस्त्रों की छपाई का जन्म स्थान था ''हिस्ट्री ऑफ प्रिन्टिड टेक्सटाइल्स'' में स्टॉट राबिन्सन ने लिखा है, ''चीन के छपे हुए वस्त्रों के निर्यात का पता ईसा पूर्व 4 सदी से चला जहाँ उन्हें बहुत पसन्द किया जाता था और पहना जाता था और बाद में वहाँ उन वस्त्रों की नकल भी शुरू हुई थी।'' 'आर्ट ऑफ इण्डिया 1500–1900' 13वीं शताब्दी में मार्को पोलो ने लिखा है– कि भारतीय वस्त्रों को चीन और दक्षिण पूर्व एशिया मछलीपट्टम और आन्ध्र एवं कोरोमण्डल से उस समय के सबसे बड़े जहाजों से निर्यात किया जाता था। रॉबिन मैक्सवैल ने 'टैक्सटाइल्स ऑफ साउथ ईस्ट एशिया' में बताया कि जटिल रूप से अंलकृत भारतीय वस्त्र सबसे अधिक कीमती होते थे, उन्हें सम्भाल और सहेज कर रखा जाता था और खास अवसरों पर उन्हें निकाल कर पहनने की परम्परा थी। अहमदाबाद के पाटण के पटोला जैसे बहुमूल्य वस्त्र और गुजरात एवं कोरोमण्डल के चमकीले पक्के रंगों के सजावटी सूती वस्त्र फिलीपीन्स के धनाढ्य व्यापारियों एवं मलेशिया के रहीसों की पहली पसन्द हुआ करते थे। 1498 में वास्कोडिगामा कालीकट पहुँचा, उसकी इस यात्रा से पुर्तगाल का इतना लाभ हुआ कि अन्य यूरोपीय भी यहाँ से व्यापार करने का आतुर हो गये। इसके बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत में विशाल साम्राज्य स्थापित होना भारत की सामाजिक–राजनैतिक कमजोरी की कहानी को स्वतः व्यक्त कर देता है।

आज के इस वर्तमान परिवेश में हम वैश्वीकरण से दूर नहीं भाग सकते, लेकिन हमें अपने अतीत से सबक लेते हुए यह तो समझना ही पड़ेगा कि मुक्त व्यापार व्यवस्था समाज सुधार या कुल मानव कल्याण की अभिवृद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। उसका तो एक मात्र उददेश्य समाज में भौतिक परिसम्पत्तियों की मात्रा को बढ़ाते हुए अपने लाभ को अधिकतम करना होता है। बड़े जोर–शोर से यह कहा जाता है कि मुक्त व्यापार व्यवस्था में उपभोक्ता सम्राट होता है। लेकिन वह उपभोक्ता ही सम्राट होता है, जिसके पास क्रय शक्ति और बाजार का पूर्ण ज्ञान दोनों हो। यदि व्यापार संगठनों का ज्ञान समाज के ज्ञान से अधिक हो तब फिर मुक्त व्यापार वाली इस व्यवस्था में उपभोक्ता सम्राट नहीं बल्कि 'अज्ञानी सम्राट' होता है। जिसे दीर्घ काल में नुकसान और हानि के सिवा कुछ नहीं मिलता, क्योकि इस स्थिति में वस्तुओं का उत्पादन उपभोक्ता के अधिमान के अनुसार नहीं किया जाता है बल्कि उत्पादित किये गये सामान और सेवाओं के अनुरूप उपभोक्ता तैयार किये जाते हैं। भारत में चाहे चाय के प्रयोग का शुरुआती इतिहास रहा हो या फिर पैप्सी कोला अन्य फास्टफूड का। सबकी मांग तभी बढ़ी है, जब विज्ञापनों के माध्यम से भारतीय जनमानस के 'माइन्ड–सेट' को बदला गया। आज वैश्वीकरण का सबसे बड़ा प्रभाव सनातनी सभ्यता वाले भारत पर यह पड़ा है कि जिस देश में कभी बासी चूल्हे पर खाना नहीं बनता था, वह देश आज बासी खाना खाने में गर्व का अनुभव कर रहा है।

निष्कर्ष–

वैश्वीकरण अच्छा है लेकिन केवल उन लोगों के लिए जो ज्ञानवान हैं और जिनके पास पर्याप्त क्रय शक्ति है। उन लोगों और राष्ट्रों के लिए यह अनिवार्य रूप से घातक सिद्ध होगा जो केवल और केवल 'प्रदर्शन प्रभाव' के वशीभूत हो वैश्वीकरण के मनमोहक लेकिन फिसलन भरे मार्ग पर तेज दौड़ते चले जा रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एम. एल. झिंगन – उच्च आर्थिक सिद्धान्त, 1996, कोणार्क पब्लिकेशन, दरियागंज, दिल्ली।
2. भारतीय आर्थिक समस्याएँ – जैन एण्ड त्रेहन, 2012–13, ग्लोबल पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
3. भारत का इतिहास, itihaasam blog spot.in. http://itihaasam.com/2009/01/blog-spot-5688 html?m=1.
4. भारत का विदेश व्यापार–विकीपीडिया।

5- Household assets and liabilities in india, National Sample Survey Organization, Ministry of Statistics and program implementation ,Government of India.

◈◈

ISSN : 2349-9273

मत्स्य पुराण का प्राकृतिक अध्ययन : प्रकृति, संस्कृति एवं आर्थिक संसाधन

- डॉ. किरन तिवारी

अ‍सिस्टेंट प्रोफेसर-संस्कृत विभाग,
विवेकानन्द ग्रामोद्योग
महाविद्यालय, दिबियापुर, औरैया-
इटावा-206120 (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
kirantiwari03@gmail.com

सारांश

प्रकृति का मानव के साथ आदिकाल से सम्बन्ध चला आ रहा है। प्रकृति के कमनीय क्रोड में क्रीड़ा कर केवल मानव ने ही नहीं अपितु प्राणि मात्र ने अलौकिक आनन्द की अनुभूति की है। प्राणि मात्र में मानव मानस सर्वाधिक संवेदनशील है। उसकी संवेदनशीलता ने ही प्रकृति के साथ उसका तादात्म्य स्थापित किया है। यही कारण है कि मानव प्रकृति से अनुच्युत होकर अपने जातिगत कार्य करने को प्रवृत्त होता रहा है। प्रकृति के अनुसार ही उसका स्वभाव एवं प्रवृत्तियाँ विनियमित हुई हैं। सान्द्रद्रुमों की शीतल छाया, पुष्पों के सरस सौरभ, द्विजाति के मधुर कलरव, स्त्रोतस्वितियों के स्त्रोत सुखद कलकल, कोकिल की कल-काकली, सुधांशु की शुभ धवलिमा, अरुण की अभिनव-अरुणिमा, शिलोच्चयों के अभ्रकय, तुहिनावृत्त सुमुतङ्श्रृङ्ग, षड्ऋतुओं के रुचिर पर्यावरण आदि प्राकृतिक संसाधनों ने मानव मस्तिष्क को अत्यधिक रूपन्दित किया है। नर-नारी के सदृश प्रकृति के भी मानव के लिए अनेक रूप प्रस्तुत होते हैं। जहाँ बाल्यावस्था में वह मानव के लालन, पालन-पोषण के समय दुलार करती हुई जननी के सदृश उसके लिए समुपभोग सामग्री को प्रस्तुत करती है। जिसमें रमण कर मानव परमाह्लाद की अनुभूति करता है। वृद्धावस्था में वह उसके प्रशान्त कुटीर में अवस्थित होकर मानव परम शान्ति का अनुभव करता हुआ मोक्ष मार्ग के लिए प्रवृत्त होता है। अतएव हम कह सकते हैं कि मानव का प्रकृति देवी के साथ सार्वजनिक सहज सम्बन्ध है।

भारत देश प्रकृति सुन्दरी का भव्य प्रासाद है। इसकी प्राकृतिक सम्पदा जनमनाह्लादाकारिणी तो है ही, परन्तु उसका इससे भी बढ़कर और अधिक महत्व इसलिए है कि वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ का संसिद्धि में सर्वातिशायिनी भूमिका के सहज रूप में निभाती है। प्रकृति महत्वपूर्ण भारतीय घटकों की संसिद्धि एवं प्रसिद्धि की प्रमुख हेतु रही है। प्राचीन कालिक भारतीय गौरव राज्य प्रासादों में न बढ़कर प्रकृति के पावन क्रोड में पल्लवित हुआ था। चक्रवर्ती सम्राट भरत की शिक्षा-दीक्षा तपोवन में ही हुई थी। आश्रम में ही निवास कर राम लक्ष्मण ने विभिन्न विद्याओं में पूर्णता प्राप्त की थी। प्रकृति के ही पवित्र क्रोड में बैठकर भारतीय मनीषियों ने वेदों के दिव्य ज्ञान का साक्षात्कार किया था। ज्ञानलोक से प्रकाशित अन्तःकरण वाले महर्षियों ने प्राकृतिक तपोवनों में ही समाधि में स्थित होकर उस परम ब्रह्म की दिव्य ज्योति का साक्षात्कार किया है।

वैदिक वाङ्मय में हमें प्रकृति के चारुतम चित्रण दृष्टिगोचर होते हैं। ऋग्वेद पर्जन्य सूक्त में प्रावृत् ऋतु का मनोहारी वर्णन हुआ है। ऋग्वेद में आश्रम स्थलों पर देवी ऊषा का स्वर्णिम चित्र खीचा गया है। इसी प्रकार अनेक स्थलों पर

प्रकृति के मनोरम दर्शन होते हैं। वैदिक वाङ्मय से प्रभावित परवर्ती साहित्य में भी प्रकृति के मधुर और मनोरम रूप को देखा जा सकता है। लौकि साहित्य के आदि कवि महर्षि बाल्मीकि प्रकृति के निसर्ग, अवदात एवं मनोहर चित्रण में पूर्णतया सिद्ध-हस्त है। महर्षि बाल्मीकि का प्रकृति चित्रण सरस एवं स्वाभाविक है। व्यास, कालिदास, भास, भवभूति, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि महाकाव्यों ने अपनी-अपनी कृतियों में प्रकृति सुन्दरी के सुनहरे स्वरूप का सुस्निग्ध चित्रण किया है।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक प्रतिनिधि कवि ने साथ तादात्म्य स्थापित कर उसका मनोमुग्धकारी विमल स्वरूप निरूपित किया है। प्रकृति के भी 'कोमल एवं विकराल (कठोर)' दो पक्ष हैं। संस्कृत के कतिपय कवियों ने प्रकृति के अभिराम रमणीक, रूप का चित्रण किया है। कुछ कवियों ने प्रकृति के उग्र रूप को चित्रित कर दिया है। परन्तु कुछ ऐसे भी कवि है जिन्होंने 'प्रकृति के कोमल एवं कठोर' दोनों ही रूपों का चित्रण किया है। प्रकृति के केवल उग्र रूप का चित्रण करने वाले कवि न्यून है। महाकवि कालिदास ने कोमल, मधुर, मसण एवं अभिराम रूप को प्रकाशित किया है। विताकान्ताविभूति महाकवि भवभूति ने उसके कोमल एवं कठोर दोनों पक्षों का प्रौढ़ चित्रण किया है।

प्रकृति का स्वरूप -

सामान्यतः इस संसार के दृश्यमान सत्व तत्व प्रकृति ही है। किन्तु तत्वदर्शी मनीषी इस जगत से परे जो सत् तत्व विद्यमान है, उसको भी प्रकृति में ही स्वीकार करते है।"[1] प्रकृति के इन्ही दो विभागों को आध्यात्मिक या अन्तः और भौतिक या वाह्य प्रकृति की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। प्रकृति के इन रूपों के अतिरिक्त उसका वर्गीकरण कोमल एवं विकराल, और आलम्बन एवं उद्दीपन रूप में भी किया जा सकता है। यहाँ पर प्रकृति के अन्तःस्वरूप को प्रथमतः और वाह्य स्वरूप को उसके पश्चात् प्रस्तुत किया जा रहा है-

(अ) अन्तः प्रकृति (स्वरूप) - ब्रह्माण्ड की रूपात्मक प्रकृति चेतन तत्व से अनुप्राणित होती है। प्रकृति के विभिन्न उपादानों में सद् एवं असद् दोनों प्रकार के बिम्ब स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। इसके मूल में वह चेतन-तत्व है जिससे प्रकृति अनुप्रणित है। मानव, पशु और पक्षी के साथ ही साथ जड़ प्रकृति (वृक्षादि) भी उस शाश्वत शक्ति से प्रेरित होकर मानवोचित व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। वे प्रकृति के मूल रूप से पूरक नही है अपितु अपने मौन सन्देशों और क्रिया-कलापों से नानात्व को प्रस्तुत करते रहते हैं।

शकुन्तला के आश्रम पार्थक्य के दुख से अभिभूत हरिणियां चर्वित कुश-ग्रास उगल देती है, मयून नर्तन त्याग देते है और लतिकाएं पीत-पत्र त्याग कर अश्रुपात करती है।

'उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्त नर्यना मयूराः ।
अपसृतापाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्य श्रूणीव लताः ।।'[2]

महाकवि भवभूति तो जड़ प्रस्तरों के अन्तः व्यापार का भी सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं। सीता विरह से व्यथित राम के करूण क्रन्दन को सुनकर जन स्थान के पशु-पक्षी और पादप लताएं ही नही रोती अपितु प्रस्तर भी आंसू बहाते है और वज्र का भी हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है-

'जनस्थानेसून्ये विकलकणैरार्य चरितै -
रपिग्रावारोदित्यपि दलित वज्रस्यहृदयम्।।'[3]

मत्स्य पुराण भी इस प्रकार की प्रकृति वर्णन से हीन नही है। हिमालय के एक आश्रम में निवास करते हुए अहिंसावादी महर्षि अत्रि के अहिंसक भाव से प्रभावित होकर मांसाहारी पशुओं ने भी ऋषि के समान निरामिष होकर दुग्ध और फल पर जीवन-यापित करना प्रारम्भ कर दिया था। वहां की भैंसे और बकरियों स्वादिष्ट दुग्ध बहाया करती थी, शिलाएं भीतर एवं बाहर से दुग्ध परिपूर्ण थी।

1- कोमल एवं विकराल -

मानव और प्रकृति परस्पर एक-दूसरे के पूरक है। इसीलिए मनुष्य प्रकृति का प्रेमी और पुजारी बनता है और प्रकृति मानव की सहभागिनी एवं सहकर्मिणी बनती है। विशेष मनःस्थित में मनुष्य प्रकृति के विविध रूपों में अपनी भावनाओं एवं विचारों का दर्शन करता है। इस प्रकार प्रकृति उसके अन्तःकरण में स्थित विभिन्न मनोभावों का प्रतिबिम्ब बन जाती है। मानव अन्तःकरण के साथ अनुस्युत होकर वह अस्थिर और परिवर्तित रूप में भी दिखाई पड़ती है। परिवर्तित मनःस्थित में प्रकृति का स्वरूप भी परिवर्तित दिखाई पड़ता है। इसी कारण से प्रकृति कभी उसे आनन्द एवं उत्साह का सागर समझने आती है तो कभी भयावह, उत्तेजक, दुःखद एवं विप्लवकारी। विचारकों, मननशील मुनियों एवं कवियों ने मानव एवं प्रकृति के इन सम्बन्धों का भरपूर निरूपण किया है। महाकवि कालिदास लिखते हैं कि जहाँ मंजरियों से लदी हुई रसाल शाखाओं को आन्दोलित करता हुआ पवन दर्शकों के हृदयों को मुग्ध करता है और पल्लव, गुच्छ एवं पुष्पच्छादित शाखाएँ कामिनियों के चित्त को आह्लादित करते हैं। वही पत्नी विरह से व्यक्ति पथिक के लिए अत्यन्त दुःख दायिनी सिद्ध होती है।'[4]

इसी प्रकार महाकवि श्री हर्ष का 'नैषध' [5] और भवभूति का 'मालती माधव'[6] भी देखा जा सकता है।

2- आलम्बन एवं उद्दीपन रूप -

मानव प्रकृति के ही क्रोड में जन्मा है। उसी में उसका पोषण एवं विकास हुआ है। इसलिए मानव मन पर प्रकृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। ऋषि-मुनि और कवि सभी मनुष्य होते हैं। इसलिए उनकी रचना पर प्रकृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। प्रकृति अपने विविध आलम्बन स्वरूपों द्वारा रचना कर्ता में रसों का सञ्चार करती है तथा आश्रय रूप कवि या ऋषि की कल्पना का आलम्बनरूपा प्रकृति भाव का आश्रय लेने वाले कवि में अपने विविध स्वरूपों द्वारा रस का सञ्चार करती है। क्योंकि प्रकृति के विविध रूपों से ऋषि के ज्ञात-अज्ञात मन में भावनाएं सजग हो जाती है और वह संयोग - वियोग, करुणा-दया, प्रेम-घृणा तथा भय इत्यादि मनोभावों को ठीक वैसे ही अनुभव करने लगता है। जैसे विगत घटना क्रम उसके समक्ष अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया है। प्रकृति का यह आलम्बन रूप समूचे विश्व साहित्य में परिलक्षित होता है।

विवेच्य पुराण में प्रकृति के आलम्बन स्वरूप का निरूपण आद्यन्त देखने को मिलता है। हिमालय और उसकी तटवर्ती नदी 'ऐरावती' नदी महर्षि अत्रि और मद्रदेश के राजा पुरुरवा के लिए इस प्रकार से आलम्बन करती है कि उनका वीतरागी मन वहाँ बनाये गये आश्रम में स्थित लेने के लिए उत्कण्ठिक हो उठता है -

'क्वचिद्विद्याधरगणैः क्रीडदिभरूपशोभिताम् ।
उपगीतं तथा मुख्यैः किन्नराणाम् गणै क्वचित् ।।'[7]

नन्दन वन और शरवण वन भी प्रत्येक मानव पर आलम्बन बन कर इस प्रकार का प्रभाव डालते हैं कि तपस्वीगण वहाँ पर आश्रमस्थ होकर कठोर साधनाएं करते हैं। तपश्चरण से मानव मन का परिष्करण होता है। मन के परिष्करण से शान्ति मिलती है। शान्ति से शान्ति स्वरूप आत्म तत्व की प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार मत्स्य पुराण में सत्यवान-सावित्री का जो उपाख्यान वर्णित है वह प्रकृति के आलम्बन रूप से ओत-प्रोत है। यहाँ पर सत्यवान सावित्री से कहते हैं कि हे विशालाक्षि इस हरित भूमि में सुशोभित वन में वसन्त की वृद्धि करने वाले नेत्र एवं नासिका को सुख देने वाले आम्र वृक्ष को देखो तथा अरुणिम अशोक को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है।

'वनेऽस्मिञ्चशाद्वलाकीर्ण सहकारं मनोहरम् ।
नेत्रघ्राण सुखं पश्य वसन्ते रतिवर्धनम् ।।
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम् ।
वसन्तो हसतीवायं मावेवाऽऽ।तलोचने ।।'[8]

पूर्व विवेचन में प्रकृति का आलम्बन रूप प्रतिपादित किया गया है। इसमें प्रकृति कवि के संवेगों का प्रत्यक्ष आलम्बन होती है किन्तु जब मानव हृदय में स्थित स्थाई भाव प्रकृति भिन्न किसी अन्य आश्रय से उद्दीपत होता है तो उसत समय प्रकृति उसके लिए उद्दीपक बन जाती है।

3- प्रकृति का मानवीयकरण -

मानव और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्धों सन्निकटताओं और तादात्म्य पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि मानव प्रकृति में सर्वत्र अपने ही रूप को देखता है। व्यक्ति की यह अवस्था होने पर प्रकृति केवल उसके लिए आलम्बन एवं उद्दीपन रूप वाली ही नहीं रह जाती। उसकी सहचरी, सहधर्मिणी और सहकर्मिणी भी हो जाती है। इस अवस्था में प्रकृति, व्यक्ति का परिवार या अंग बन जाती है। फलस्वरूप वह निष्प्राण एवं निश्चल प्रकृति के प्रभाव से भी किसी न किसी रूप में सम्बन्ध जोड़ लेता है। इस संसार में उसके जितने सम्बन्ध अपने स्वजनों या परिजनों एवं सामान्य से होते हैं, उसके वे सारे सम्बन्ध प्रकृति में भी दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति का यही मानवीय स्वरूप है। प्रकृति मानव द्वारा कही सेविका के रूप में, कही शिक्षिका के रूप में, कही उपदेशिका के रूप में, कहीं दूती के रूप में, कही प्रेमी के रूप में कही प्रेमिका के रूप में, कही मित्र के रूप में, कही पत्नी के रूप में और कही सहधर्मिणी के रूप में देखी गयी है। यह प्रकृति मानव को प्रेम, आदर्श, सदाचार, सत्य और आध्यात्म का भी पाठ पढ़ाती है।

प्रकृति का मानव जीवन में महत्व व उपयोग

प्रकृति की मानव जीवन में अपरिहार्य उपयोगिता है। मानव के लिए वह किसी न किसी रूप में अपने विविध उपादानों से उपादेय सिद्ध होती है। पृथ्वी, तेज, वायु और आकाश मानव शरीर रचना के हेतु है। मनुष्य का जीवन इसीलिए इन पञ्च तत्वों के बिना असम्भव है। धरातलीय वनस्पति, जल, जन्तु, प्रकाश, वायु, सूर्य और चन्द्र इसके बिना जीवन की कल्पना करना व्यर्थ है। सांसारिक प्रकृति तो हमारी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करती ही है, आध्यात्मिकता के लिए भी महत्वपूर्ण है। ईश्वर भक्ति, साधना और मोक्ष के लिए प्रकृति का योगदान महनीय है। इन्ही दोनों दृष्टियों से

मानव के लिए प्रकृति कितनी उपयोगिनी हैं। इसका विवेचन किया जाना है।

(क) लौकिक महत्व -

यदि हम थोड़ा सा भी विचार करें तो यह अनुभव होता है कि मानव का ही नहींअपितु प्राणिमात्र का जीवन प्रकृति पर अवलम्बित है। मानवेतर जीव जन्तु प्रकृति का सीधा उपयोग नही करते हैं। किन्तु प्रज्ञा प्रधान मनुष्य उसके द्रव्यों का रूप परिवर्तन करके नाना प्रकार से उसका उपयोग करता है। मानव का पालन-पोषण, आहार-विहार, रहन-सहन, वेष-भूषा, आचार-व्यवहार तथा दैनिक आवश्यकताएं प्रकृति पर आवलम्बित है। स्वास्थ्य इत्यादि विविध पहलुओं पर हम प्रकृति की उपयोगिता का विचार अधोविन्यस्थ कर रहे हैं।

(1) **स्वास्थ्य सम्बन्धी -** प्राणियों के स्वास्थ्य संवर्धन में प्रकृति अनेक प्रकार से सहायक सिद्ध होती है। आयुर्वेद जो प्राणियों के स्वास्थ्य रोगों एवं औषधि का विशद विवेचन करता है। उसका आधार प्राकृतिक वनस्पतियाँ ही है।

प्रकृति निर्मित औषधियाँ मानव को ही नहीं समस्त प्राणि मात्र को स्वस्थ रखती है।'[9] व्रण विरोपण में इङ्गुदी के तेल के प्रयोग का उल्लेख प्राप्त होता है -

'यस्य त्वया व्रणाविरोपणमिङ्गुदीनां तैलं,
न्यषिच्यत मुखे कुशसूचविद्धे ।
श्यामाकमुष्टि परिवर्धितकोजहाति,
सोऽयं न पुत्रकृतक पदवी मृगस्ते ।।'[10]

(2) **संस्कृति सम्बन्धी -** भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृतियों में अन्यतम है क्योंकि यह शुद्ध, सरल और शाश्वत मूल्यों से अनुप्राणित है। इस संस्कृति में इन गुणों के होने का कारण यह है कि यह प्रकृति के सुरम्य वातावरण में जन्मी, फूली और फली है। वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, षोऽश, संस्कार, पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) यज्ञ-याजन, आहार-विहार, रहन-सहन, आचार-विचार और शिक्षा-दीक्षा इत्यादि में वाह्य एवं आभ्यन्तर दोनों प्रकार की प्रकृतियों का अमूल्य योगदान है।

(3) **दैनिक उपयोग -** मानव के दैनिक जीवन में भी प्रकृति का अन्यतम महत्व है। स्वच्छ वनवासियों के शिरोलेप एवं दीपक जलाने के लिए इङ्गुदीतैल उपयोगी है। सहकार कर्पूर, लवङ्ग, पारिजात, चम्पक, लवली, ताम्बूल, पूग ये सभी मुख वासक द्रव्य है। अगरु और चन्दन अङ्गराग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लाक्षारस महावर का कार्य करता है। मदिरा के लिए द्राक्षव और मधूक की अपनी अलग उपयोगिता है। वेतस और काष्ठ्य विविध प्रकार के लेटने, उठने, बैठने के आसन की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मानव एवं देवों के अर्चन एवं पूजन में पुष्पों का अपूर्णनीय योगदान है। शिरोमालाएं एवं मञ्च शोभाएं पुष्पों के बिना अधूरी सी रहती है। रसाल, कदली, खर्जूर, नारिकेल, जम्बू, बिल्व, दाडिम (अनार), आमलक इत्यादि के सुन्दर फल क्षुधापूर्ति के हेतु तो है ही, इनसे रसास्वाद का भी आनन्द मिलता है।

प्रकृति के अनेक पदार्थ हमारे दैनिक जीवन के लिए उपादेय हैं। निम्ब, बबूल आदि वृक्षों के दातून से हम नित्य प्रति अपने मुख को प्रक्षालित करते हैं। जिससे मसूढ़ों व दांतों की रक्षा होती है। अनेक वनस्पतियों को एवं प्राकृतिक पदार्थों को मानव जीवन में नित्य प्रति प्रयोग किया जाता है। प्रकृति प्रदात्त विभिन्न प्रकार के शाकों द्वारा मानव भिन्न प्रकार के व्यञ्जन तैयार करते है जो कि आहार के अनिवार्य अंग हैं। अन्ततः हम कह सकते है कि प्रकृति के अनेक उपादान मानव जीवन के दैनिक उपयोग की वस्तु बन गये हैं जिनका उपभोग मानव प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से नित्य प्रति करता रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रकृति मानव जीवन के लिए अनन्य उपयोगिनी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- सांख्य कारिका - 1-22
2- अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 4-12
3- उत्तर रामचरितं - 1-28
4- ऋतु संहार -6-22-26
5- नैषध - 1-91
6- मालती माधव - 1-18-19
7- मत्स्य पुराण - 117-18 एवं पूर्व भाग पृष्ठ 538-39
8- मत्स्य पुराण - 209-1-2
9- अथर्ववेद - काण्ड-8 सूत्र - 7-17
10- अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 4-14

◈◈

ISSN : 2349-9273

Socio-Economic Development in Satara District

- Prof. Magar Tanaji Raosaheb
Asso. Prof. - Dept. of Geography,
Uma Mahavidyalaya,
Pandharpur, Dist.- Solapur (MS)
Pin-413304

E-mail:
magartanagirao@gmial.com

Abstract

Development means a new spatial relationship among member of a community and between them and their environment. Socio-economic development is the procedure of social and economic development in a society. Economic development is the development of economic wealth of nations or regions for the well-being of their populations. The development of an area totally depends upon the availability of social facilities i.e. essential services such as elementary education, health, road, market and bank. The level of the development based on social facilities manifest itself in the level of economic development. Therefore an attempt is made here to study level of socio-economic development in the Satara District. The paper is based on secondary data. To determine infrastructural development Shrivastava. S. L.'s (1983) method i.e. "Proportional Standardized Mean and Composite Index" has been utilized. The study reveals that the high socio-economic development in the tahsils of Karad and Satara is mainly due to the district headquarter is located in Satara tahsil, as well as Satara and Karad tahsils are well connected by the National Highways, State Highways, district roads and railways. These tahsils have high urbanization, as well as agricultural development.

Keywaards: ***Socio-economic, development, Mean, Standard deviation.***

Introduction:

Development is multidimensional phenomenon. "The development is a procedure of subjective change and quantitative development of the social and financial reality which we can call either society or economy (Drewnowski,1966). Development means a new spatial relationship among member of a community and between them and their environment. It is a national thought for the development of weaker sections of the society through the transformation of the economic and socio-spatial structures of their production activities. Development is therefore, a multi-faceted phenomenon affecting a region and its people nearly in every aspects of life (Ramotra, 2008). The development of an area totally depends upon the availability of social facilities. Minimum Need Programme helps to improve the quality of life and ensures a balanced and integrated development of rural areas. The programme seeks to provide minimum level of social

on

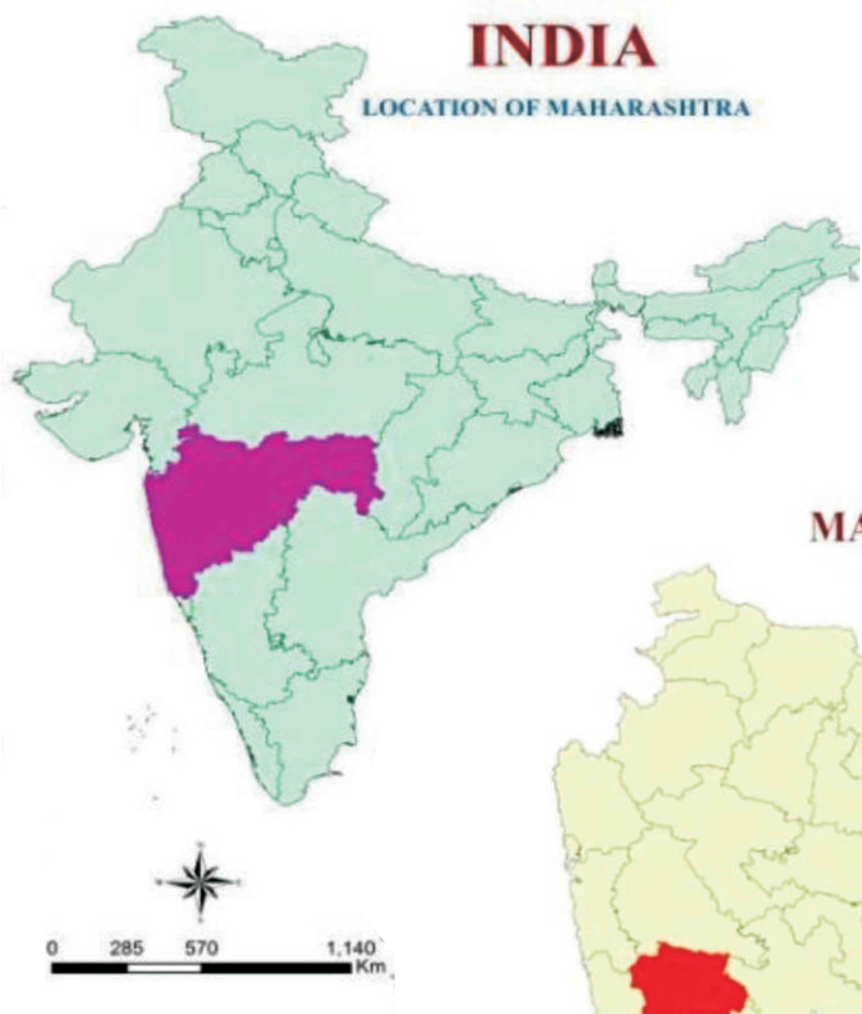
INDIA
LOCATION OF MAHARASHTRA
0 285 570 1,140
Km

MAHARASHTRA
Legend
Satara District
Maharashtra State

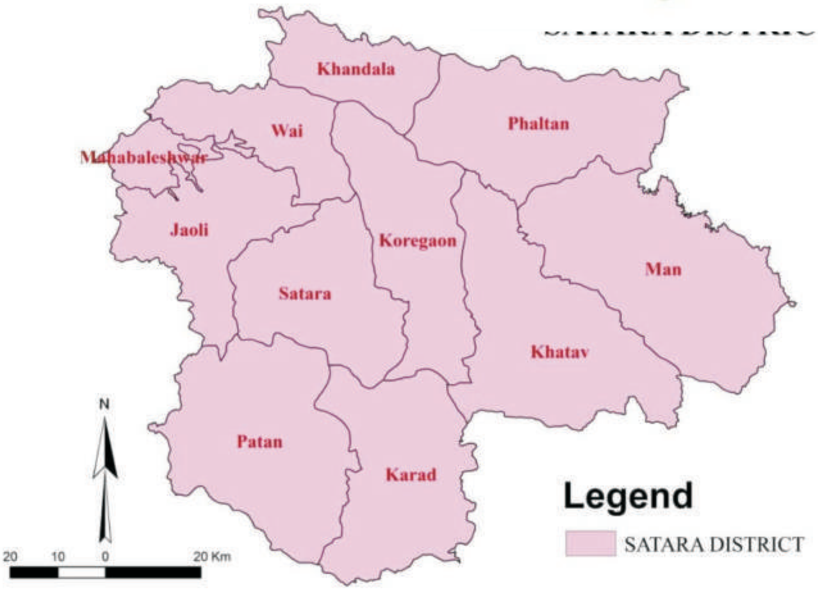
Khandala
Phaltan
Wai
Mahabaleshwar
Jaoli
Koregaon
Man
Satara
Khatav
Patan
Karad
N
20 10 0 20 Km
Legend
SATARA DISTRICT

consumption by network of essential services such as elementary education, health, road, market and bank. These essential services are affecting on which rural development is possible (Srivastav, 1992).

Socio-economic development is the procedure of social and economic development of a society. Social development is a procedure which results in the change 2 of social organizations in a way which improves the limit of the general public to satisfy its earnings. (Chisholm, 1982).

Economic development is the development of economic wealth of nations or regions for the well-being of their populations. The term "economic growth" refers to the increase (or growth) of specific measures such as real national income, per capita income or gross domestic product. Economic development is also the process by which a nation improves the economic, political, and social wellbeing of its people (Chisholm, 1982). The level of the development based on social facilities manifest itself in the level of economic development (Chopra, 2006). Therefore an attempt is made here to study level of socio-economic development in the Satara District.

The Study Region-

Satara district is situated in the western part of Maharashtra state. Satara district lies between 17o 5" North latitudes and 18o 11" North latitudes and 73o 33" East longitude and 74o 54" East longitude. It is bounded by Pune district to the Northern side, Solapur district to the Eastern side, Sangli district to the Southern side, Ratnagiri district to the Western side, Raigarh district to the North-western side. Roughly, Satara district has a circular shape and it is situated in the Bhima and Krishna river basin. The total geographical area of Satara district is 10,484 square kilometer, which constitutes 3.41 per cent to the total geographical area of Maharashtra state. Satara city is a district headquarters and other towns are Wai, Karad, Koregaon, Koynanagar, Rahimatpur, Phaltan, Mahabaleshwar, Mhaswad and Panchgani. Satara district form fundamentally an important Physio-economic region. This district comes under Pune Administrative Division along with Pune, Solapur, Sangli and Kolhapur districts. As per census of the 2011, the population of district is 30,03,741 spread in 15 urban centers and 1739 are villages.Satara district is divided into seven sub-divisions viz. Satara, Wai, Karad and Phaltan and newly generated three sub-divisions since 13/07/2013 as Koregaon, Man- Khatav and Patan and eleven tahsils for administrative purposes. **(See Fig.-1)**

Objectives-

The main objective of present study is to determine and analyze Socio-economic development in the Satara district.

Data Collection and Methodology-

To fulfill above objective the data regarding to 14 indicators of socio-economic development i.e Population Density, Migration Rate, Literacy Rate, Percentage of total working population, Percentage of cultivators and agricultural labourer to the total working population, Percentage of working population in manufacturing and household industries to the total working population, Number of Primary Health Centers, Number of Dispensaries , Number of Post Offices, Number of Public Telephone Centers, Number of Primary Schools, Number of Secondary and Higher Secondary Schools, Number of Banks Offices, Number of Weekly Markets are collected from secondary sources i.e. Census handbook of Satara district and Socio-Economic Abstract of Satara District, 2011. After the collection data is processed. To determine infrastructural development Shrivastava. S. L.'s (1983) method i.e. "Proportional Standardized Mean and Composite Index" has been utilized. Which is as Following.

Where,

W = Weight of one particular indicator

Mean = The average of the series of one particular indicator.

SD = The standard deviation of same series.

$$Cl = \frac{x1\,w1 + x2\,w2 + x3\,w3 \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots}{w1 + w2 + w3 \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots}$$

Where,

CI = Composite Index

X = Particular Indicator

W = Weight of series of one particular Indicator.

Depending upon the composite index the indices have also calculated by taking whole region as 100 (for average composite index) by using following formula.

$$\text{Indices} = \frac{\text{Composite Index of any Units}}{\text{Average Compositive Index}} \times 100$$

Then on the basis of mean and standard deviation of composite index of Tehshils of Satara district is divided in to low, moderate and high development. On the basis of these statistical technique results and conclusions are drown.

Result and Discussion

Level of Socio-Economic Development in Satara District, 2011 -

In 2011, the index of socio-economic development of the Satara district is varies from 84.02 in Jaoli tahsil to 132.94 in Satara tahsil of the Satara district. Therefore, the spatial analysis the tahsils of Satara district are grouped into three categories on the basis of mean and standard deviation of indices of composite the socio-economic development.

High Level of Socio-Economic Development (> +116.98) -

The table 1 B reveals that the tahsils, which have above mean plus one standard deviation indices i.e. above 116.98 indices of composite index of socio-economic development are included in this category. The high socio-economic development is recorded in the tahsils of Karad and Satara in 2011, it is high in Satara tashil because of the district headquarter is located in Satara tahsil, as well as Satara and Karad tahsils are well connected by the National Highways, State Highways, district roads and railways. These tahsils have high urbanization, as well as agricultural development. Therefore, there is high socio-economic development such high concentration of population, high literacy rate,

Table 1 A

SataraDistrict:Indicatorsof the Socio-Economic Development in 2011

Sr. No.	Tahsils	Xi	Xii	Xiii	Xiv	Xv	Xvi	Xvii	Xviii	Xix	Xx	Xxi	Xxii	Xxiii	Xxiv
1	Mahabaleshwar	327	33.8	83.91	46.88	3.04	40.90	3	1	27	137	137	81	12	7
2	Wai	324	31.9	85.09	65.22	2.22	45.67	4	1	48	209	201	66	20	12
3	Khandala	262	35.3	85.4	63.29	3.01	46.40	3	3	37	97	128	46	19	8
4	Phaltan	286	29.7	81.16	70.22	2.42	46.14	6	3	48	133	337	86	31	22
5	Man	155	29.2	72.55	81.46	1.68	50.79	5	2	32	167	289	91	26	18
6	Khatav	244	28.8	80.52	77.58	2.82	48.43	7	1	71	275	270	87	30	17
7	Koregaon	279	15.2	85.13	70.5	3.16	44.99	6	1	66	152	210	76	29	15
8	Satara	573	33.9	88.72	41.04	4.28	40.28	8	2	93	613	357	184	64	12
9	Jaoli	125	28.2	81.96	72.04	3.06	48.14	5	2	35	175	216	42	11	9
10	Patan	227	31.7	77.4	78.91	2.36	47.98	13	2	94	133	553	91	22	29
11	Karad	602	28.2	84.31	58.32	3.24	42.94	11	1	115	385	375	159	61	29
	Mean	309.45	29.63	82.38	65.95	2.84	45.70	6.45	1.73	60.55	225.09	279.36	91.73	29.55	16.18
	SD	151.08	5.39	4.44	12.92	0.68	3.25	3.17	0.79	29.56	152.04	123.17	43.23	17.61	7.78
	W	2.05	5.50	18.57	5.10	4.20	14.05	2.03	2.20	2.05	1.48	2.27	2.12	1.68	2.08

Source: *Compiled by Researcher on the basis of Census handbook of Satara district and Socio-Economic Abstract of Satara District, 2011.*

primary health centres, dispensaries, number of public telephone facilities, primary schools, secondary schools, banking facilities and market centres.

Moderate Level of Socio-Economic Development (100.00 to 116.98) -

The tahsils which have mean to mean plus one standard deviation i.e. 100.00 to 116.98 indices of composite index of socio-economic development are included in this category. The moderate socio-economic development is recorded only in Patan tahsi of satara district.

Low Level of Socio-Economic Development (Below 100.00) -

The tahsils which have below mean i.e. below 100.00 indices of composite index of socio-economic development are included in this category. The low socio-economic development is recorded in the tahsils of Mahabaleshwar, Jaoli, Khandala, Man, Koregaon, Wai, Khatav and Phaltan. The Mahabaleshware, Wai, Khandala and Jaoli tahsils are located in hilly areas having adverse climatic condition, high rainfall, undulating topography, shallow and unfertile soil, lack of irrigation facilities and dense forest, etc. resulted into low level of socio-economic development. Man and Koregaon tahsils are located in the drought prone area, having less development of irrigation facilities resulted into low level of socio-economic development.

Conclusions-

The forgoing analysis reveals that there is great influence of geographical factors on level of socio-economic development in Satara district. The high socio-economic development in the tahsils of Karad and Satara is mainly due to the district headquarter is located in Satara tahsil, as well as Satara and Karad tahsils are well connected by the National Highways, State Highways, district roads and railways. These tahsils have high

Table 1 B

SataraDistrict:Composite Index and Indices of the Socio-Economic Development in2011

Sr. No.	Tahsils	CI	Indices
1	Mahabaleshwar	61.55	85.56
2	Wai	68.46	95.60
3	Khandala	60.77	84.47
4	Phaltan	70.85	98.49
5	Man	64.53	89.71
6	Khatav	71.79	99.80
7	Koregaon	66.28	92.14
8	Satara	95.64	132.94
9	Jaoli	60:45	84.02
10	Patan	78.45	109.05
11	Karad	92.53	128.63
Mean		**71.94**	**100.00**
SD			**16.98**

Source: *Compiled by Researcher on the basis of Census handbook of Satara district and Socio-Economic Abstract of Satara District, 2011.*

urbanization, as well as agricultural development. The low socio-economic development in the Mahabaleshware, Wai, Khandala and Jaoli tahsils is a result of their location in hilly areas as they having adverse climatic condition, high rainfall, undulating topography, shallow and unfertile soil, lack of irrigation facilities and dense forest. . The low socio-economic development in the Man and Koregaon tahsils is because of their location in the drought prone area, they having less development of irrigation facilities resulted into low level of socio-economic development.

References

1. Chisholm, M. (1982): Modern World Development: A Geographical Perspective, Hutchinson University Library, London, Pp. 13.
2. Chopra, Girish (2006): Rural Geography, Ajay Verma, Commonwealth Publishers, New Delhi, Pp. 67.
3. Drewnowski, Jan (1966): Social and Economic Factors in Development, UNRISD, Report No. 3, Geneva, Pp. 7.
4. Ramotra, K. C. (2008): Development Processes and The Scheduled Castes, Rawat Publication, Jaipur, Pp. 119-125.
5. Srivastava, R.K. (1992): Integrated Area Development - A case study of RathTahsil-Hamupur-Uttar Pradesh, Rawat Publications, New Delhi, Pp. 145-235.

◈◈

सुपर प्रकाशन

कानपुर-27

(विश्वविद्यालय स्तरीय लाइब्रेरी पुस्तकों के निर्माता एवं पुस्तक विक्रेता)

हम पुस्तकों को स्पष्ट शब्द सज्जा, डिजाइन एवं उत्तम कोटि की छपाई व अत्याधुनिक बाइंडिंग के साथ प्रकाशित क?रते हैं। प्राचार्य, विभागाध्यक्ष, एसोसिएट प्रोफे?सर, प्रवक्त?, क?वि, लेखक?, रचनाक?र - क?हानीक?र अपने संस्मरण, गीत, ग़ज़ल एवं कृ?तियाँ एवं अन्य कि?सी भी विधा पर उत्कृ?ष्ट ग्रन्थ अथवा रिसर्च स्क?लर (शोध क?र्ता) थीसिस प्रक?शन हेतु तैयार हो तो मूल प्रति **(Script)** भेजकर एक? माह में ही अपनी प्रति को पुस्तक के आकार में प्राप्त करें।

सुपर प्रक?शन देश-विदेश के? समस्त शिक्षा जगत् से जुड़े डिग्री क?लेजों (Higher Education) में यू जी सी के? द्वारा उपलब्ध निर्धारित मानक?ं के? अनुसार मल्टी डिस्प्लनरी क्वाटरली इंटरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जनरल में अपने शोध लेख (Research Paper) क? **'दि गुँजन'** एवं **'अभिनव गवेषणा'** **(मल्टी डिसिप्लिनरी ?क्वार्टरली इंटरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जनरल)** के? द्वारा प्रक?शित क?राने क? अवसर उपलब्ध क?राता है।

सुपर प्रकाशन द्वारा हिन्दी साहित्य - कला संकाय, कामर्स संकाय एवं विज्ञान संकाय तीनों फै?क?ल्टी क? पुस्तक?ं एवं इनसाइक्लोपीडिया क? प्रक?शन एवं विक्र?य विश्वविद्यालय लाइब्रेरी स्तर पर कि?या जाता है। सेवा क? अवसर प्रार्थनीय है।

- सर्वेश तिवारी 'राजन'

(प्रबन्ध संपादक? - 'दि गुँजन' एवं 'अभिनव गवेषणा'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इंटरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जनरल)

के-444 'शिवराम कृ?पा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208 027 (उत्तर प्रदेश)

मो0- 09335597658, 08896244776 E-mail:super.prakashan@gmail.com

Website : www.superprakashan.com, abhinavgaveshna.com, thegunjan.com

ISSN : 2349-9273

'मुन्नी मोबाइल' एवं 'आवा' उपन्यास में बाजारवाद की दुनियाँ में महिलाओं की स्थिति

– श्रीमती प्रिया गोसावी
सहायक प्राध्यापक एवं
विभागाध्यक्ष – हिन्दी विभाग,
विद्या प्रबोधिनी महाविद्यालय,
विद्या नगर, पर्वरी, गोवा–403501

ई–मेल :
priyagosavi28@gmail.com

सारांश

आधुनिक दुनिया में उपभोगों नारीवाद सर्वव्यापी इस बाजारवाद ने मनुष्य का इतना आकर्षित किया है कि वह अपने अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन सोशियल मीडिया पर करते हैं। नव पूँजीवाद के कारण जो नये किस्म का यथार्थ आया है, उसने समाज को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। बाजारवाद ने मनुष्य को लगातार संवेदनहीन बनाया है। नये अर्थ तंत्र के अन्तर्गत जिस तरह बाजारवाद ने देह व्यापार और अपराध जगत को बढ़ाया है, उसके उदाहरण के लिए प्रदीप सौरभ का 'मुन्नी मोबाइल' तथा चित्रा मुद्गल का 'आवां' उपन्यास उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में नई संवेदना के अन्तर्गत विविध रूपों को विश्लेषित किया है।

'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में पत्रकार आनन्द भारती एक प्रमुख पात्र है जो अपनी पैनी, निर्भीक और खोजी कलम से देश समाज में घटित घटनाओं को शब्दबद्ध करता है। उपन्यास के केंद्र में मुन्नी मोबाइल की कथा है, जो आनन्द भारती के यहाँ झाडू-पोंछा करती है और जिसे आनन्द भारती हस्ताक्षर करना सिखलाता है। मुन्नी मोबाइल का असली नाम बिंदू यादव है जो बिहार के बक्सर जिसे ले आकर दिल्ली के समीपवर्तीय नगर के गाँव में रहती है। पहले झोपड़ी में रहने वाली मुन्नी जमीन खरीदकर मकान बनाती है और अपने छह बच्चों के साथ मजदूर पति को पालती-पोसती है। लेकिन बाजारवाद के मोह में पड़कर वह गैरकानूनी धंधे शुरू करती है और इसी प्रतिस्पर्धा के कारण उसकी अन्त में हत्या कर दी जाती है।

आज भूमण्डलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण सारा विश्व बाजार के रूप में परिवर्तित हो गया है। बाजारवाद का प्रभाव साहित्य, समाज, सिनेमा आदि प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। उपभोक्तावाद को भूमंडलीकरण के कारण निश्चय ही बढ़ावा मिल रहा है। पूँजीवाद में उपभोक्ता वस्तुओं का अनियत्रिंत उत्पादन होता है। इस क्रूरभोग वृत्ति का प्राथमिक शिकार स्त्रियाँ बन चुकी है। स्त्रियों को एक वस्तु उपभोग की तरह देखा जाता है और उसकी बाजार में बोली लगाई जाती है। कई स्त्रियाँ न चाहते हुए इस स्त्री प्रवृत्ति बाजारवाद का शिकार बनती है तथा तकनीकी के उन्नति के कारण भारत में जिस गर्भ को पवित्र माना जाता है उस गर्भ की भी बाजार में कीमत लगाई जाती है। इस बाजारवाद ने मनुष्य को इतना आकर्षित किया है कि वह अपने अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन सोशल मीडिया पर करते हैं। नव पूँजीवाद के कारण जो नये किस्म का यथार्थ आया है। उसने समाज को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। बाजारवाद ने मनुष्य को लगातार संवेदनहीन बनाया है। नये अर्थतंत्र के अन्तर्गत जिस तरह बाजारवाद ने देह-व्यापार और अपराध जगत को बढ़ाया है उसके उदाहरण के

लिए प्रदीप सौरभ का 'मुन्नी मोबाइल' तथा चित्र मुद्गल का 'आवां' उपन्यास उल्लेखनीय है।

इस प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य साहित्य के माध्यम से विश्लेषित किए गये बाजारवाद का विरुद्ध नयी संवेदना के अन्तर्गत मानवीय संवेदनाओं के विविध रूपों पर प्रकाश डालना है। इसके लिए मैंने 'मुन्नी मोबाइल' और 'आवां' उपन्यास का चयन किया है। इस उपन्यासों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज को इस बढ़ते हुए क्रूर बाजारवाद और उसका मानवीय जीवन पर होने वाले प्रभाव के प्रति जागरुक करना तथा इस उत्तर आधुनिक संकल्पना के अति विस्तार साहित्य के परिप्रेक्ष्य करना आवश्यक है।

आज भूमण्डलीकरण के दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण सारा विश्व बाजार के रूप में परिवर्तित हो गया है। बाजारवाद का प्रभाव साहित्य, समाज, सिनेमा आदि प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। भूमण्डलीकरण के साथ इस बाजारवाद की शुरुआत होती है उसका मतलब होता है - उपभोक्ता संस्कृति का प्रसार और इसके लिए विकासशील देशों और पिछड़े देशों में ऐसा अर्थतंत्र विकसित होता है जिससे बाजार में पूँजीवादी देशों की वस्तुएँ निर्बाध रूप से आने लगती है। अपितु मनुष्य को भी एक उपभोग की तरह माना जाता है।

उपभोक्तावाद को भूमण्डलीकरण के कारण निश्चय ही बढ़ावा मिल रहा है। पूँजीवाद में उपभोक्ता वस्तुओं का अनियंत्रित उत्पादन होता है। उसके लिए बाजार का विस्तार होता है और इस क्रूरभोग वृत्ति का प्राथमिक शिकार स्त्रियाँ बन चुकी हैं। स्त्रियों को एक वस्तु उपभोग की तरह देखा जाता है और उसकी बाजार में बोली लगाई जाती है। कई स्त्रियाँ न चाहते हुए इस स्त्री प्रवृत्ति बाजार का शिकार बनती है तथा तकनीकी के उन्नति के कारण भारत में जिस गर्भ को पवित्र माना जाता है। उस गर्भ की भी बाजार में कीमत लगाई जाती है। कई स्त्रियों को पूँजी के लोभ में तथा गरीबी के कारण अपनी देह बेचकर बाजारवाद के आग में झोंक दिया जाता है।

आधुनिक दुनिया में उपभोगों नारीवाद सर्वव्यापी इस बाजारवाद ने मनुष्य का इतना आकर्षित किया है कि वह अपने अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन सोशियल मीडिया पर करते हैं। नव पूँजीवाद के कारण जो नये किस्म का यथार्थ आया है, उसने समाज को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। बाजारवाद ने मनुष्य को लगातार संवेदनहीन बनाया है। नये अर्थ तंत्र के अंतर्गत जिस तरह बाजारवाद ने देह व्यापार और अपराध जगत को बढ़ाया है, उसके उदाहरण के लिए प्रदीप सौरभ का 'मुन्नी मोबाइल' तथा चित्रा मुद्गल का 'आवां' उपन्यास उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में नई संवेदना के अन्तर्गत विविध रूपों को विश्लेषित किया है।

'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में पत्रकार आनन्द भारती एक प्रमुख पात्र है जो अपनी पैनी, निर्भीक और खोजी कलम से देश समाज में घटित घटनाओं को शब्दबद्ध करता है। उपन्यास के केंद्र में मुन्नी मोबाइल की कथा है, जो आनन्द भारती के यहाँ झाड़ू-पोंछा करती है और जिसे आनन्द भारती हस्ताक्षर करना सिखलाता है। मुन्नी मोबाइल का असली नाम बिंदू यादव है जो बिहार के बक्सर जिसे ले आकर दिल्ली के समीपवर्तीय नगर के गाँव में रहती है। पहले झोपड़ी में रहने वाली मुन्नी जमीन खरीदकर मकान बनाती है और अपने छह बच्चों के साथ मजदूर पति को पालती-पोसती है। लेकिन बाजारवाद के मोह में पड़कर वह गैरकानूनी धंधे शुरू करती है और इसी प्रतिस्पर्धा के कारण उसकी अन्त में हत्या कर दी जाती है।

लोभी वृत्ति को बढ़ावा देना -

'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में मुन्नी मोबाइल के लोभी वृत्त इस कदर बढ़ जाती है कि झोपड़ी में रहने वाली वह जमीन खरीदकर मकान बनाती है। स्वेटर बुनकर कुछ कमाई करती है, तो कभी चोरी छिपे और नाजायज तरीके से गर्भपात करने वाली झोला-छाप महिला डॉक्टर के यहाँ हाथ बटाती है, उसके लिए केस लाती है और बदले में कमीशन लेती है। इस प्रकार वह गैर कानूनी तरीके से पैसे कमाती था।

आर्थिक समृद्धि की लालसा -

मुन्नी आनन्द भारती से दिवाली गिफ्ट के तौर पर मोबाइल माँगती है और यही से मुन्नी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हो जाता है। मोबाइल उसके जीवन में क्रांति लाता है। वह मोबाइल के सहारे घरेलू बाइयों का अघोषित ब्यूरो चलाने लगती है। लोगों के नम्बर उसके दिमाग में सेव होते थे। वह बसों की मालकिन बन जाती है और चौधराइन की संज्ञा पाती है।

अहं की भावना -

अहं की प्रवृत्ति मनुष्य की सहज स्वाभाविक जन्मजात प्रवृत्ति होती है। किसी में अधिक, किसी में कम, परन्तु हर किसी में होती अवश्य है। मोबाइल के कारण मुन्नी का धंधा और तेजी से बढ़ने लगा। जिसके कारण बाजार में उसकी हैसियत और स्तर और ऊँचा हो गया। अब मुन्नी बाजारू युग में उपयोगितावाद को समझ गयी थी और उसे खुद अंगूठा छाप होते हुए भी पढ़े-लिखे लोगों से भी ज्यादा पैसा कमाने की

घमण्ड बना हुआ था जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस प्रसंग में दृष्टिगत होता है। वह आनन्द भारती से कहती है- 'आपने पढ़कर क्या कर लिया। आप तो वहाँ पढ़े जहाँ नेहरू जी पढ़े थे। न अपना घर चलाया न बच्चे पाले। न अपनी लुगाई रख पाए, न अपनी माँ-बाप की इज्जत कर पाए। .... मैं निपढ़ हूँ। पढ़ी लिखी नहीं हूँ। आपकी सेवा में रहती हूँ। पूरा कुनवा पाल रही हूँ।'[1] यहाँ मुन्नी का स्वार्थ और अहंकार दिखाई देता है।

प्रेम में व्यवहारिकता -

बाजारवाद के कारण धंधे के दौरान मुन्नी के गाजियाबाद के गैंगस्टर पलटू से रिश्ते हो गये थे, जो उसका आशिक बना। उसकी और उसकी लड़कियों की वही रक्षा करता था। इससे प्रतीत होता है कि बाजारवाद के कारण प्रेम में व्यवहारिकता आ गयी है।

रिश्तों की टूटन -

इस उपन्यास में बाजारवाद रिश्तों में कड़ुवाहट की भावना लाता है यह भी देखने के लिए मिलता है। सामाजिक जातिवाद के कारण आनन्द भारती अपनी प्रेमिका मानसी से विवाह नहींकर पाते। शिवानी से शादी करने के बाद भी वे अपना प्यार उसे नहीं दे पाते इस वजह से उन दिनों में अनबन होती रहती है जिसका अन्त तलाक से होता है।

क्रोध की अतिशयता -

बाजारवाद मनुष्य को इतना प्रभावित करता है कि वे अपनों को ही मारने में पीछे नहीं हटते। कॉल गर्ल वर्ल्ड की क्वीन रीतिका ठाकुर को उसका पति विजय गुप्ता धंधा छोड़कर गृहस्थी बसाने की बात करती है और अपना नोएडा का फ्लैट उसके नाम पर करता है। तब रीतिका ठाकुर अपने दूसरे चाहने वालों से कहकर उसकी हत्या कर लाश ठिकाने लगाती है।

अश्लीलता का विद्रूप रूप -

बाजारवाद ने काम-वासना को ज्यादा आकर्षित किया है। आनन्द भारती लंदन में अपने मित्र राजेश जोशी के साथ पब्स में जाते हैं तब वे एक जोड़े को नजर भरकर देखते हैं। 'लड़का लड़की नशे में चूर-चूर थे। लड़के ने लड़की की टी शर्ट के बटन खोल रखे थे, वह लड़की की छाती में बियर पीते-पीते हाथ घुमा देता था। लड़की ने भी लड़के के जीन्स के अन्दर हाथ डाल रखा था। '[2] इस प्रकार से इस उपन्यास में अश्लीलता का व्यापक चित्रण हुआ है।

प्रतियोगिता की अंधी दौड़ -

मुन्नी बाजारवाद की सीढ़ियाँ बिना किसी रुकावट से चढ़ने लगी थी। बाजार के हर तरह के दाँव-पेच में वह माहिर होने लगती है। स्थानीय ठेकेदारों, पुलिस थानों से लढ़ती-झगड़ती है, बसों की मालकिन और चौधराइन की संज्ञा पाती है। मुन्नी मोबाइल का कॉल गर्ल रैकेट का धंधा अच्छा चल रहा था। कॉल गर्ल वर्ल्ड के एक-एक गैंग के बहुत सारे कस्टमर मुन्नी के कस्टमर हो गये थे। मुन्नी मोबाइल की धंधे में होती तरक्की को देखकर बाकी गैंगस्टरों ने सुपारी देकर उसकी हत्या की गई। मुन्नी मोबाइल का अन्त होने के बाद भी इस उपभोग नारीवाद का अन्त नहीं हुआ। बाजारवाद के इस धंधे के मुनाफे की तेज तर्रार बेटी रेखा इतनी प्रभावित हो गई कि मुन्नी के बाद उसी के आशिक पलटू के साथ वह सम्बन्ध रखती है। वह रेखा चितकबरी बनकर अपनी कम्प्यूटर कुशलता से सेक्स रैकेट का विस्तार करने में जुटी रहती है।

पूरे विश्व में बाजारवाद और उपभोक्तावाद का जो माया जाल रचा उसकी गिरफ्त में विकासशील देशों का सामान्य जन मानस विशेषकर मध्यवर्ग इतनी बुरी तरह पिस रहा है कि यह एक चिंता का विषय बन गया है। एक प्रकार से यह बाजारवाद और उपभोक्तावाद का प्रतिरोधी स्वर है, जो स्थितियों का चित्रण कर उनके प्रति नकारात्मक रुख अख्तियार करते हुए उपन्यासों के पात्रों की इस रूप में प्रस्तुति की गई है कि उस सबके प्रति वितृष्णा का भाव जगे। हिन्दी में चर्चित उपन्यास 'आवां' में बाजारवाद की स्थितियों को विश्लेषित किया है। जिसमें सामान्य मनुष्य बाजार की शक्तियों का दास बनकर रह गया है।

'आवां' उपन्यास में महानगरीय जीवन में निम्न मध्य वर्गीय महिलाओं का आर्थिक दुर्दशा और यौन शोषण का चित्रण किया है। अंकिता पांडे 'कामगार आघाड़ी' मजदूर नेता देवी शंकर पांडे की बेटी है। श्रमिक आवश्यकता का जनक है। बाजार में वस्तु से ज्यादा ब्रांड का महत्व हो गया है। 'आवां' उपन्यास में गौतमी नमिता को समझाती है, कि 'ग्राहक क्या खरीदना चाहते हैं, बल्कि उनका उद्‌देश्य यह है कि वे क्या बेचना चाह रहे हैं। उसके माध्यम से वे अपने आभूषणों को इस प्रकार प्रस्तुत करेंगे कि ग्राहक स्वयं उन्हें पाने के लिए ललक जाए।'[3]

कामुकता की भावना -

स्त्री को समाज उपभोग की वस्तु समझता है। अपितु स्त्री अपने अधिकारों को समझने लगती है, परन्तु बाजार उसे आर्थिक समृध्दि का भ्रम देकर 'शरीर' के रूप में ही प्रस्तुत कर रहा है। 'आवां' उपन्यास में सिद्धार्थ नमिता को कहता है- 'देखो, पोर्टफोलियो मैं तुम्हारा करवा दूँगा। फीस की शक्ल भी

बदल जाएगी। अन्यथा न लेना। मैं बेहद स्पष्टवादी, ईमानदार, पेशेवर रवैये का व्यक्ति हूँ। तुम्हें लक्ष्य तक पहुंचाने में कोई कोर कसर नहीं रखूँगा। लेकिन प्रत्येक अनुबन्ध में साठ प्रतिशत मेरा चालीस प्रतिशत तुम्हारा। पोर्टफोलियो बनाने के एवज में तुम्हें मेरे साथ दैहिक सम्बन्ध रखने होंगे। हिसाब बराबर।'[4] बाजारवाद के कारण काम-वासना इस हद तक बढ़ गयी है कि इंसान हर काम के साथ अपना फायदा ही देखता है।

मोहभंग की स्थिति -

पहले लोगों को मार-पीट कर गुलाम बनाया जाता था, लेकिन समकालीन दौर में पैसे और भोग का लालच देकर गुलाम बनाया जा रहा है। बाजारीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण में स्त्री की इसी अंधी दौड़ को दर्शाने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास आवां में नमिता पाण्डेय विश्व पूंजी बाजार की इस चकाचौंध में बिकने के लिए तैयार हैं। इसके लिए वह नया स्वरूप धारण करने के लिए भी तैयार हैं तथा ग्राहक को उसका यही रूप पसन्द है। सूरत का हीरे का व्यापारी संजय कनोई उसे उसकी कीमत देता है। पूंजी के नरक से उबरने के बाद ही नमिता को इस बात का एहसास होता है कि उसे इस्तेमाल किया जा रहा है। संजय कनोई कहता है - 'जानती हो बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया? उस मामूली औरत अंजना वासवानी की औकात है कि तुम्हारे ऊपर पैसा पानी की तरह बहा सके? उसका जिम्मा सिर्फ इतना भर - था कि वह मेरे पिता बनने में मदद करे और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए।'[5]

आक्रोश की भावना -

आजकल लोगों में क्रोध की भावना काफी बढ़ गई है। वह बहुत ही जल्दी हिंसक आक्रोश में बदल जाता है। किसी बात पर गुस्सा आया नहींकि तुरन्त निकल आता है। संजय कनोई पचासों औरतों से शारीरिक सम्बन्ध बनाना सहज मानता है, पर नमिता से पवित्र कोख और खून की माँग करता है। यह है - पूँजी का एकाधिकार, जिसके अनुसार वह जो कहे समाज उसे वैसा ही माने। पूँजी की निर्ममता ने नमिता को चुनकर यह साबित कर दिया कि बंबई में ट्रेड यूनियन की बेटी को खरीदा जा सकता है तो सामान्य लड़की का बाजारवाद के दौड़ में क्या औकात है । इस बाजार में पैसे व संपत्ति के बलबूते पर किसी को भी खरीदा जा सकता है, बस खरीदने वाले पर निर्भर करता है कि वह क्या चाहता है। नमिता के विचलित होने पर पूँजी के एकाधिकार के रूप में संजय कनोई चेतावनी देता हुआ कहता है कि 'देखो मेरे बच्चे के संग तुमने आवेश में आकर कोई छेड़छाड़ की ...... तंदूर कांड हो जाएगा। जान से जाओगी तुम नैना साहसी की तरह। एकदम सुशील वर्मा की आत्मा प्रवेश कर जाएगी मुझमें। '[6] और जब नमिता का गर्भपात होता है तब उसके साथ हैवानों की तरह का व्यवहार करता भी है।

'आवां' उपन्यास की नमिता का चरित्र विचारणीय है जो भले ही बाजार के नियमों का शिकार हुई है परन्तु फिर भी परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ने व अपना स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित करने में सफल भी रही है।

हिन्दी साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों में बाजारवाद का न केवल चित्रण किया है, अपितु उसके प्रति अपना प्रतिरोधी स्वर कथा संवेदन के स्तर पर उठाया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास में मुख्यतः भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में हमारे परिवेश में व्याप्त बाजारवाद और उपभोक्तावाद तो हैं ही, इस विश्व ग्राम संस्कृति ने हमारे यहाँ जो अपसंस्कृति फैलाई है उस पर उपन्यासकारों ने हर माध्यम से अपनी लेखनी चलाई है उसका भरपूर विरोध भी अपने-अपने ढंग से किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समाज को इस बढ़ते हुए क्रूर बाजारवाद और उसका मानवीय जीवन पर होने वाले प्रभाव के प्रति जागरूक करने के लिए तथा इस उत्तर आधुनिक संकल्पना के अति विस्तार साहित्य के परिप्रेक्ष्य करना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृष्ठ - 76
2- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबालि, पृष्ठ - 91
3- प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, पृष्ठ - 91
4- चित्रा मुद्गल, आवां, पृष्ठ - 221
5- चित्रा मुद्गल, आवां पृष्ठ - 293
6- चित्रा मुद्गल, आवां पृष्ठ - 539
7- चित्रा मुद्गल, आवां, पृष्ठ - 526
8- डॉ. ऊषा यादव - हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना
9- चित्रा मुद्गल - आवां
10- प्रदीप सौरभ - मुन्नी मोबाइल
11- पुष्पपाल सिंह - भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास
12- रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
13- संपादक - अभय कुमार दुबे - भारत का भूमंडलीकरण
14- संपादन - रामशरण जोशी - मीडिया और बाजारवाद

◈◈

ISSN : 2349-9273

श्रीकृष्ण चरितामृतम् में निरूपित धर्म का स्वरूप व समीक्षा

- डॉ. मनप्रीत कौर
प्रधानाचार्या
चित्रा इण्टर कालेज,
आवास विकास हंसपुरम्,
नौबस्ता-कानपुर-208011

ई-मेल-
pkaur381@gmail.com

संस्कृत भाषा का विश्व की सर्वश्रेष्ठ भाषा के रूप में अतिशय आदर है। इसकी विशेषताओं को देखकर भारतीय ही नहीं पाश्चात्य विद्वान भी आश्चर्य चकित हैं। संस्कृत वाङ्मय वैदिक व लौकिक भेदों से दो भागों में विभक्त हैं। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि आते हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अथर्ववेद ये चार उपवेद हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष छः वेदांग हैं, लेकिन साहित्य में इसे 'राजभाषा' व 'राष्ट्रभाषा' कहा जाता है। आचार्य दण्डी इस भाषा के विषय में अपने 'काव्यादर्श' में लिखते हैं-

'संस्कृत नाम देवी वागन्यारुपाता महर्षिभिः।
भाषासु मधुरा मुग्ध दिव्या गीर्वाणं भारती।।'

श्रीकृष्ण चरितामृतम् का परिचय एवं महत्व -

श्रीकृष्ण चरितामृतम् में सर्गों की एक विशिष्ट कृति है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का सहज एवं सरल भाषा में वर्णन हुआ है। कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला है। कवि ने महाकाव्य का नाम वर्ण्य विषय के आधार पर नायक के नाम से किया है।

इस महाकाव्य में श्रृंगार रस व भक्ति रस की महानता है। सर्गों में से प्रायः एक ही छन्द में से रचना हुई है। श्रृंगार रस के साथ-साथ करुण, रौद्र, वीर और शान्त रसों का प्रयोग हुआ है। मनुष्य को जन्म ग्रहण करने पर जीवन में तीन ऋणों को चुकाना पड़ता है-

(1) पितृ ऋण, (2) ऋषि ऋण एवं (3) देव ऋण।

धर्म की प्रकृति, प्रयोजन व धारणा -

धर्म की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि - 'यतोऽभ्युदनि श्रेयस सिद्धिः स धर्मः' अर्थात् जिन क्रिया-कलापों से कर्तव्यों के पालन से अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों सिद्ध होते हैं, वह धर्म है। अभ्युदय से तात्पर्य मोक्ष प्राप्ति अर्थात् आत्यान्तिक कल्याण है। महाभारत में धारण करने के कारण धर्म को परिभाषित किया गया है अर्थात् जो विश्व को धारण करता है अथवा विश्व जिसमें टिका हुआ है, वही धर्म है-

'धारणद्धर्म इत्यादुधर्मो धारयते प्राप्याहु'

धर्म ही पृथ्वी को धारण करते हैं, धर्म ही प्रजा को धारण करता है, धर्म में वह सभी गुण हैं जो प्राणियों का धारण-पोषण करता है। ऐसे सज्जन विद्वान जिनका हृदय राग-द्वेष से कभी कलुषित नहीं हुआ है, वे हृदय में वेद-पुराण आदि समस्त जिसको धर्म स्वीकार करते हैं, वे ही वास्तविक धर्म हैं। मनु का कथन है-

'विद्वभिः सेवितः सदिर्भार्नित्यमद्वेष रागिभिः।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मेस्तं निधीयत।।'
धर्मोऽस्य मूलं धनमश्च ज्ञात्वा।
पुण्यं च कामं फलस्मयं मोक्षः।।'

उपर्युक्त कथन के अनुसार मनुष्य को धर्म का आचरण करना चाहिए, जिससे उसे अन्य तीन पुरुषार्थ काम, अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति हो सके। धर्म के आचरण से उसे समयानुसार संसार के भोगों से वैराग्य हो जाता है। वैराग्य के अनन्तर उसे ज्ञान तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

'धर्म ते विरति विरति ते ज्ञाना। मोक्ष प्रदाता वेद बखाना।।'

- रामचरित मानस - गोस्वामी तुलसीदास

श्रीकृष्ण चरितामृतम् में निरूपित धर्म की समीक्षा -

श्रीकृष्ण चरितामृतम् महाकाव्य में धार्मिक विषयों पर सम्मित प्रकाश डाला गया है। यहाँ धर्म से सम्बन्धित कतिपय महत्वपूर्ण प्रसंगों को हम प्रस्तुत कर रहे हैं। दीक्षा के आश्रय से ही परमतत्व परमेश्वर का आश्रय प्राप्त किया जा सकता है। अतएव धर्म परम्परा में गुरू मुख से प्राप्त दीक्षा का विशेष महत्व है-

'परम्परा शास्त्रकुलाधिगामिनी,
छयाश्रित्य दीक्षां गुरुवक्त्रशोभिणीम्।
भाष्यन्ति केचित् परतत्वरूपिणं,
यं देवदेवं मनसोऽयगोचरम्।।'

भारतीय धर्म संहिता में भगवान श्री गणेश और सूर्य की उपासना का विशेष महत्व है, जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से प्रमाणित हो रहा है-

'विनायकं यं वपुषोज्ज्वलं सदा,
भजन्ति केचित् परतत्वलब्धये।
सौरेण मार्गेण जिगीषवोऽपरं,
उपासते दीप्तकरं दिवाकरम्।।'

अर्थात् कोई साधक परम तत्व की उपलब्धि के लिए उन सर्वेश्वर का उज्ज्वल विग्रह से सुशोभित 'श्री गणेश जी' के रूप में भजन करते हैं तथा सूर्य मण्डल का भेदन करके सौरमार्ग से परम धाम को जाने की इच्छा वाले अन्य उपासक उनकी प्रदीप्त किरण वाले दिवाकर (सूर्य) के रूप में उपासना करते हैं। यहाँ भगवती दुर्गा के सात्विक उपासना के साधन तन्त्र, मन्त्र, यन्त्र आदि का निरूपण हुआ है।

इसी क्रम में भगवान शिव और भगवान श्रीकृष्ण का वर्णन हुआ है जो कि धर्म साधन के महत्वपूर्ण अंग है। कवि धर्म के स्वरूप भगवान के विविध रूपों का वर्णन करता है।

कवि भगवान की निन्दा करने वालों को सावधान करता है और यह मानता है कि जो सत्कर्म करते हुए धर्माचरण करते हैं, वे महापुरुष ही हैं-

'मन्वन्तरे ते मन्वश्चतुर्दशः,
क्षिपन्ति कालं मनु पुत्र देवलैः।
कृत्वा च सत्कर्म परश्च मिच्छवश्चसन्ति,
धर्मश्च महत्तमा हि ते।।'

कवि धम मार्ग की सिद्धि के अनेक प्रकार बतलाता है। कवि पुण्यात्मा तथा धर्मात्मा पुरुषों की प्रशंसा करता है क्योंकि ऐसे पुरुष धर्म के रक्षक होते हैं।

कवि यह स्पष्ट करता है कि अधार्मिक पुरुष विविध प्रकार से पीड़ित होकर नरक को जाता है। धर्म की सिद्धि के लिए पूजन एवं दान का विशेष महत्व है।

निष्कर्ष -

अतः यह स्पष्ट होता है कि कवि ने उपरोक्त पद्यों में एक ही आत्म तत्व को प्रधानता दी है। आत्म तत्व सर्वोत्कृष्ट है। शरीर को आत्म नहींमानना चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण चरितामृतम् महाकाव्य में कवि ने धर्म के विविक्ष पक्षों को समुद्घाटित किया है। कवि को धर्म के निरूपण में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- मनुस्मृति - अध्याय 2, श्लोक- 1
2- वामनपुराण - अध्याय 14, श्लोक-19
3- रामचरित मानस - गोस्वामी तुलसीदास
4- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-9
5- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-20
6- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-19
7- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-27, 28
8- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-36 से 44
9- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 3-43
10- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 1-49, 50
11- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 4-1, 3
12- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 6-18
13- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 16-06
14- श्रीकृष्ण चरितामृतम् 58-7, 8

◈◈

ISSN : 2349-9273

The Matic Analysis of Short Stories of Khushwant Singh

- Dr. Chhaya Singh
Lecturer - Dept. of English,
T. D. P. G. College, Jaunpur-222001 (U.P.)

Email:
chhayasinghhtdc@yahoo.in

Stories have always been an inalienable part of every human culture. They helps us to make sense of our thoughts and actions ; individually and as community and to understand our significance in the world that we inhabit. Stories existed long before literature was thought of. They delighted the cave-man and fascinate the modern sophisticated gentleman. Modern conception of short story is slightly different from the traditional one. The short story as a piece of fiction dealing with a single incident, material or spiritual, that can be read at a sitting; it must sparkle or impress; it must have unity of effect or impression; it should move in an even line from its exposition so its close.

Khushwant Singh has an important place among the post Independence Indian English writers. His position as a short writer is both secure and abiding. Writing of Khushwant Singh, P.P. Mehta remarks that his `achievement in the field of novels is no doubt significant but his short stories are superbly chiseled artistic pieces.' Nearly twenty of his stories, which stand the test of scrunity, demonstrate the range and quality of his achievement in this literary form.

It is an indisputable fact that Khushwant Singh has excelled almost all other Indian English short story writers in artistry. All his stories have a rounded perfection. `The Portrait of a Lady', `The Fawn and `A Love Affair in London' with their rich suggestion can stand comparison with any story of the masters in this field.

Khushwant Singh, like R.K. Narayan, has adhered to the O' Henry-tradition of short story writing. Arthur Voss's comment on O'Henry stories is indeed a definition of the journalistic short story :

> *Ingeniously and carefully plotted often culminating in a surprise ending, it was written more to enterain than to be taken seriously. Wit and humour, vivacity and lightness of touch and an urbane manner and cultivated style were other principal characteristics.*

This is equally applicable to most of the stories of Khushwant Singh. Almost all the stories included in the first collection (The mark of Vishnu and Other Stories) were originally published in literary journals and magazines (Harper's, Saturday) Review e.t.c.) in England and America.

Khushwant Singh as a short writer pursues and follows the

art of short story as in its early twentieth century. He is considered as a realsit and humanist in one, and this picture of him is revealed in his short stories. They reveal his gentle irony and his faculty of being ironical on the part of his countrymen. Irony forms one of the basic characteristics in his style of story writing. Irony in its literal sense is considered as a device with dual or two meaning ; One the literal or actual meaning and the second which bring other meaning in the sentence or situation than the actual one, in other words Irony is the word that says one thing but means another.

The present paper aims at examining the themes of the short stories of Khushwant Singh's. In the story `Karna' i.e. fate the discomfiture (defeat) of the Anglicised Sir Mohan Lal is skillfully brought out. The irony of the situation is skillfully presented and also the uncivilized way in which the British treated the Indians in pre-independent India. The title Karma is symbolical. It means you will get the fruits of yours deeds. The author ridicules the slavish imitation of English manners, which has led to snobbery in a class of people in our country. The Mark of Vishnu is both comic as well as serious. It is a scathing critique of blind beliefs and superstitious habits.

An objective observer of the Indian social scene, Khushwant Singh appears to have taken a markedly irreverent view of his countrymen's life and their character. Hence, the recurrent theme in his stories is the corrupt and decadent social set up of contemporary India. There are still many other stories which satrise the mainfold foibles rooted in Indian society.

Besides these, several other negative asects of Indian society are subjected to sharp criticism in his stories.

The story, `The Mark of Vishnu', is one of the remarkable and highly appreciated stories among Indo-Anglican Stories. The title is weighted by the religious values, but the irony of the title is revealed through the story from which the autor mocks at the superstitious Indian. In this story, a Hindu devotee, Ganga Ram, has much belief in black cobra generally called Kala Nag. Ganga Ram, like many Hindus, considers Kala Nag to be a deity. Ganga Ram is a pious and devoted Brahmin, and as a mark of Hindu worship of Kala Nag (Shesh-Nag), he used to pour milk in a saucer for the Nag. He shows great faith in Brahma, Vishnu and Mahesh (or Shiva), the Creator, the Preserver and the Destroyer gods respectively. As his symbol of faith, he wears a `V' mark on his forehead with the sandalwood paste. One day a black-hooded, six feet long, rounded and fleshy cobra is seen on a rainy mroning. As soon as some school children see the snake, they surround him and hit him. It is, reduced to a `squishy-squashy pulp of black and white jelly, spattered with blood and mud.'

The children then lift the cobra on a Bamboo stick and later place it in a small tin box, and tie it with a rope. They take the box, the very next day, to present it to the science teacher. As soon as the lid of the tin is opened, the Nag comes out with bloodshot eyes, surveying the scene. He, by a hiss and forked tongue, makes a dart, he also wants to leave the place but his wounded belly does not allow him to move. But some how he manages to drag his body to the door as his back is broken but his hood remains undamaged. Ganga Ram waits on the door with a saucer in his hands and as soon as he sees the nag, he places the saucer in front of him. After placing the saucer he himself sits on his knees on the floor in orders to pray to the Nag to forgive the school children for their misbehaviour. The Nag, in fury, bites Ganaga Ram all over his body, the teacher wipes the blood droplets from his foreheads & sees a `V' mark, where Kala Nag had dug his gangs. This story has ironically been placed and structured. Irony is implied through the title itself. THe title is symbolic as `The Mark of Vishnu' means the divine function of preservation of life on Earth. But here the irony, the `Mark of Vishnu is implied through the title itself. The title is symbolic as `The Mark of Vishnu' means the divine function of preservation of life on Earth. But here the irony, the `Mark of Vishnu is implied as the `Mark of snake bite'. In hindu religion the devotees of Vishnu (the preserver), called the Vaishnavaites, normally bear three straight stripes of sandalwood

on their forehead. But Ganga Ram places a `V' mark on his forehead instead of three straight stripes, it shows that though the practice of bearing a three stripes of sandalwood is symbol of devotion of Vishnu, the preserver ; but here the `V' mark acts as a symbol of devotion to Kala Nag (snake), the destroyer, and the mark of his fangs is also of `V' shape. The story reaches no end ; the author leaves the end to be decided by the readers.

There is a tinge of irony in the title, `The Mark of Vishnu'. According to the Hindu belief, Lord Vishnu is the Preserver of life on earth. The devout followers of this creed smear bites Ganga Ram just below the `V' shaped smear on the forehead, the symbol of the Preserver. `On his forehead were title drops of blood. These, the teacher wiped with his handlkerchief. Ufangs.' Shahane comments that `the ironic meaning emerging form the two levels of meaning of the title is the principal motif of the story.' The larger irony, according to Khushwant Singh, is that religion is no more a preserving institution ; it either divides the people as shown in `The Riot' or makes them feeble-minded and superstitious as in `The Mark of Vishnu' and ultimately brings about havoc and misery.

Apartfrom irony, we have the mischievous humour of the school boys. Thery indulge in their characteristic pranks and tease the superstitious old servant Ganag Ram. To cite an example, Ganga Ram warns the boys that if they kill the Kala Nag, all the hundred eggs laid by it will become cobras and the house will be full of them. After sometime he says that it is a hooded phannyar (the male snake). Calling him a liar, the boys say :

> *The phannyar is the male, so it couldn't have laid the hundred eggs. You must have laid the eggs yourself. The party burst into peals of laughter `Must be GangaRam's eggs. We'll soon have a hundred Ganga Rams.*

The unity of impression in `The Mark of Vishnu' is struck in the symbolic reference to the hood of the Kala Nag. The hood of the cobra appears to be a symbol of strength and safety just as the `V' mark on the forehead of GangaRam is a symbol of his faith in the Omnipotent Preserver. But in reality, the natural hood proves to be a dangerous one and the artificial `V' mark a superstitious habit and a symbol of illogical reasoning. `More dangerous habit and a symbol of illogical reasoning. `More dangerous the animal, the more devoted Ganga Ram was to its existence. Hence the regard for snakes, above all the cobra, who was the Kala Nag.' In the end, he pays a heavy price for his belief. With deliberate irony, the author makes the cobra `squishy-squashy' leaving its hood undamaged. This he does in order to prove that the big hood, the symbol of the king cobra, subverts the `V' mark, the harmless `hood' of Ganga Ram. The auhtor's intention of communicating his `impression' of `idea' of the illusion of Indian religiously and other worldlines is accomplished through the hood symbolism.

The other story by Mr. Singh, is `The Voice of God and Other Stories' which is representative of both verbal and situtional irony, which makes the title, meaning and structure of the story ironical in a whole. It is a tale of people of two villages in Punjab, Bhamba Kalan and Bhamba Khurd, its both cool places where nothing unpleasant happens but the peacefu life of the people is disturbed by the election flue and gale of politics. Mr. Forsythe, an English deputy commissioner arrives at Bhamba apparently on an official visit but his actual visit is to campaign for Ganda Singh, who previously helped British Government by subjugating the present agitation and the Congress movement, in his bid for Punjab Assembly election. Ganda Singh is a cheif of dacoits and thugs, as is said in the story, `his men robbed with impunity and shared the proceeds with the police.' Mr. Forsythe praises Ganda Singh and appreciates his works and pretends him as a pride of the district. Though the people hate Ganda Singh for his inhuman activities and injustice to the people. After the speech Ganda Singh distributes sweet to ZAildars, Lambardars and Village Officers in reference to their promise to vote for him in the election. His rival in the election is Kartar Singh, who is a nationalist nominee and an advocate by

profession. Seth Sukhtankar, a millionaire, who is involved in cloth business and owes cloth mills, supports him. He calls the people for a meeting to convince them, `if 400 million Indians united and spat in a tank, there would be enough spit to drown the entire English population in India.' This comment by Mr. Singh reveals his deep irony and humour when he says, `But somehow the facilities for such a mass suicide had never been provided.'

One more contestant Baba Ram Singh is found who ia a devoted worker among poor peasants who call himself a kisan (an ordinary farmer.) Polling takes place on th specific date and Sardar Ganada Singh is declared elected over his nearest rival Sardar Kartar Singh by a margin of 2,220 votes. Baba Ram Singh not only loses election but also forfeits his deposit. On this occasion the comment by Mr. Singh shows deep irony and humour, when he says, `The people has spoken.

The voice of the people is the Voice of the God.' Here the disbelief and hypocrisy of the people is shown by the ironical comment. During the time of lection there values are subsided by the pressure of the contestants and once the person is elected he behaves as a Mini-God and forgets his promises and views made to the people.

`The Voice of God', the title story in the second collection, is a satire on the corrupt practices indulged in at the time of electioneering in India and the inevitable outcome - the most undeserving and notorious among the candidates winning with a thumping majority. `The pretentiousness, hypocrisy and the deception tha underlie the actual working of electioneering and vore-catching devices are thus effectively brought out by Khushwant Singh with tell in.

When the story opens one finds the otherwise peaceful atmosphere at Bhamba and Bhamba Khurd Villages in the Punjab disturbed by gusty political winds. Sardar Sahib Ganda Singh, a big landowner who was behind the Government in smashing up the peasant and Congress Movements and also a patron of thugs, begins to canvas vote as a candidate approved by the British Government and also he claims himself to be the candidate sponsered by the Sikh community. Sardar Kartar Singh, a city lawyer backed by a wealthy and corrupt tycoon and a nominee of the Nationalists is another contestant. The third candidate, Baba Ram Singh, is a kisan leader and a selfless worker who has spent a considerable part of his life in prison fighting for just and right causes. The villagers though they find justice on the side of the kisan leader during the election campaign, end up voting for Ganda Singh under the influence of hot liquor and the Zqaildar and the Lambardars. Ganda Singh wins the elections with an overwhelming majority and the saintly Baba Ram Singh even forfeits his deposit. `The people had spoken. The voice of the people is the voice of God' as decided by the Brtish administration.

`The Black Jasmine' is, no doubt, a bawdy story, which betrays Khushwant Singh's predilection for the risque. Yet, it offers one of the best illustrations of comic irony reinforced by irony of situation. When the protagonist of this stroy Bannerjee was in Sonbonne pursuing higher studies, a curvaceous African girl Martha Stack became friendly with him. Sice she was quite a smashher, the other male students were almost envious of Bannerjee. One day ina highly romantic mood she offered herself but ironicaly Bannerjee, who had wasted many hours on daydreaming the way he would seduce her, falled to seduce her. Nearly thirty years after this indicent Martha who is `one enormous mass of hulky flesh' comes to India as a tourist and meets an old worn-out Bannerjee. Ironically Bannerjee now decides to make up for the earlier failure. The missed passion warms up his limbs under the influence of liquor and overwhelms his senses.

Khushwant Singh's remarkable technical skill is evident in `Black Jasmine' which deals with a single passion of unromantic sexual exploration. The whole story sentres on the single character Martha. The one and only action that Bannerjee undertakes is to seduce Martha and this he accoplishes at an unexpected moment. There is no didression or diversion. As a result, there is no

flagging of interest.

This story much criticized on grounds of its pornographic overtones has an excellent symmetry of design. As the comparative brevity of the short story does not permit the multiplicity of settings and the span of years, the writer uses the flasback technique with great success. In fact, it is like a hanging bride with poles of reality at both the ends and in between them hangs the bridge of thought. The emphasis on the thoughts process leads to emotions recollected in tranqulaity in an altogether different milieu. More precisely the sexual `exploration' that began in Sorbonne finds its consummation in Delhi. Though the story begins at Delhi, the reader is taken to Sorbonne where the past incident occured and then he is brought back to Delhi in an unobtrusive way. It follows the traditional format of a beginning, a middle and an end.

The story entitled `Paradise' begins with the cause revealed by the heroine Margaret Bloom why she felt bound to go to India. It was, perhaps, the same reason that compelles the people from every corner of the world, to come to India, particularly Europeans, to find pease. Margaret Bloom gives the real account of the relationship between her parents, `My father was a big-built in an of polish des ent. He spoke English with a guttural, American accent. My mother was of genteel ancestry. She was small and extremely attractive, with golden brown hair, dark blue eyes and boobs to die for. Why she sgreed to marry my father, who was a coarse man, I was never able to understand. He was the chief sales manager of a large, jewish-owned department store; she the personal secretary of a member of the Bard of Directors who wanted her to be his mistress. The man hounded her, so she tole him where to get off and became the secretary of another member of the Board. She also agreed to marry my father who had been making passes at her for a long time.'

European women, come to India impelled by different purposes. Some of them are drawn by the prodigious variety of the Indian life, the others come for a better knowledge of India's Geography, art and culture. Still others come to India in search of Peace of Mind and Soul. They are attracted by the Indian saints who, they believe, have the power to unravel to them the mystery of life and to offer them the light of truth.

`Friend',

`He began, `in this series of lectures have heard me talk on various subjects. This evening I will talk about the way Hindus look at life. The Westerner views life very differently. Have you are motivated to achieve material success, which is seen as the ultimate aim of existence. You are friendly competitive, you work very hard so that creature comforts last you till the end of your lives. Your lives are filled with tension and many of you consult psychiatrists to help you cope with stress. You try to drown your worries in high living ..... drinking, taking drugs and indulging in promiscuous sex. You think high living and having fun is the be all and end all of existence. But soon you begin to feel empty inside and begin to question yourself, `Is this all that life on earth was meant to be?'

Another short story, `Karma', reveals the psychology of an educated Indian in British India and his character is presented in an ironical way, this character helps the author to present his irony for such Indians, their indiffernce and varied native feelings. The mirror is Indian made and `the red oxide of its back had come off at several places and long lines of translucent glass cut across its surface'. This comment is an ironical example of Indians with British likings in British Raj. The mirror is a symbol of everything Indian and native, inefficient and indifferent, dirty and intolerable to Mohan Lal. In this incidence Mr. Singh, fully and in fine manner, shows his irony for the Indians in British Government. Mohan Lal wears the suit tailored at Saville Row, the symbols of British aristocracy and upper class Culture; and Balliol tie, a symbol of exclusive Oxford upbringing and educated human being. He is married to Luchmi-who is ironically being called Lady Mohan Lal by

the author but she has no resemblance to her husband. Sir Mohal Lal is depicted as an educated Indian in contrast to his illiterate wife. In an incidence the harsh irony of the author is depicted when Sir Mohan Lal is suit and tie is presented sitting in a first class waiting room, quietly sipping his `Ek Chota' (a small Peg). While his wife, a fat and an illiterate woman is found eating chapaform.

Sir Mohal Lal travels in first class compartment along with all educated and well placed people, whereas his illiterate wife is adjusted in ladies general class compartment. The later hals of the incidence is full of ironical behaviour of the people with both Mrs. and Mr. Mohan Lal. Later the train arrives and both are adjusted in their respective coaches, Sir Mohan Lal enterers in first class compartment and Lady Mohal Lal in a general ladies comparement. As soon as he enters in the compartment he does not even find a single person in it, but, after some times, two English soldiers arrive, one solider say to another to let him down. And they start shouting at Mohan Lal, `Ek Dum Jao' (Go at Once). They lift his suitcase and throw him out of the compaerment. The irony of his fate is presented here, as he lay on the platform after humiliation whereas his wife is found comfortale in inter-class compartment. As, `the train speed post the lighted part of the platform, Lady Lal spat and sent a jet of red dribble flying across like a dirt'! This action of lady Lal is presented as a victory of a simple Indian woman over a learned, arrogant and proudly Indian man, who pretendes to be foreigner,

That Khushwant Singh has consciously cultivated the art of story writing is evident from the range and variety of his stories and the impact of the masters of this genre is also discernible in them. `The Portrait of a Lady' reminds us of Gogol. In `A Punjab Pastorale; and `The Voice of God' Khusnwant Singh freely draws on the custom and idiom peculiar to the Land of the Five Rivers (the Punjab) and hence they are rich in local colour. In fact, he reaches the heights of Bret Harte in this respect. He comes nearer to Dickens and Mark Twain in the Facile use of the device of exaggeration to create comic appeal. `A love Affair in London' is a Tolstoyesque story.

References

1. Dhawan, R. K. Three Contemporary Novelist, New Delhi : Classical Publishing Company, 1985, pg. 36.
2. Ibid, Pg. 36.
3. Singh, Rohini, Man Called Khshwant Singh New Delhi : U B S Publishers Distributors (P) Limited, 2002, Pg. 55.
4. Shahane, Vasant A. Khushwant Singh, New York : Twayne Publisher Inc. 1969, Pg. 18.
5. Singh, Khushwant, Women and Men in my life, New Delhi : U B S Publishers & Distributors Ltd., 1995. Pg. 170.
6. Singh, Khushwant, Need for a New Religion in India and other essays, New Delhi U B S Publishers & Distributors Ltd. 1999, Pg. 93.
7. Fizekiel, Nissim, Imprint, 1 : 6, Bombay : September, 1961, Pg. 159.
8. Singh, Khushwant, Sex, Scotch and Scholarship, New Delhi : Harper Collins, 2003, Pg. 32.
9. Singh, Khushwant, Not a Nice Man to Know. New Delhi : Penguin, 1993, Pg. 3.
10. Singh Khushwant, Train to Pakistan, New Delhi : Orient Longman Private Ltd., Pg. 1.
11. Singh, Khushwant, The Mark of Vishnu and Other Stories, Bombay, Jaico, 1957, Pg. 36.
12. Singh, Khushwant, The Voice of God and Other Stones, Bombay : Jaico, 1957, Pg. 9.
13. Ibid, Pg. 11.
14. Ibid, Pg. 17.

ISSN : 2349-9273

औद्योगिक विकास के लिए फतेहपुर जनपद में उपलब्ध अन्तर संरचना

- डॉ. मधू बाजपेयी
प्राचार्या
के. के. गर्ल्स डिग्री कालेज,
किदवई नगर, कानपुर-208011
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
bajpaimadhu965@gmail.com

भूमिका-

किसी भी क्षेत्र के औद्योगिक विकास में संरचना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आधारभूत अथवा आन्तरिक संरचना का अविकसित होना ही पिछड़े क्षेत्रों की प्रगति में अवरोध उत्पन्न करता है। औद्योगिक विकास विशेषज्ञों का यह विचार है कि 'किसी क्षेत्र के विकास का आधार वहाँ की आधारभूत संरचना ही है।' यदि किसी क्षेत्र की आधारभूत संरचना अविकसित तथा अकुशल होगी तो उद्योगों के विकास में अनेक अवरोधक तत्व क्रियाशील हो जायेंगे। औद्योगिक विकास तथा आधारभूत संरचना का प्रत्यक्ष सह-सम्बन्ध किसी भी देश के औद्योगिक विकास के इतिहास से स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि समृद्ध क्षेत्रों की प्रगति का आधार वहाँ की अत्यधिक विकसित आधारभूत संरचना है और अविकसित क्षेत्रों के पिछड़े होने का प्रमुख कारण वहाँ की इस संरचना का अविकसित तथा पिछड़ा होना है। अतः यहाँ पर यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि आधुनिक युग में आर्थिक विकास अथवा औद्योगिक विकास आधारभूत संरचना का पर्यायवाची बन चुका है।

इस प्रकार आधारभूत संरचना को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं-

(1) **आधारभूत भौतिक संरचना** - इसके अन्तर्गत मुख्यतः भूमि, यातायात, संचार व्यवस्था एवं विद्युत के स्रोत आदि को सम्मिलित किया जाता है।

(2) **सामाजिक संरचना** - इसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, अन्य सामाजिक संस्थाओं एवं क्षेत्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

आधारभूत संरचना के अन्तर्गत हम फतेहपुर जनपद के औद्योगिक विकास की दृष्टि से आधारभूत संरचना के उन प्रमुख घटकों को सम्मिलित कर रहे हैं जिनकी विद्यमानता उद्योगों की स्थापना एवं विकास के लिए मूल रूप से आवश्यक है तथा जिनके अभाव में किसी भी क्षेत्र के औद्योगिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। ये महत्वपूर्ण घटक निम्न प्रकार हैं-

(1) भूमि,
(2) शक्ति एवं विद्युत,
(3) जल संसाधन,
(4) यातायात के साधन,
(5) संचार व्यवस्था,
(6) वित्तीय स्रोत,
(7) उद्यमिता,
(8) श्रम शक्ति के स्रोत,
(9) मशीन एवं यंत्रों की उपलब्धता,
(10) वाणिज्यिक संस्थायें जैसे- बैकिंग, बीमा, कम्पनियों आदि की विद्यमानता।

(11) आन्तरिक बाजार व्यवस्था एवं बाह्य बाजारों से सम्पर्क।

फतेहपुर जनपद के औद्योगिक विकास की दृष्टि से हम इसका गहन अध्ययन एवं विश्लेषण करेंगे कि इस क्षेत्र में औद्योगीकरण को प्रेरित करने वाले उपरोक्त संरचनात्मक घटक कितनी मात्रा में उपलब्ध हैं तथा वे औद्योगिक विकास की गति को प्रेरित करने की दृष्टि से कहाँ तक पर्याप्त हैं।

(1) **भूमि -** औद्योगिक विकास के लिए सर्वप्रथम भूमि की आवश्यकता होती है। फतेहपुर जनपद में औद्योगिक इकाइयों का बृहत जाल फैलाने के लिए सरकार ने उपयुक्त भू-भागों का आकलन करने के पश्चात् जिन भू-भागों को अनुकूल पाया वहाँ औद्योगिक अस्थानों तथा मिनी औद्योगिक अस्थानों की स्थापना हेतु विगत वर्षो में सतत् प्रयास किये हैं। औद्योगिक विकास की दृष्टि से उपयुक्त पाये गये भू-भागों जिन पर औद्योगिक इकाइयों की स्थापना का कार्य चल रहा है, उनका विवरण इस प्रकार है-

औद्योगिक अस्थानों के लिए उपलब्ध भूमि का विवरण -

(1) जनपद फतेहपुर में बिन्दकी रोड (चौडगरा) में एक राजकीय औद्योगिक अस्थान कार्यरत है, जिसमें 10 कार्यशालायें तथा 50 भूखण्ड हैं। जिसका आवंटन कार्य पूरा हो चुका है। इस औद्योगिक अस्थान में कुल भूमि 6.92 हेक्टेयर है। इसमें 17 औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित हो चुकी हैं तथा 12 इकाइयाँ अभी प्रस्तावित हैं।

(2) औद्योगिक विकास के कार्यक्रम हेतु उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक निगम ने जनपद के मलवाँ विकास खण्ड के अन्तर्गत ग्राम- बरौरा में 545.52 एकड़ का औद्योगिक क्षेत्र की स्थापना की है। इसमें अब तक कुल 41 भूखण्ड विकसित किये गये हैं जो कि 1800 वर्ग मीटर से 5400 वर्ग मीटर तक के हैं।

मिनी औद्योगिक अस्थानों के लिए उपलब्ध भूमि का विवरण-

जनपद के सभी विकास खण्डों में मिनी औद्योगिक अस्थानों की स्थापना हेतु पुर्नग्रहण एवं अधिग्रहण कार्य प्रगति पर है, ताकि ग्रामीण अंचलों में भी उद्योगों की स्थापना का कार्य पूरा हो सके। वर्तमान में मिनी औद्योगिक अस्थानों की विकास खण्डवार स्थिति निम्नलिखित है- **(टेबिल देखें)**

(2) **शक्ति एवं विद्युत के स्रोत -** किसी भी उद्योग को चलाने के लिए विद्युत की आवश्यकता होती है। जनपद फतेहपुर में बिजली का उत्पादन नहीं होता है। जनपद में विद्युत कानपुर स्थित थर्मल पावर स्टेशन पनकी से सुलभ होती है जो कि विभिन्न क्षेत्रों में निर्मित पावर सब-स्टेशन द्वारा वितरित की जाती है। जनपद में 33 के वी ए लाइन 339.637 किमी, 11 के वी ए लाइन 2347.96 किमी. है। वर्तमान समय में जनपद में कुल 9 पावर स्टेशन हैं, जिनमें मुख्य 3 पावर स्टेशन इस प्रकार हैं-

1- राधा नगर 220/132/11 के वी ए, विद्युत उपस्थान।

2- मलवाँ 132/33/11 के पी ए विद्युत उपस्थान।

3- जहनाबाद 132/33/11 के वी ए विद्युत उपस्थान।

जनपद के उपरोक्त तीन उपस्थानों से जनपद में स्थित

मिनी औद्योगिक अस्थानों की स्थिति

मिनी औद्योगिक अस्थान का नाम	विकसित भूखण्डों की संख्या	आवंटित भूमि की संख्या	स्थापित इकाइयाँ	कार्यरत इकाइयाँ	क्षेत्रफल एकड़ में
हसवाँ	41	04	-	-	3.00
फतेहपुर सदर	46	23	02	02	3.00
मलवाँ	52	12	-	-	3.00
ऐराया	48	09	-	-	3.02
खजुहा	36	-	-	-	6.18
तेलियानी	41	12	-	-	3.00
धाता	36	01	-	-	3.00
कुल योग	**300**	**61**	**02**	**02**	**24.53**

स्रोत- जिला उद्योग केन्द्र फतेहपुर

विभिन्न स्थानों पर 33/1 के वी ए उपस्थानों को विद्युत आपूर्ति की जाती है। जनपद फतेहपुर में 18 उपस्थान हैं, जिनमें मुराइन टोला (फतेहपुर), अमौली, डिबरुआ (राधा नगर), जहानाबाद, खागा, थरियाँव, हथिगाँव, किशुनपुर, खखरेरू, बिन्दकी, बिन्दकी रोड, जफरगंज, बकेवर, गाजीपुर, बहुआ, असोथर, हुसैनगंज एवं मलवाँ प्रमुख हैं।

उक्त स्थानों से 11 के वी ए एवं एल टी लाइनों तक 11.4 के वी विद्युत उपस्थानों द्वारा जनपद के कृषकों, उद्यमियों तथा अन्य उपभोक्ताओं को विद्युत प्रदान की जा रही है।

इसी प्रकार से अमौसी विकास खण्ड के अन्तर्गत चाँदपुर में भी 33/11 के वी विद्युत उपस्थान के निर्माण का प्रस्ताव है।

जनपद के विकास कार्यक्रमों में विद्युत की महत्ता को देखते हुए निर्धारित विकास कार्यक्रमों के लक्ष्य की पूर्ति के लिए जनपद स्तर से प्रयास हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों को भी शीघ्रातिशीघ्र विद्युतीकृत किया जा रहा है। वर्तमान समय में जनपद में कुल 1531 ग्राम हैं, जिनमें से 981 ग्रामों को विद्युतीकृत किया जा चुका है।

(3) जल संसाधन -

फतेहपुर जनपद के लिए जल आपूर्ति दो प्रमुख नदियों गंगा तथा यमुना के द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त पाण्डु तथा ससुरखादेरी, गंगा तथा यमुना की यहायक नदियाण पाण्डु गंगा में तथा ससुरखादेरी यमुना में आकर मिलती है। गंगा नदी जनपद के उत्तरी किनारे से तथा यमुना नदी इसके दक्षिणी किनारे से होकर बहती है। यमुना नदी के किनारे वाली पट्टी का जल स्तर बहुत ही गहरा है जबकि गंगा के किनारे की स्थिति सामान्य है। बाँदा जनपद की भांति यहाँ भी जल की समस्या बनी रहती है तथा औद्योगिक विकास की दृष्टि से जल संसाधनों का विकास एक अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है ताकि जनपद की आबादी के उपयोग के साथ-साथ उद्योगों के लिए भी पर्याप्त मात्रा में जल की आपूर्ति सम्भव हो सके।

4- यातायात व्यवस्था -

औद्योगिक विकास में यातायात रक्त संचार क्रिया के समान महत्वपूर्ण है। यातायात आर्थिक उन्नति का एक विश्वसनीय मापदण्ड है। यातायात व्यवस्था विकास की गति को तीव्रतम करने में सहायक सिद्ध होती है। पिछड़े जनपदों के आर्थिक विकास यातायात साधनों के पर्याप्त साधनों का अभाव एक महान बाधा रही है।

औद्योगिक विकास तथा कृषि व्यवस्था के कुशल तथा मितव्ययी संचालन के लिए यातायात के विकास को प्राथमिकता के आधार पर लिया जाना आवश्यक समझा जाता है। औद्योगिक विकास की दृष्टि से यातायात के आधुनिक साधनों का महत्व इस प्रकार है -

औद्योगीकरण का तीव्रता से विकास करना -

1- यातायात साधनों से कच्चे माल को शीघ्रता से उपलब्ध कराया जा सकता है। इससे उद्योगों का संचालन कुशलतापूर्वक किया जा सकता है।

2- उत्पादित वस्तुओं के विपणन में सहायता मिलती है। निर्मित वस्तुओं को ग्राहकों तक मितव्ययितापूर्वक पहुंचाने का कार्य यातायात के द्वारा ही पूरा किया जा सकता है।

3- कृषि विपणन के क्षेत्र में यातायात विकास साधनों के विकास का और भी अधिक महत्व है।

4- उत्पादन साधनों की गतिशीलता भी यातायात विकास से बढ़ती है। श्रमिक गतिशीलता के क्षेत्र में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

5- आर्थिक संकट तथा असाधारण परिस्थितियों में यातायात साधनों का अत्यधिक महत्व है।

रेल यातायात -

जनपद में यातायात के मुख्य साधन रेल, बस, ट्रक, टैम्पो आदि है। जनपद फतेहपुर के मध्य रेलवे की उत्तरी लाइन प्रदेश के महत्वपूर्ण नगर, कानपुर तथा इलाहाबाद को जोड़ती है। इसी लाइन के समानान्तर राष्ट्रीय राजमार्ग जी.टी.रोड, इस जनपद में 84 किमी. में फैला है। जनपद की तीनों तहसीलों से रेल मार्ग सम्बद्ध है जिसके अंतर्गत 12 रेलवे स्टेशन आते हैं।

1- कुरस्ती कला	5- औंग
2- मलवाँ	6- फतेहपुर
3- कंसपुर गुगोली	7- रमवाँ
4- बिन्दकी रोड	8- फैजुल्लापुर
9- रसूलाबाद	10- सतनरैनी
11- खागा	12- कटोधन

सड़क यातायात -

जनपद में राजकीय तथा निजी क्षेत्र दोनों प्रकार की बस सेवा सुलभ है। ये दोनों बस सेवायें जनपद के औद्योगिक क्षेत्रों से जुड़ी है। निजी बस सेवा केवल कानपुर तथा इलाहाबाद को छोड़कर जनपद के आन्तरिक स्थानों जैसे - बिन्दकी, चौडगरा, जहानाबाद, गाजीपुर, हुसैन गंज, अमरावाँ, हथगाँव आदि स्थानों के लिए सुलभ है। राजकीय बस सेवा कानपुर दिल्ली, आगरा, इटावा, फर्रुखाबाद , फैजाबाद, झाँसी,

गोरखपुर, बनारस, सुल्तानपुर, रायबरेली आदि स्थानों को जनपद से होकर जाती है। जनपद के अन्दर भी राजकीय बस सेवा बहुआ, धाता, चौडगरा, हसवाँ, भिठौरा, असनी, बिन्दकी रोड आदि स्थानों पर सुलभ हैं।

माल का यातायात मुख्यतः यहाँ ट्रक द्वारा होता है। यहां से ट्रक द्वारा माल सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में भेजा जाता है। ट्रक यातायात की व्यवस्था के लिए फतेहपुर शहर बिन्दकी तथा खागा आदि स्थानों पर ट्रान्सपोट ऐजेन्सियाँ भी सुलभ हैं।

संचार व्यवस्था -

संचार सुविधाओं या माध्यमों से तात्पर्य उन सभी क्रियाओं उपकरणों विधियों से है जिनके माध्यम से सूचनाओं, विचारों, समाचारों एवं आदेशों का स्थानान्तरण किया जाता है। यातायात साधन जिस प्रकार सामान्य रूप से वस्तुओं, सेवाओं एवं मनुष्यों के स्थानान्तरण की व्यवस्था करते हगैं उसी प्रकार संचार संसाधन एवं माध्यम सूचनाओं और समाचारों का हस्तांतरण की व्यवस्था करते हैं।

संचार वह प्रक्रिया है जिससे समाचारों एवं सूचनाओं का कुशल हस्तांतरण किया जाता है। आज संचार माध्यमों की कुशलता में जो वृद्धि हुई उसके लिए वैधानिक तथा तकनीकी क्रान्ति उत्तरदायी है। आज के वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के युग में उन उपकरणों का विकास हुआ जिनकी सहायता से हम कुछ पलों में सूचना ज्ञान पृथ्वी के एक छोर से दूसरी छोर तक पहुंचाने में सफल हुए हैं। उपग्रहों के विकास के माध्यम से आज सूचना हस्तांतरण के क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। फैक्स आदि ऐसे उपकरणों का विकास हुआ जिनकी सहायता से एक प्रपत्र या दस्तावेज दूरभाष के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तांतरित किया जाता है। चाहे इन स्थानों की दूरी हजारों मील ही क्यों न हो। इसी प्रकार टेलीप्रिन्टर आदि उपकरण एक सूचना को दूसरे स्थान तक हस्तांतरित कर देते हैं। दूरभाष के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रगति के अभाव में महत्वपूर्ण विकास हुए हैं।

संचार व्यवस्था का महत्व -

दूर संचार व्यवस्था का विकास एक देश के आर्थिक विकास की व्यवस्था का संकेत देता है। औद्योगिक विकास की गति को परेरित करने में संचार व्यवस्था की आधारभूत भूमिका होती है। किसी क्षेत्र के औद्योगिक विकास की दृष्टि से संचार व्यवस्था का महत्व संक्षेप में इस प्रकार है -

अर्थ तंत्र की कुशलता -

आज का आर्थिक तंत्र अत्यधिक जटिल रूप ग्रहण कर चुका है और उसका कुशल संचालन संचार सुविधा के द्वारा संभव है। बिना आधुनिक संचार व्यवस्था की सहायता के इनके संचालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। किसी प्रकार की अव्यवस्था या विघटन तथा दुर्बलता की सूचना प्रबन्ध को अविलम्ब मिल जाती है और उस पर सुधार की कार्यवाही करके संस्था की हानि तथा पतन से बचाया जा सकता है।

प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्धि -

औद्योगिक क्षेत्रों में बढ़ती प्रतिस्पर्धा को समझने तथा उसके अनुरूप अपनी व्यवस्था में परिवर्तन करने में संचार सुविधाओं का बड़ा योगदान है, लागत स्तर में होने वाले परिवर्तनों उत्पदान विधियों में होने वाले तकनीकी परिवर्तनों से उत्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक प्रतिष्ठानों में किस प्रकार तकनीकी आर्थिक एवं प्रबंधात्मक परिवर्तन हो रहे हैं और उससे उनकी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में क्या प्रभाव हो रहे हैं। उसकी त्वरित सूचना मिलने से एक प्रतिष्ठान अपनी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में वृद्ध कर सकता है। तथा प्रतियोगी सम्बन्धों के प्रतिस्पर्धात्मक आक्रमण से बच सकते हैं।

विनियोगों की लाभ प्रदता -

ब्याज तथा लाभ की दरों में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण विनियोगकर्ता अपने संसाधनों पर अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उन स्थानों पर पूँजी का विनियोजन करना चाहते हैं। जहाँ अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सके और जैसे ही लाभ की दर में परिवर्तन हो तो उसी के अनुरूप विनियोगों का स्थानान्तरण किया जा सके। इस त्वरित कार्यवाही में संचार साधनों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विनियेग के पास स्वयं के आधुनिक संचार साधन है जिनके निरन्तर उपयोग से ही वह अपने विनियोगों को अधिकतम लाभकारी बनाने में सफल होते हैं।

तकनीकी परामर्श की कुशल व्यवस्था -

आज की कुशलता के युग में तकनीकी परामर्श सेवाओं के लिए कुशल प्रतिष्ठानों की स्थापना की जा रही है और उसका लाभ औद्योगिक क्षेत्रों को प्रदान किया जा रहा है। यह तकनीकी परामर्श सेवा संस्थान अपनी विशिष्ट सेवाओं का लाभ विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों को संचार माध्यमों के द्वारा ही पहुँचाते हैं। अनेक परामर्श प्रतिष्ठान नियमित रूप से अपने ग्राहकों को यह परामर्श अपने तकनीकी प्रपत्रों तथा दूर संचार माध्यमों से प्रसारित करते रहते हैं।

रोजगार सेवा रूपों की उपलब्धि -

संचार सेवा रूपों की उपलब्धि - संचार सुविधाओं

के प्रसार के आज बड़ी मात्रा में रोजगार सुविधाओं में भी वृद्धि हो रही है, जिस तीव्रता से दूर संचार सुविधाओं में हाल के वर्षों में वृद्धि हुई है, उससे प्रत्यक्ष रूप से रोजगार के नवीन अवसर उत्पन्न हुए हैं। जगह-जगह पर आई. एस. डी. / पी. सी. ओ. केन्द्र खोले जा रहे हैं और सरकार के ऊपर किसी प्रकार का व्यय भी नहीं करना पड़ता है। इसके विपरीत सरकार को इससे धन भी अर्जित होता है। डाक-तार सेवाओं में वृद्धि हो रही है। संचार डाकघरों में निर्माण के कारखानों को खोला जा रहा है, जिसमें रोजगार साधनों का विकास हो रहा है। इसी प्रकार डाक, तार, रेडियो, टेलीविजन सेवाओं के विस्तार से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार सेवाओं में विकास हो रहा है।

राज्य की वित्तीय आय -

संचार सुविधाओं के प्रयास से आर्थिक विकास को गतिमान बनाने और आर्थिक व्यवस्था की गुणवत्ता में सुधार लाने के साथ ही इन सेवाओं से राज्य को पर्याप्त मात्रा में आय की प्राप्ति होती है। दूर संचार के क्षेत्रों में प्रसार तथा अनेक प्रकार की नवीन सुविधाओं की विस्तार के साथ इन सेवाओं की माप में तीव्रता से वृद्धि हो रही और इनकी दरों में वृद्धि की जा रही है और इन सेवाओं पर करारोपण के माध्यम से भी सरकार को बड़ी मात्रा में आय प्राप्त हो रही है और उस अर्जित आय को विनियोजित करके विकास प्रक्रिया में सहायता पहुँचायी जा रही है। डाक तार सेवाओं से भी सरकार को आय प्राप्त हो रही है।

वित्तीय संसाधनों का हस्तान्तरण -

अन्तर्राष्ट्रीय संचार माध्यमों के विकास के साथ कुशलता और सुविधा वित्तीय साधनों द्वारा अपने संसाधनों को त्वरित गति को हस्तान्तरित कर सकते हैं। यह संसाधनों को त्वरित गति से हस्तान्तरित कर सकते हैं। यह संसाधनों का हस्तान्तरण संसार के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित वित्तीय संसाधनों के माध्यम से सम्भव होता है। इस प्रकार वित्तीय संसाधनों को कुशल हस्तान्तरण संचार सुविधाओं के माध्यम से ही सम्भव हो सका है।

आर्थिक असमानताओं को समाप्त करना -

क्षेत्रीय असमानताओं के साथ आर्थिक विकास का स्वरूप अन्यायपूर्ण हो जाता है। अधिकांश संसाधन कुछ विकसित क्षेत्रों में केन्द्रित हो जाते हैं और पिछड़े क्षेत्रों के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण माना जाता है। यदि पिछड़े हुए क्षेत्रों में संचार सुविधाओं को उपलब्ध कराया जाता है तो इन क्षेत्रों में भी विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलेगा। संचार माध्यमों के सन्तुलित विकास से सन्तुलित आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलेगा।

आर्थिक स्थिरता -

संचार साधनों के अभाव में आर्थिक उच्चावचनों का जन्म होता है। साधनों के असमान आवंटन और उनके दुरुपयोग से आर्थिक अस्थिरता की स्थिति विकसित होती है। संचार माध्यमों की सहायता से उच्चावचनों पर नियंत्रण प्राप्त करने सुगम हो जाता है। संचार व्यवस्था से दुर्लभता ग्रस्त क्षेत्रों में संसाधनों को तीव्रता से हस्तान्तरित किया जाता है और अभाव की स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। अतिरिक्त की स्थिति में संसाधनों को वहाँ से हटाया जा सकता है। इस प्रकार संचार साधन आर्थिक स्थिरता को प्रोत्साहन प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- विनोद व्यासुलु - डेवलपमेन्ट ऑफ बैकवर्ड एरियाज, 1988।
2- बी. पी. एस. भदौरिया - डिसपैरीटीज एण्ड डेवलपमेन्ट पोलिसी 1988।
3- ओ. पी. महाजन - इकोनोमिक प्लानिंग एण्ड रीजनल डेवलपमेन्ट इन इण्डिया 1986।
4- आर. के. हजारी - ऐसे ऑन इण्डस्ट्रियल पालिसी 1988।
5- पी. कृष्णा बाबू - रीजनल प्लानिंग इन इण्डिया 1988
6- राना प्रताप - ग्रोथ एण्ड रीजनल पैटर्न ऑफ इण्डस्ट्रियल काम्प्लेक्सेज 1985।
7- सर्वे ऑफ इण्डियन इण्डस्ट्री (द हिन्दू)
8- टाइम्स ऑफ इण्डिया इयर बुक्स।
9- इण्डिया - एनुअल ऑफ वैरियस इयर्स।

◈ ◈

ISSN : 2349-9273

वाल्मीकि रामायण का सांस्कृतिक अनुशीलन

- डॉ. उदयराज यादव
असि. प्रोफेसर - संस्कृत विभाग,
श्री सतगुरु महाविद्यालय, धानीखेड़ा-
उन्नाव (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
super.prakashan@gmail.com

संस्कृति का स्वरूप -

संस्कृति स्त्रीलिङ्ग शब्द है,[1] जो संस्कृत भाषा में 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय जोड़ने पर बनता है। वैय्याकरण जिसका अर्थ 'सुधरी हुई स्थिति' बतलाते हैं।[2] सामान्य अर्थ में वह कार्य जो भलीभांति अलंकृत रूप से किया गया हो संस्कृति है।[3] इसी प्रकार संस्कृति के अन्य अनेक अर्थ भी प्रचलित हैं जैसे - संस्कार, परिमार्जित, परिष्कृत, शुद्ध, साफ और विभूषित करना।[4] आज-कल समाज की वे सब बातें जिनसे समाज ने आरम्भ से अब तक विशिष्ट क्षेत्र में कितनी उन्नति की है - संस्कृति कहलाती हैं। विद्वानों ने इस शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ प्रतिपादित की हैं -

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने देश के विशिष्ट पुरुषों के विचार, वाणी एवं क्रिया के व्याप्त रूप को संस्कृति माना है।[5]

हरिदत्त वेदालंकार नवे संस्कृति का अर्थ उत्तम या सुधरी हुई स्थिति मानकर मनुष्य की पशुओं और जंगलियों से उच्च व सभ्य होने की अवस्था को सभ्यता एवं संस्कृति के अंग कहा है।[6]

पं. जवाहरलाल नेहरू के अनुसार - 'समस्त जगत् की वे सर्वश्रेष्ठ बातें जिनसे स्वयं को परिचित कराया जाय संस्कृति हैं।'[7]

डा. सम्पूर्णानन्द के अनुसार - निरन्तर प्रगतिशील मानव के जिन कार्यो से किसी देश विशिष्ट के समूचे समाज पर कोई अमिट छाप पड़े, वह स्थायी प्रभाव ही संस्कृति हैं।'[8]

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल संस्कृति की विवेचना कुछ भिन्न प्रकार से करते हैं, उनके अनुसार - 'संस्कार सम्पन्न जीवन ही संस्कृति हैं। ये संस्कार मन, वचन तथा कर्म से प्रकट किये जाते हैं और जिसे विश्व के विषद् क्षेत्र में स्वयं प्रकृति ही उत्पन्न करती है।' संस्कृति की विवेचना के साथ 'सभ्यता को समझना आवश्यक है।[9] क्योंकि अनेक लोग दोनों को एक ही समझ लेते हैं।

सभ्यता -

सामान्यतः सभ्यता का अर्थ मनुष्य की उपलब्धियों से है। मनु,य ने देश और काल में विश्व के धरातल पर मन से जो गुना कर्म से जो किया तथा भौतिक माध्यम से जो निर्मित किया, सभ्यता उन सभी की एक सामान्य परिभाषा है।[10] 'सभ्यता' स्त्रीलिङ्ग शब्द है,[11] 'जो भा' शब्द से यत् प्रत्यय लगाने के बाद तल प्रत्यय के योग से बनता है।[12] शब्दकोश में जिसके कई अर्थ प्रतिपादित किये गये हैं। सभ्य होने के अवस्था, समाज की सदस्यता, शीलवान् और सज्जन होने की अवस्था के साथ-साथ किसी जाति या देश की बाह्य तथा भौतिक उन्नतियों के समष्टिगत रूप को भी सभ्यता नाम से अभिहित किया गया है।'[13] सभ्यता को सामाजिक भी कहा जाता है अंग्रेजी में इसका समानार्थक शब्द 'सिविलाइजेशन' है। इसका सम्बन्ध नागरिक से हैं। नगर में रहने वालों को नागरिक कहते हैं। ग्रामीणों की अपेक्षा नागरिक ज्यादा शिक्षित संगठित व सभ्य होते है। भारत में जो लोग संस्कृति और

विकास की दृष्टि से अदिक विकसित होते गये वे अपने को सभ्य समझने लगे तथा जो लोग विकासशील थे वे उनसे स्वयं को पृथक् समझने लगे। सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध अङ्ग और अङ्गी तुल्य है। प्रायः लोग संस्कृति और सभ्यता को समान समझ लेते हैं परन्तु यह ठीक नही है, क्योंकि सभ्यता संस्कृति का ही एक अङ्ग है।[14]

संस्कृति और सभ्यता में अन्तर -

संस्कृति और सभ्यता में सूक्ष्म भेद हैं। व्याकरण की दृष्टि से संस्कृति अलंकृत सम्यक् कृति है और सभ्यता व्यक्तियों द्वारा समाजिक नियम और व्यवहार जानकर तदनुरूप योग्य आचरण करना है।[15] सभ्यता मुख्य रूप से आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक सिद्धियों से संबद्ध है जकि संस्कृति आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं मानसिक सिद्धियों से सम्बद्ध हैं। संस्कृति कला कौशल के क्षेत्र की उन्नति सामाजिक रहन-सहन पारम्परिक योग्यताओं तथा विशिष्टताओं के आधार पर आँकी जाती है जबकि सभ्यता मानव समाज की बाह्य और भौतिक सिद्धियों की मापक हैं। संस्कृति लोगों के आन्तरिक एवं मानसिक उन्नति की परिचायक होती है। एतदर्श संस्कृति मनोगत व सभ्यता समाजगत होती है।[16] सभ्यता संस्कृति के बाह्य पक्ष को कहते हैं जिसमें रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा इत्यादि सामाजिक पहलुओं का सन्निवेश होता है, वही संस्कृति उसके विरुद्ध आभ्यान्तर कारक होती है। इन दोनों का सम्बन्ध अतिघनिष्ट है। संस्कृति यदि आत्मा है तो सभ्यता शरीर।[17]

डा. सम्पूर्णानन्द जी कहते हैं कि 'संस्कृति मानसिक व आन्तरिक तथा सभ्यता बाह्य व भौतिक हैं। संस्कृति के अङ्गीकार करने में अधिक समय लगता है परन्तु सभ्यता की नकल तत्काल ही की जा सकती है।[18] उदाहरणार्थ- एक हिन्दुस्तानी व्यक्ति अपने धोती कुर्ते को छोड़कर अंग्रेजों के पैण्ट पतलूम पहन सकता है परन्तु उतना शीघ्र उसके विभिन्न संस्कार अंग्रेजों जैसे नहीं हो सकते।

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार , 'संस्कृति मनुष्य की ऊर्ध्वगामिनी प्रवृत्ति का विकास करती है तथा सभ्यता उसके बाह्यप्रयोजनों की स्वच्छ रूप से पूर्ति करती है।'[19]

श्री प्रभूदयाल मीतल ने संस्कृति और सभ्यता में अन्तर बतलाते हुए कहा है कि 'सभ्यता केवल भौतिक और शारीरिक उन्नति है जबकि संस्कृति मानसिक एवं बौद्धिक विकास है। सभ्यता और संस्कृति का सम्बन्ध दूध में व्याप्त मक्खन, फूलों में सुगन्ध और शरीर में आत्मा के समान हैं। सभ्यता केवल बाहरी ढाँचा मात्र है जो संस्कृति के बिना निस्सार और निष्प्राण है। सभ्यता शीघ्र बनती है और तत्क्षण बिगड़ती भी है किन्तु संस्कृति के बनने और नष्ट होने में पर्याप्त समय लगता है। संस्कृति बहुमुखी होती है। जब कि सभ्यता शनैः-शनैः संस्कृति की सीमाओं में विलय कर जाती है।[20]

श्री जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में संस्कृति और सभ्यता के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि - 'समृद्ध सभ्यता में संस्कृति का विकास होता है और उसमें दर्शन, साहित्य, नाटक, कला, विज्ञान और गणित विकसित होती है।'[21]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सभ्यता संस्कृति का ही एक अङ्ग है। संस्कृति आत्म तत्व है जो सूक्ष्म शाश्वत और अविनाशी है, जबकि सभ्यता शरीर के समान स्थूल, सहज परिवर्तन शील और भौतिक है। इस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो दोनों भिन्न है परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं।

भारतीय संस्कृति की विशेषतायें -

भारतीय संस्कृति अपने विशिष्ट तत्वों के कारण ही विश्व के सभी देशों में अपना महत्व पूर्ण स्थान बनाये रखा। हमारी संस्कृति की कतिपय विशेषताएँ ऐसी हैं जो अन्य राष्ट्रों की संस्कृतियों में दृष्टिगत नहीं होती है।[22] आर्य संस्कृति के मूल में आध्यात्मिक भावना ही मुख्य है जिसके कारण यह अक्षुण्ण बनी हुई है। भारतीय विद्वानों ने सदैव अपने को अध्यात्म पक्ष के अनुसंधान में लगाया तथा अभ्युदय और निःश्रेयश की सिद्धी पायी, जो अध्यात्म एवं भौतिक इन दो पक्षों की सिद्धि ओने से धर्म कहलाया। एतदर्थ भारतीय संस्कृति की रचना सहस्रं वर्षो में हुई जिसके मुख्य स्रोत वन है जहाँ मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने गहनतम चिन्तन के परिणामस्लरूप जीवन के शाश्वत सिद्धान्तों को अर्जित किया। इस संस्कृति के मूल में जहाँ अध्यात्म ज्ञान, धर्म, नीति, दर्शन इत्यादि निहित हैं वही सौन्दर्य की उदात्त भावना भी संक्षेपण समन्वित हैं।[23] भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नाङ्कित शीर्षकों के अन्तर्गत संचित है -

1- **प्राचीनता** - हमारी संस्कृति विश्व की एक प्राचीनतम संस्कृति हैं।[24] भारत में संस्कृति का उदय तथा विकास ईशा के कई सदियों पूर्व हुआ। प्रागैतिहासिक उपकरणों तथा सैन्धव सभ्यता की खोज से आर्य संस्कृति की प्राचीनता सिद्ध होती है तथा हमारे समक्ष यह विश्वास योग्य पर्याप्त आधार है कि मिश्र तथा मेसोपोटामिया की सभ्यताओं की तरह भारत की भी स्वतंत्र सभ्यता थी। जो समकालीन सभ्यताओं की तुलना में कही अधिक विकसित व गतिशील थी।

निरन्तरता तथा चिरस्थायिता - भारतीय संस्कृति में प्राचीनता के साथ-साथ निरन्तरता तथा चिरस्थायिता भी है,[25] जो विश्व की अन्य संस्कृतियों में नहीं देखी जाती है जब कि मिश्र, सुमेर, बेबीलोन, असीरिया तथा ईरान जैसे राष्ट्रों की संस्कृतियाँ बहुत पहले ही समाप्त हो चुकी । वहाँ केवल वे अतीत की कहानियाँ ही बनकर रह गयी, जब कि भारतीय संस्कृति का अतीत वर्तमान जीवन से अटूट रूप से सम्बद्ध है। शादियों के परिवर्तनों के फलस्वरूप हमारी संस्कृति की आत्मा समान एवं सातत्य रूप से विद्यमान रही। सैन्धव सभ्यता की देवी मूर्तियाँ आज भी भारतीयों के लिए पूजनीय बनी हुई है तथा सम्पूर्ण भारत के लोग शादियों पूर्व सिन्धु सरिता के तट पर ऋषियों द्वारा उच्चारित वैदिक मन्त्रों का उच्चारण आज भी अतीव श्रद्धा के साथ करते हैं।

आध्यात्मिकता - आध्यात्मिकता या धार्मिकता भारतीय संस्कृति का प्राण तत्व है।[26] प्राचीन भारतीयों ने भौतिक सुखों की महत्ता समझते हुए भी उन्हें अपने जीवन में गौण स्थान दिया। प्राचीन समाज पुरुषार्थों एवं आश्रम व्यवस्था के विधान से ही आध्यात्मिक करता था तथा वह जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को धर्म अर्थ और काम का सम्यक् पालन करते हुए पा लेता था। वर्तमान समय में भी इसी नियम का पालन करते लोग परम गति पाते हैं।

ग्रहणशीलता - भारतीय संस्कृति की ग्रहणशीलता एक अनोखी विशेषता है, जो प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाकर अपने में समाहित कर लेती है। ऐतिहासिक से लेकर मध्य काल के पूर्व यवन, शक, कुषाण इत्यादि अनेक जातियों ने आक्रमण जिनके प्रबल प्रहार को शान्त एवं गम्भीर भाव से सहन करते हुए भारतीय संस्कृति कम से इन विदेशियों को अपनी धारा में प्रवाहित किया। आज भी विदेशों से लोग यहाँ आकर उद्योग धंधे स्थापित करते हैं तथा व्यापार भी करते हैं।[27]

समन्वयवादिता - भारतीय संस्कृति का उद्भव ऋग्वेद से माना जाता है। हमारी संस्कृति अतिवादी विचारों का विरोध, मध्यम मार्ग का उपदेश, अतिशय आसक्ति व भोग के त्याज्य पर बल देती है, जिसका पालन सभी को करना चाहिए। भारतीय काल में पुरुषार्थों और वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा भौतिक तथा आध्यात्मिक सुखों और उनकी विभिन्न अवस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना ही इसका परम उद्देश्य है जो हिन्दू धर्म में आज भी ईश्वर एक है धारणा से समन्वय देखा जा सकता है।[28]

धार्मिक सहिष्णुता - हमारी संस्कृति धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश देती है। भारतीय मतों ने ईश्वर को सर्वव्यापी मानकर अनेक धर्मों व मतों द्वारा ईश्वर तक पहुंचने के अलग-अलग मार्ग बतायें हैं। ऋग्वेद 'सत्' अर्थात् ब्रह्म को एक मानता है।'[29] गीता में श्री कृष्ण अर्जुन से सभी मनुष्यों को अपने ही मार्ग का अनुसरण करने वाला बताते हैं।

सर्वाङ्गीणता - भारतीय संस्कृति मानव जीवन के सभी पक्षों के सम्यक् विकास पक महत्व देती है। इसलिए प्राचीन काल में मनुष्य जीवन में आश्रम व्यवस्था एवं पुरुषार्थों का विधान व्यक्ति तथा समाज के सर्वाङगीण विकास को ध्यान में रखकर किया गया था।[30] जो आज भी हिन्दू समाज में कुछ नये विधानों से देखने को मिलता है।

सार्वभौमिकता - भारतीय संस्कृति में सार्वभौमिकता पायी जाती है, जो अपनी उन्नति के साथ-साथ समस्त विश्व के कल्याण की कामना करती है। यह हमारे साहित्य एवं दर्शन में स्थान-स्थान में मुखरित होती देखी जाती है।[31]

कल्याण और तपस्या की भावना - भारतीय जन जीवन त्याग और तपस्या की भावना से व्याप्त है। यहाँ अनेक ऐसे उदाहरण प्राप्त होते हैं जहाँ लोगों ने दूसरों के कल्याणार्थ स्वयं को भी बलिदान तक कर दिया है।[32]

कर्मवाद - भारतीय जन समुदाय को कर्मवाद की भावना सर्वाधिक प्रिय हैं।[33] यहाँ क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध तीन प्रकार के कर्म प्रचलित है गीता में कर्मण्येवाधिकारास्ते मा फलेषु कदाचन्' की मनोज्ञ उक्ति प्रसिद्ध हैं। अब हम संस्कृति के प्रायः समस्त पहलुओं का विवेचन रामायण के आधार पर करेगे।

रामायण में वर्ण व्यवस्था - स्वरूप एवं भेद - वर्ण अर्थात् रंग का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है।[34] यहाँ आर्यो ने स्वयं को श्वेत वर्ण तथा दास-दस्युओं को कृष्ण वर्ण का बताया है। कालान्तर में वर्ण शब्द वृत्ति का सूचक बन गया तथा व्यवसय के आधार पर समाज में वर्णों का विभाजन हुआ। आगे चलकर शास्त्रकारों ने उसे और सुदृढ़ बना दिया और कहा कि सामाजिक संगठन बनाया जाय ताकि हर व्यक्ति स्वनिर्दिष्ट कर्मों का पालन करते हुए आपसी भेद-भाव से दूर रहकर अपना तथा समाज का पूर्ण विकास कर सके। इससे समाज का ही नहीं वरन् समूचे देश का विकास होने लगा और समाज में वर्ग संघर्ष तथा प्रतिस्पर्धा की भावना समाप्त हो गयी। आचार्य शुक्र ने वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति कर्म से ही मानी है।[35] वे जन्म से किसी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नही मानते हैं। रामायण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उस काल में चारों वर्णो के लोग लोभ रहित तथा अपने आश्रमोचित कर्मों में लगे

रहकर सन्तुष्ट रहते थे -

'ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरैव कर्मभिः ।।'[36]

त्रेता युग वर्णाश्रम धर्म प्रधान था। उस समय धर्म का ही प्रकाश फैला हुआ था। वह युग धर्म में बाधा डालने वाले पाप से रहित था किन्तु समय पाते ही उसी युग में अधर्म ने अपना एक पैर भूतल में रखा जिससे लोगों का तेज धीरे-धीरे घटने लगा। आगे चलकर शनैः-शनैः परम्परागत वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी रामायण में वर्ण व्यवस्था कर्म भेद से न मानकर वंश भेद से मानी गयी है। (3/5/49-50) वर्ण चार प्रकार के माने गये है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र -

1- ब्राह्मण -

'वर्णेष्वृहग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथि पूजकाः ।' रा. 1/6/17

महाराज दशरथ के समय में ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोग देवता और अतिथियों के पूजक थे।)

यह हिन्दू समाज का श्रेष्ठ पवित्र एवं सम्मानित वर्ण है, जिनकी गणना वर्ण व्यवस्था में सर्वप्रथम की जाती है।[37] विराट् पुरुष या ब्रह्मा के मुख भाग से प्रादुर्भूत होने के कारण उसे वाणी अर्थात् ज्ञान का भण्डार कहा गया है। रामायण के अनुसार महात्मा कश्यप की पत्नी (मनु) ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र जाति वाले मनुष्यों को जन्म दिया -

'मनुमनुष्याञ्जनयत् कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्राह्मान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्च मनुजर्षभ ।।'

- रा. 3/14/29

उन्ही मनु के मुख से ब्राह्मण, हृदय से क्षत्रिय दोनों ऊरूओं से वैश्य तथा दोनों पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई -

'मुखतों ब्राह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा ।
ऊरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पदभ्यां शूद्रा इति श्रुतिः ।।'

- रा. 3/14/30

त्रेता युग में ब्राह्मण के साथ-साथ क्षत्रिय भी तपस्या करते थे।[38] अध्यात्म रामायण में कहा गया है कि कलियुग में ब्राह्मण लोभ से ग्रसित होंगे जिससे वे अपने सभी कार्य अधर्मपूर्वक करेंगे,[39] जब हि राम के राज्य में सभी ब्राह्मण शिक्षित थे।[40] उस समय के ब्राह्मण अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ, उदार, शूर-वीर एवं पराक्रमी थे।[41]

कौटिल्य ने ब्राह्मण के छः प्रधान कमों का उल्लेख किया है। वे हैं - अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना।[42] महाभारत में महर्षि वेदव्यास ने अध्ययन, आत्म-नियन्त्रण तथा तप को उसके विशिष्ट धर्म के रूप में प्रतिपादित किया है।[43] गीता में व्यास जी ने शम, दम, शुद्धि, तप, क्षमाभाव, सरलता, ज्ञान विज्ञान एवं आस्तिकता को ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म बताये हैं। मनुस्मृति तथा शुक्रनीति में भी ब्राह्मण के छे कर्म माने गये हैं।[44]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण अपने ज्ञान के बल पर समाज में श्रेष्ठता का अधिकारी रहा है। इसी आधार पर उसे दण्डों से छूट प्राप्त थी। वह पुरोहित एवं मन्त्री के पद पर नियुक्त होने का प्रधान अधिकारी था और उसी के द्वारा सभी धार्मिक क्रियाएँ क्रियान्वित होती थी। इसीलिए आज भी पुरोहितों के द्वारा ही सभी धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न करायी जाती हैं।

2- क्षत्रिय -

'एष हि प्रथमो धर्मः क्षत्रियस्यआभिषेचनम्।'

- रा. 2/103/19

(क्षत्रिय के लिए पहला धर्म ही है कि उसका राज्य पर अभिषेक हो।)

प्राचीन काल में समाज का दूसरा महत्वपूर्ण वर्ण क्षत्रिय था।[45] समाज रूपी पुरुष, विराट, पुरुष, ब्रह्मा की बाहुओं या कश्यप की पत्नी मनु के हृदय से उत्पन्न होने के कारण क्षत्रिय समाज की रक्षा करते थे। वर्णाश्रम भेद के समय ही राष्ट्ररक्षा का दायित्व इन्ही को दिया गया था। ये देश की सुरक्षा के लिए युद्ध भी करते थे। रामायण के अनुसार क्षत्रिय हाथ में धनुष्य इसीलिए धारण करता है कि राष्ट्रमें कही आर्त्त शब्द न हो -

'क्षत्रियैर्धार्यते चापं नार्त्तशब्दो भवेदिति।'

उस समय क्षत्रिय का प्रधान कर्त्तव्य राष्ट्र की रक्षा का समुचित प्रबन्ध करना था। इसके अतिरिक्त वेदों का अध्ययनस यज्ञ करना तथा दान देना आदि ब्राह्मण के समान क्षत्रिय के भी कर्त्तव्य थे। क्षत्रिय को राजनीति, धर्म-नीति, दण्डनीति तथा अर्थशास्त्र आदि विद्याओं का मर्मज्ञ होना चाहिए। गीता में शौर्य, तेज, धृति, दाक्ष्य, युद्ध कुशल, दान से प्रजा रकक्षण तथा सदैव सब में ईश्वर दर्शन आदि क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म बताये गये है।[46] महर्षि वाल्मीकि के अनुसार रामाण का अध्येता क्षत्रिय पृथ्वी का राज्य प्राप्त करता है।[47] उस काल में अयोध्या के क्षत्रिय वीर अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में कुशल, बलिष्ठ भुजाओं वाले, शूर-वीर पराक्रमी,[48] ब्राह्मण के समान अतिथियों के पूजक, कृतज्ञ तथा उदार थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों का कहना मानते थे और वैश्य उन क्षत्रियों की आज्ञा का पालन करते थे -

'क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद् वैश्याः क्षत्रमनुव्रता।'

- रा. 1/6/19

रामायण काल में क्षत्रिय प्रजा पालन रूप कर्म से धर्म

का पूरा फल प्राप्त करते थे।[49] क्षत्रिय ही राजा होता था तथा पृथ्वी का पालक होने से उसे महाबली समझा जाता था।[50] क्षत्रिय किसी से कुछ लेता नहीं था अपितु सदैव दान करता था।[51] राज्य में अभिषिक्त होना क्षत्रियों का प्रधान धर्म था और प्रिय पुत्र के समान प्रजा का पालन करने वाला राजा[52] अक्षय कीर्ति पाते हुए अन्ततः ब्रह्मलोक में भी सम्मान का भागी बनता था।[53] क्षत्रिय पाप को कभी क्षमा नहीं करता था। त्रेता युग में सुदृढ़ शरीर धारी क्षत्रियों की प्रधानता थी और वे सभी ब्राह्मण के समान तपस्या में निरत रहते थे।[54] सत्युग में ब्राह्मणों की तुलना में क्षत्रिय निम्न थे और त्रेतायुग में दोनों समान शक्तिशाली थे। अध्यात्म रामायण[55क] तथा आनन्द रामायण में भी क्षत्रियों को प्रजा पालन रूप कर्त्तव्य बताकर उन्हें ब्राह्मणों के निर्देशो के पालन पर बल दिया गया है।[55ख]

3- वैश्य -

'कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः ।'

- रा. 2/100/47

(भगवान् राम अनुज भरत से पूछते है कि तात! कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीति पात्र हैं न?)

वैश्य समाज रूपी मनुष्य, विराट् पुरुष, ब्रह्मा या महर्षि कश्यप की पत्नी मनु की जंघाओं से उत्पन्न हुए हैं।[56] जिस प्रकार शारीरिक भार जंघाओं पर रहता है और वे उसको वहन करती है उसी प्रकार प्राचीन काल में समाज के भरण-पोषण का भार वैश्यों को वहन करना पड़ता था। वे धन एवं सम्पत्ति के स्वामी होने के साथ-साथ समाज के आर्थिक सम्पत्ति के विकास का सम्पूर्ण भार भी वहन करते थे वैश्यों को निःस्वार्थ भाव से देश की सेवा भी करनी पड़ती थी। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के समान वैश्य भी प्राचीन काल में रामायण आदि ग्रन्थों के श्रवण पठन से समस्त दुःखों का निवारण एवं सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते थे।[57] प्राचीन काल में अयोध्यापुरी में विभिन्न देशों से वैश्य आकर बसे थे। वे सभी अपने-अपने व्यवसाय में प्रसन्नापूर्वक लगे रहते थे[58] तथा क्षत्रियो की आज्ञा का पालन करते थे।[59] (वैश्याः क्षत्रमनुव्रताः) रामायण काल में व्यापारियों की दशा उच्च थी।[60] वैश्य जन कृषि, गोरक्षा तथा व्यापार आदि वार्ता के द्वारा ही अपनी आजीविका चलाते थे।[61] सत्युग में जीविका का साधन भूत कृषि आदि रजोगुण मूलक कर्म 'अनृत' कहलाया और मल के समान त्याज्य माना गया। वह अनृत ही अधर्म का एक पाद होकर त्रेता युग में पृथ्वी पर अवस्थित हुआ जिससे सत्युग की अपेक्षा त्रेतायुग में आयु को सीमित कर दिया। इस युग में वैश्य तप नहीं करते थे वे केवल दूसरों की सेवा ही करते थे। उन्हें सेवा रूपी उत्कृष्ट कर्म स्वधर्म के रूप में प्राप्त हुआ था। द्वापर में तपस्या रूप कर्म वैश्यों को भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार तीन युगों में क्रमशः तीन वर्णो को तपस्या का अधिकार प्राप्त हुआ -

त्रिभ्यो युगेभ्यस्त्रीन् वर्णान् धर्मश्च परिनिष्ठितः ।'

- रा. 7/74/26

महाभारत में अध्ययन, दान, यज्ञ तथा सही ढंग से धन अर्जित करना वैश्यों के प्रधान कर्म बताये गये हैं।[62] आनन्द रामायण के अनुसार भगवान् राम के समय में वैश्य धन कमाने की कला से पूर्ण परिचित थे।[63] गीता में वैश्यों का स्वाभाविक कर्म कृषि, गोरक्षा तथा वाणिज्य बताया गया है।[64] महाभारत के समान ही कौटिल्य एवं आचार्य शुक्र ने वैश्यों के कर्त्तव्यों का उल्लेख किया है, जब कि मनुस्मृति में वैश्यों के लिए पशु, रक्षण, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना तथा खेती करना प्रतिपादित है।[65] अध्यात्म रामायण भी प्राचीन काल में वैश्यों द्वारा यज्ञ और तप करने का उल्लेख प्रस्तुत करती है।[66]

इस प्रकार हम देखते है कि पूर्व में समाज का भरण-पोषण करने के साथ-साथ उन्हें वेदाध्ययन, यज्ञ, दान आदि धार्मिक कृत्य भी करने पड़ते थे कालान्तर में धीरे-धीरे वैश्य अपने कर्त्तव्यों से विमुख होने लगे और वर्ण व्यवस्था का पतन हो गया तथा समाज के सभी कर्त्तव्य जाति पर आधारित हो गये।

4- शूद्र -

'शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन् वर्णानामुपचारिणः ।'

- रा. 1/6/19

(शूद्र अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा में संलग्न रहते थे।)

पुरातन समय में समाज का सबसे निम्न वर्ण शूद्र था।[67] वह विराट् पुरुष, महर्षि कश्यप की पत्नी मनु अथवा ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न होने के कारण उसे समाज के सभी वर्णों का भार ढोना पड़ता था। द्विजातियों की सेवा करना उसका मुख्य कर्म था। निम्न वर्ण का होने के कारण वह सभी प्रकार के अधिकारों एवं संस्कारों से वञ्चित था। प्राचीन काल में शूद्र भी रामायण आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों का पठन एवं श्रवण करते थे तथा रामायण पढ़कर अन्य वर्णो की भांति ही सभी दुःखों से मुक्ति एवं मनोवाञ्छित फल पाते थे और समाज में प्रतिष्ठा के पात्र भी बनते थे।[68] राजा दशरथ के समय समस्त अयोध्यावासी शूद्र

अन्य तीनों वर्णों सहित देव और आगन्तुकों के पूजक थे तथा कृतज्ञ, उदार, शूर-वीर एवं पराक्रमी भी थे।[69] वे अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य तीनों वर्णों की सेवा में तत्पर रहते थे। इससे प्रतीत होता है कि उस समय वर्ण व्यवस्था अति सुदृढ़ थी और शूद्रों को कोई कष्ट नहीं था। त्रेता युग में ब्राह्मण और क्षत्रिय को छोड़कर अन्य अर्थात् वैश्य और शूद्र इन दोनों वर्णों को लग सेवाकार्य ही करते थे।[70] सत्युग, त्रेता और द्वापर इन तीनों युगों तक शूद्र को तप के अधिकार सीमित थे किन्तु कलियुग में शूद्र योनि में उत्पन्न होने वाले लोगों को कठोर तपस्या रूप धर्म अधिकार प्राप्त हो जायेगा वह वाल्मीकि जी कहते हैं।[71] अध्यात्म रामायण भी कलियुग में शूद्रों का ब्राह्मणों जैसा आचरण स्वीकार करती है।[72] इससे ज्ञात होता है कि तीन युगों तक मनुष्यों में कर्म के अनुसार वर्ण भेद तथा कर्म को ही प्रधानता थी किन्तु कलियुग में उत्पत्ति रूप वंश की प्रधानता होने पर भी कर्म करने की स्वतन्त्रता का संकेत हैं। आनन्द रामाण के अनुसार भगवान् राम के समय में ब्राह्मण कृषि कार्य शूद्रों से करवाते थे।[73]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- मानक हिन्दी कोश - डॉ. प्रभात मिश्र शास्त्री, पृष्ठ 243
2- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
3- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 1
4- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
5- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
6- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
7- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
8- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
9- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 8
10- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 1
11- मानक हिन्दी कोश - डॉ. प्रभात मिश्र, पृष्ठ 277
12- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10
13- मानक हिन्दी कोश - डॉ. प्रभात मिश्र, पृष्ठ 277
14- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10
15- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10
16- मानक हिन्दी कोश, पृष्ठ 243
17- भारतीय संस्कृतिक - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 11
18- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10-11
19- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10-11
20- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10-11
21- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 10-11
22- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 1
23- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 11
24- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 1
25- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 2
26- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 3
27- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 3
28- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 3
29- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 3
30- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 4
31- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 4
32- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 13
33- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 13
34- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 237
35- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 48
36- वाल्मीकि रामायण 6-128-104ऋ 7-74-14 से 16 तष।
37- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 242
38- वाल्मीकि रामायण 7-74-20
39- आध्यात्म रामायण 1-1-12-13
40- आनन्द रामायण 7-15-56
41- वाल्मीकि रामायण 1-6-17
42- अर्थशास्त्र - 1-3
43- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 242
44- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 50
45- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 50
46- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 51
47- वाल्मीकि रामायण 1-1-100
48- वाल्मीकि रामायण 1-5-21 एवं 1-6-17
49- वाल्मीकि रामायण 1-54-4
50- वाल्मीकि रामायण 1-54-11
51- वाल्मीकि रामायण 2-87-17
52- वाल्मीकि रामायण 2-106-19
53- वाल्मीकि रामायण 3-6- 12-13 तथा 4-18-22
54- वाल्मीकि रामायण 7-74-11-1-2 से 13-1-2 तक
55- (क) अध्यात्म रामायण 2-9-23
(ख) आनन्द रामायण 3-6-40, 7-10-103
56- भारतीय संस्कृति - डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृष्ठ 52
57- वाल्मीकि रामायण - 4-2
58- वाल्मीकि रामायण - 1-5-14
59- वाल्मीकि रामायण - 1-6-19
60- वाल्मीकि रामायण - 2-16-47, 2-100-47
61- वाल्मीकि रामायण - 7-74-18 से 27 तक
62- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 244
63- आनन्द रामायण - 7-15-56
64- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 244
65- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 244
66- अध्यात्म रामायण - 5-4-40
67- प्राचीन भारत की संस्कृति - के. सी. श्रीवास्तव, पृष्ठ 245
68- वाल्मीकि रामायण 4-2
69- वाल्मीकि रामायण 1-6-17 से 19 तक तथा 6-128-104
70- वाल्मीकि रामायण 7-74-20
71- वाल्मीकि रामायण 7-74-26
72- अध्यात्म रामायण - 1-1-12-13
73- आनन्द रामायण 1-1-257, 3-6-43, 4-5-40, 7-15-57

◈◈

ISSN : 2349-9273

India's Exports and Import : Reforms and Performance

- Deepti Maurya
(M. Com. - Net)

E-mail:
deeptimaurya297@gmail.com

Abstract

This paper presents the broad parameters of the growth of the India foreign trade, and gives an overview of the on going debate on the components of export – import growth and relative importance of the different policies. This study is focusing on the structural change in the composition of commodities export and import from India. It attempts to assess the growth of India's foreign trade by using the measuring tool called "unit value index and quantum value index" to get a fair and true picture. It contributes to this debate by identifying and analyzing the policies which improve India's foreign trade and help in moving the Indian economy towards double-digit GDP India's contribution to global trade is 2.6%. India must increases its share in global trade to 8-10 percent to become US$ 5 trillion economy by 2024-25. The most important thing for US$ 5 trillion economy is the export-import balance. This study describe the India's present trade scenario, and what major policy measure to be adopted to boost export. So, that India's export-import balance could be improved which help in strengthening the India's foreign trade.

Key Words: ***Export, Import, Trade Balance, Term of Trade, Economic Growth, Growth rate, Unit value index and Quantum value index.***

Introduction :

From independence in 1947 to the early 1990s India was basically a closed economy that was governed according to socialist principles. The process of trade liberalization and the market-oriented economic reform that started in the 1990s. A balance of payment crises forced the government to joint hand with international monetary fund and World Bank. Manmohan Singh, then the finance minister, used the opportunity and focused on liberalization, openness transparency and globalization with the basic thrust on the outward orientation and on the export promotion. The reform of 1990 lifted many of the restriction, some exchange rate controls were abolished, tariffs were reduced and restrictive import liquidations on most capital goods were eliminated. The introduction part is followed by an evaluation of the main aspects of India's Foreign Trade Policy (FTP). The following section analyses the trends and patterns of the export

and import and the direction of trade in some detail. The final session summarizes the important observations made from the analysis.

From the Financial year 1990-91 to the 2019-20 the overall exported goods increased more than 10 times from US$ 18 billion to over US$ 397.48 billion. During the same time span goods import increased from US$24 billion to more than US$ 455.14 billion which is almost 20 times. The five year EXIM policy from 1992-97 was announced in March 1992 with a view to stimulate export and facilitate imports of the essential inputs as well as the capital goods.

The SEZs were designed to overcome the limitations of the Export Promotion Zone (EPZs) and to attract foreign investments to India. In 1st April 2015 a new foreign trade policy for the period 2015-20 announced by government. The main objective of the foreign trade policy is doubling the overseas sales to US$ 900 by 2019-20

(Table-1) Export Import and Trade Deficit ($ billion)

Year	Export	Import	Trade Deficit
1999-2000	36.3	50.2	-13.9
2000-01	43.1	60.8	-17.7
2001-02	42.5	54.5	-12.0
2002-03	44.5	53.8	-9.3
2003-04	48.3	61.6	-13.3
2004-05	57.24	74.15	-16.91
2005-06	69.18	89.33	-20.15
2006-07	76.23	113.1	-36.87
2007-08	112.0	100.9	11.1
2008-09	176.4	305.5	-129.1
2009-10	168.2	274.3	-106.1
2010-11	201.1	327.0	-125.9
2011-12	299.4	461.4	-162.0
2012-13	298.4	500.4	-202.0
2013-14	313.2	467.5	-154.3
2014-15	318.2	462.9	-144.7
2015-16	310.2	447.9	-137.6
2016-17	262.3	381	-118.6
2017-18	275.8	384.3	-108.6
2018-19	331.02	507.44	-176.42
2019-20 (upto Dec 2019)	397.48	455.14	-57.66

Source : 1). India's export import Historical Data Graphs per year.

and making India global, while integrating the foreign trade with "Make in India" and "Digital India" programs. **(See Table)**

(2)Export Import Data www.eximatlas india.com retrieved 24 March 2018.

(3) The latest data for services sector released by RBI is for Nov 2019. The data for December 2019 is an estimation which will be revised based on RBI's subsequent release.

Growth Rate of Export and Import -

India's trade deficit in November get decreased to US$ 12.12 billion which was US$17.58 billion in November 2018. Oil import were US$ 10.69 billion which was 0.83 percent lower in billion as compared to US$ 10.78 billion in December 2018. Non oil import for April – December 2019 were US$ 261.70 billion have been decreased upto 7.80 percent in billion as compared to US$ 283.84 billion for April to December 2018-19.

Taking merchandise and services together -

The overall trade deficit for the April to December 2019-20 is estimated at US$ 57.66 billion as compared to US$ 89.46 billion for April to December 2018-19.

Cumulative value of expert during 2019-20 (upto the month of December) was US$ 239.29 billion which was US$ 244.08 billion during 2018-19 for April to December. This showing a negative growth of (-)1.96 percent in dollar. Import in December 2019 were US$ 38.61 billion decreased to 8.83 percent in billion which was US$42.35 billion during December 2018. Cumulative value of import for the period 2019-20 (upto December) was US$ 357.39 billion as against during 2018-19 (upto December) 392.31 billion showed a negative growth of (-)8.90 percent in billion.

Trade in services-

Export for services in November 2019 were US$18.00 billion showing a positive growth of 7.91 percent in billion as compared to November 2018. The estimated value of services export for December 2019 is US$17.92 billion. Import for November 2019 were US$11.47 billion showing positive growth of 13.48 percent in billion as compared to November 2018. The estimated value of service import for December 2019 is US$11.32 billion. So, trade balance in services for November 2019 was at US$6.52 billion.

Widening trade deficit -

Table 1 showing that except for two year, when India had marginal trade surpluses, she has experienced deficits throughout this period and what is worse, the annual average trade deficit which was only US$13.9 billion in 1999 rose to US$17.9 billion in 2000. It was during 2001-02 that a real and successful attempt was made to reduce the trade deficit by restricting imports on the one side and boosting exports on the other and the result was that annual average surplus came to US$ 11.1billion in 2007. But during 2008-09 the situation worsened with the trade deficit reaching US$129.1 billion. This was due to sharp increase in prices of Petroleum Oil and Lubricants. As a result import reached a level of US$305.5 billion. During 2013-14 and 2014-15 experienced higher level of export worth US$318.21 billion, but immediately next two financial year 2015-16 & 2016-17 experienced a drastic fall in export leading to decrease in foreign exchange earning during 2014-15.The import accounted for US$462.9 billion decreases for next three years, but in 2018-19 India's import increases upto US$507.44 billion reaching to its highest level compared to last five years. During 2018-19 India's total merchandise export hit a new high of US$ 331.02 billion. India must restrict the relatively higher increase of import if the goal is to reduce trade deficit in the higher export.

Index Number and Term of Foreign Trade -

Impact of unit value Index/Quantum Index : It would be of interest to examine the effect of unit value index or unit quantity index in boosting up export. To the extent the value of import increased due to an increase in the unit value, it implies only a monetary burden without any corresponding increase in quantity of goods received. **(See Table-II)** give the unit value Index and quantum Index for import and export for the period 1980-81 to 2017-18. We have select the

period 1980-81 to 1990-91 as a pre reform decade and 27 years period, 1990-91 to 2017-18 as the post reform period for the purpose of our analysis.

(I) On the export frond, Unit value of index increased 109 to 293 during 1980-81 to 1990-91 showing a growth of 10.4 percent per annum and the quantum index showing an annual growth rate of 6 percent. This implies that gross realization from export were influence more by increase of international prices as compared with the growth rate of volume. The situation changed in the post reform period 1990-91 to 2006-07 during which average annual growth of unit value showing a growth rate of 6.6 percent but quantum index increased from 194 to 1227 signifying an annual growth of 11.2%. This implies that total earning from export were dominated more by growth in volume as compared to rise in unit value. The situation changed again during 2007-2008 to 2017-18 unit value index increased 166 to 376 showing a growth of 8.5 percent per annum and the quantum index showing an annual growth rate of 2.8 percent. This implies that gross realization from export were influenced more by increase of international price as compared with the growth rate of volume.

(II) On the import front, during 1980-81 to 1990-91 unit value index increased from 134 to 268 showing an annual growth rate of 7.2 percent but quantum index rose from 138 to 238 indicating an annual average growth rate of 5.6 percent. This indicating that total earning from import during the pre reform period were influenced less by increase in volume and more by rise in unit value realization. However during 1990-91 to 2007-08 in the post reform period unit value index of imports increased from 268 to 575, showing an annual average growth rate of 4.6 percent, but there was relatively sharp increase in quantum index from 238 to 2603 indicating an annual average increase of 15 percent in volume. As a result burden of imports was more due to increase in unit value. This situation changed in the period 2007-08 to 2017-18 unit value index of import increased from 210 to 513 which indicate annual growth rate 9.3 percent, but quantum index of import increased from 218 to 260 showing annual growth rate 1.8 percent, result that earning from import were influenced less by increase in volume and more by rise in unit value to realization. **(See Table-II)**

(III) Table lll gives three indices of terms of trade. The gross terms of trade showing fluctuation

(Table II) Index Number and Terms of Foreign Trade
(Base 1970-71 = 100)

	Unit Value Index		Quantum Index		Terms of Trade		
Year	Export	Import	Export	Import	Gross	Net	Income
1990-91	292.5	267.7	194.1	237.7	122.5	109.3	212.1
2000-01	624	487	571	698	122.2	128.1	731.6
2001-02	618	493	593	733	123.6	125.4	743.4
2002-03	620	546	722	802	111.1	113.6	819.9
2003-04	672	545	765	970	126.8	123.3	943.3
2004-05	732	663	899	1113	123.8	110.4	992.6
2005-06	798	592	1005	1649	164.1	134.8	1354.7
2006-07	863	608	1164	2047	175.9	141.9	1652.2
2007-08	939	575	1227	2603	212.1	163.3	2003.7
2008-09	194	239	267	262	98	81.0	216.7

Index number and terms of foreign trade

(Base 1999-2000=100)

Index number and terms of foreign trade

(Base 1999-2000=100)

1999-00	100	100	100	100	100	100	100
2000-01	102	109	125	99	79	94	117
2001-02	103	112	126	103	82	92	116
2002-03	106	128	150	109	73	83	124
2003-04	114	132	161	128	80	86	139
2004-05	131	157	179	150	84	83	149
2005-06	139	179	206	174	84	78	160
2006-07	158	206	227	191	84	77	174
2007-08	166	210	245	218	89	79	194
2008-09	194	239	314	262	83	69	215
2009-10	196	215	264	288	109.1	91.2	240.7
2010-11	223	243	304	311	102.3	91.8	279.0
2011-12	268	425	331	246	74.3	63.1	208.7
2012-13	284	459	357	261	73.1	61.9	220.9
2013-14	312	518	378	233	61.6	60.2	227.7
2014-15	300	518	397	235	59.2	57.9	229.9
2015-16	372	518	290	214	73.8	71.8	208.3
2016-17	372	523	313	220	70.3	71.1	222.6
2017-18	376	513	322	260	80.7	73.3	236.0

Note : 1). $Gross\ Terms\ of\ Trade = \frac{Quantum\ Index\ of\ Import}{Quantum\ Index\ of\ export} \times 100$

2). $Net\ Terms\ of\ Trade = \frac{Unit\ Value\ of\ Export}{Unit\ Value\ of\ Import} \times 100$

3). $Income\ Terms\ of\ Trade = Net\ Terms\ of\ Trade \times Quantum\ Index\ of\ export$

Source : Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics, Government of India.

trend during 2008-09 to 2017-18. The flow of imports was stronger than flow of export during this period. Gross terms of trade declined to 59.2 in 2014-15 mainly due to constant in the import. However, a favourable 80.7 in 2017-18 indicates that more imports are received on a given volume of the export.

The net terms of trade deteriorated since 2009-10 as a unit value index of import rise due to a sharp increase in the price of crude petroleum and of gold and other metals. The income terms of trade which measures the export's purchasing

ISSN : 2349-9273

(Table –III) Direction of India's foreign Trade (US$ million)

S. No.	Group/Country	2014-15 Export	%	Import	%	2018-19 Export	%	Import	%
1.	OECD	109337.0	35.2	120373.2	26.9	128175.5	38.8	144864.8	28.2
A	European Union in which	49511.4	15.9	49241.1	11	57203.1	17.3	58433.9	11.4
	i). Belgium	5519.5	1.8	10805.9	2.4	6729.9	2.0	10469.2	2.0
	ii). France	4956.7	1.6	4416.1	1.0	5232.6	1.6	6665.9	1.3
	iii) Germany	7597.3	2.4	12787.9	2.9	8902.4	2.7	15161.1	2.9
	iv). Italy	5092.3	1.6	4231.8	0.9	5593.4	1.7	5292.2	1.0
	v). Netherland	6324.7	2.0	2802.9	0.6	8812.6	2.7	4062.8	0.8
	vi). U.K.	9319.7	3.0	5018.3	1.1	9309.3	2.8	7562.1	1.4
B.	North America in which	44644.7	14.2	25564.0	5.6	55258.2	16.7	39064.9	7.6
	i). Canada	2196.0	0.7	3749.4	0.8	2851.4	0.9	3515.4	0.7
	ii) USA	42448.7	13.6	21814.6	4.9	52406.8	15.9	35549.5	7.0
C	Asia and Oceania in which	8489.8	2.7	20970.0	4.7	8762.0	2.7	26534.6	5.1
	i). Australia	2782.1	0.9	10247.2	2.3	3520.4	1.1	13131.2	2.6
	ii) Japan	5385.6	1.7	10131.4	2.3	4861.7	1.5	12772.6	2.5
D	Other OECD Countries in which	6690.9	2.1	24598.1	5.5	6952.2	2.1	20831.4	4.1
	i) Switzerland	1068.6	0.3	22133.2	5.0	1186.7	0.4	18076.7	3.5
2.	OPEC in which	56392.3	18.0	137155.0	30.2	48780.1	14.8	136546.7	26.6
A	Iran	4175.1	1.3	89550	19.7	3511.0	1.1	13525.6	2.6
B	Iraq	829.3	0.3	14247.7	3.1	1788.7	0.5	22372.5	4.4
C	Kuwait	1198.9	0.4	13382.0	3.0	1333.9	0.4	7430.8	1.4
D	Saudi Arabia	11161.4	3.6	28107.6	6.2	5561.7	1.7	28479.2	5.5
E	UAE	33028.1	10.6	26139.9	5.8	30126.3	9.1	29783.0	5.8
3.	Eastern Europe in which	3415.4	1.1	7716.0	1.7	3504.0	1.1	9465.7	1.8
A	Russia	2097.0	0.7	4249.2	1.0	2389.5	0.7	5840.4	1.1
4	Developing countries in which	136884.9	43.8	174903.9	38.5	146517.4	44.4	223010.1	43.4
A	Asia in which	93856.8	30.0	137505.6	30.3	108508.2	32.9	179875.0	35.0
i.	SAARC	20493.5	6.6	2930.6	0.6	25348.4	7.7	4339.6	0.8
	a. Afghanistan	422.6	0.1	261.9	0.06	715.4	0.2	435.4	0.1

power to the import have been improving consistently during 2010-18. Though the quantum Index of the import decreases and increasing unit value index of the imports coupled with an increasing unit value index and quantum value of export result in high income terms of trade which indicates favourable. **(See Table-III)**

Direction of India's Foreign Trade-

Table III witnessed that during 2014-15 to 2018-19 significant changes in the direction of India's foreign trade :

(1) Export to OECD countries which were of about 35.2 percent in 2014-15 have increased to 38.8 percent in 2018-19 Import from OECD countries has been also increased by26.9 percent in 2014-15 to 28.2 percent in 2018-19. This upward is observed in North America USA, Belgium, European Union and Australia.

(2) India's trade with developing countries of Asia, Africa and Latin America has shown an upward trend. The export to developing countries which was 43.8 percent in 2014-15 showing improvement and increase by 44.4 percent in 2018-19. In this there is marked improvement in SAARC, Bangladesh and Nepal. Asia whose share improved by 30 percent to 32.9 percent during this period. In this the share of People's Republic of China and Singapore are 5.1 percent and 3.5 percent respectively which showing an improvement in Export from India. Export to Africa and Latin American countries shows declined.

(3) So for as import are concerned, our import from developing countries has risen from 38.5 percent in 2014-15 to 43.4 percent in 2018-19. India's import alone from Asia for 35 percent in 2018-19. Import from SAARC region were barely 0.8 percent in 2018-19 followed by Bangladesh and Bhutan which was 3.5 percent and 3.3 percent respectively. People's Republic of China and Hong Kong was emerged in 2010-11 as India's largest trading partner.

(4) Our trade with OPEC has declined significantly export decreases from 18 percent in 2014-15 to 14.8 percent in 2018-19. Import is also declined by 30.2 percent in 2014-15 to 26.6 percent in 2018-19. This is due to increasing international price of oil and also the growing demand in India. Among the OPEC countries UAE is most important followed by Saudi Arabia.

(5) USA occupies the first place among individual countries with a share of about 15.9 percent in our export and second largest in terms of import with 7 percent in import followed by UAE who is very important trade partner with export 9.1 percent and import 5.8 percent.

(6) Eastern Europe, more especially Russia which occupied a very significant position in our foreign trade in the seventies has lost considerable in 2018-19, it just accounted for less than 1 percent of our foreign trade. This has happened more especially after the disintegration of USSR and the establishment of common wealth of Independent States (CIS) in 1992-93.

(7) With Africa, India's foreign trade has also began though of Africa in export was 7.3 percent and import share was 4.8 percent in 2018-19. However Africa is emerging as a small partner with grater potential in future.

(8) Australia, Japan and Switzerland together has 3 percent share in our export and 8.6 percent of import in 2018-19. Which has 2.8 percent export in 2018-19.

(9) China occupies the first place among individual countries with a share about 13.7 percent in our import and followed by North America with import share about 7.6 percent and export share about 16.7 percent.

(10) Latin America which accounted for barely 0.05 percent in export has improved its position to 0.06 percent in 2018-19. However there is a good scope for expanding trade with Latin America.

Composition of Trade -

The structural change in the composition of export is lagging behind the structural change in the composition of GDP. Much of India's economic growth has been the result of the expansion of its service sector. The share of manufacturing in the GDP has remained disappointingly flat. The share of export to India's economy comes down from close to 15 percent in 2014-15 to 11percent in

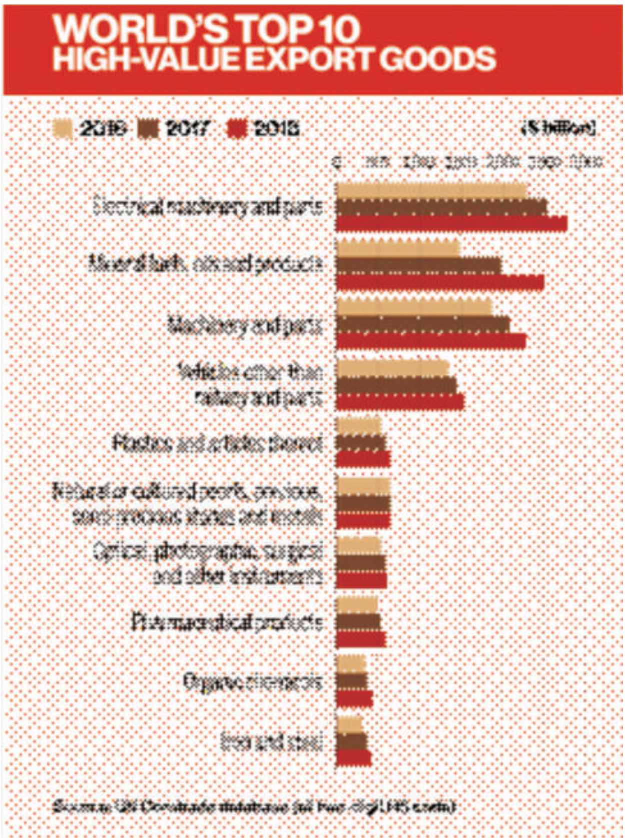

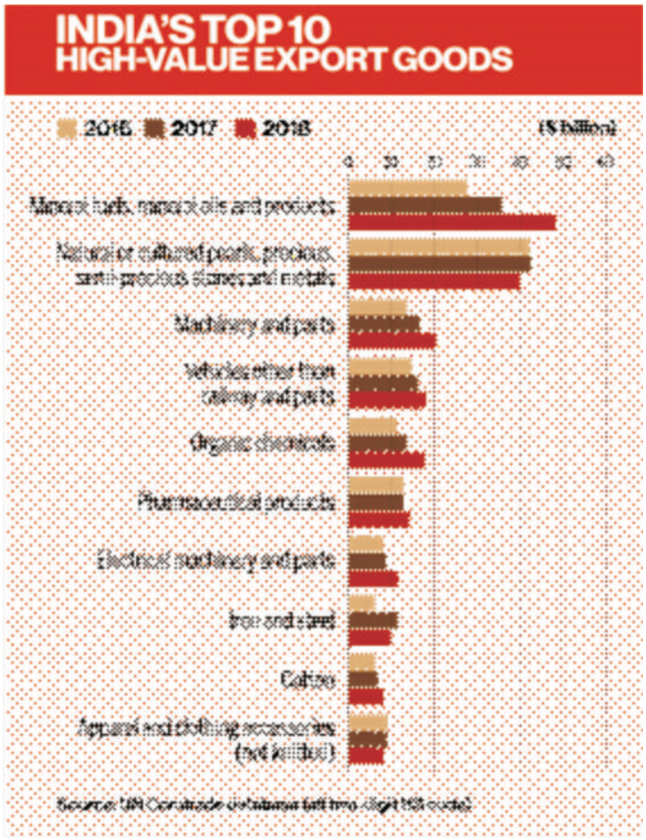

2018-19. The share of India's merchandise export to its GDP in 2014-15 was 14.75 percent given that the country's foreign shipment hit US$ 310.35 billion and the size of its economy was US$2103.588 billion. Immediately after demonetization in 2016 export logged US$ 262.29 billion, their lowest in 15 year and their percentage share to the GDP dropped to 10.40percent. Export of goods and services (% of GDP) in India was 19.74 percent in 2018 according to the World Bank collection of development.

There is a mismatch between high value export item in the world that of India. India need to shift focus from primary and low technology goods, to medium and high-tech goods by adopting technologies. This means more challenging time ahead of India. It would have to change direction from primary goods like cotton, cereals, fish meat etc, which figured out top 20 high value export item in 2018 and low tech products to high value medium and high tech manufacture goods.

The WTO's World Trade Statistical Review of 2019 which analyzed trade patterns between 2008 and 2018 says manufactured goods continue to dominate world trade with its share going up from 66 percent to 68 percent during this period, of the other two key components, fuels and mining products went down from 22 percent to 19 percent and agricultural products went up from 8 percent to 10 percent during this period.

Analysis of trade data shows medium and high tech manufacturing goods dominating the world export in US dollar term. The graph I below present the top 10 high value export goods for three years 2016, 2017 and 2018.

In contrast, India's export has a long presence of primary goods and two technology products. Moreover some of these items, like pharmaceuticals, oil products, out components and diamond are import dependent.

India has been struggling to achieve 2 percent share of the world export in US dollar. India's present share in world export reach from 1.5 percent to 1.7 percent between 2010 to 2018. Its share of top high value traded goods also remains poor. The table IV below gives India's share in the

TABLE IV India's share in the top 10 high Value Globally

Item	World ($bn)	India ($bn)	India's share (%)
All Products	19346.60	323.06	1.67
Electrical machinery and equipment and parts, sound recorder television	2779.68	11.97	0.42
Minerals fuels, mineral oils and products, bituminous substances mineral waxes	2506.62	48.29	1.93
Machinery, Mechanical appliances, nuclear reactors, boilers	2277.45	20.40	0.90
Vehicles other than railway or tramway rolling stock and parts and accessories	1534.86	18.24	1.19
Plastics and articles thereof	656.18	7.84	1.20
Natural or cultured pearls, precious or semi-precious stones, metals	652.39	40.10	6.15
Optical, photographic, Cinematographic precision, surgical instrument etc	613.80	3.21	0.52
Pharmaceutical products	587.48	14.28	2.43
Organic chemicals	444.65	17.74	3.99
Iron & steel	422.71	9.98	2.36

Source : UN comtrade database (all two-digit HS code)

top 10 high value globally.

Targets of Foreign Trade Policy 2015-20 -

(1) Increase export to US$ 900 billion by 2019-20 from US$ 466 billion in 2013-14.

(2) Raise India's share in world export from 2% to 3.5%.

(3) FTP to be aligned to "Make in India", "Digital India and "Skill India" initiatives with paperless working in 24 x 7 environments.

(4) Unlike annual reviews, FTP will be reviewed after two and half years except for exigencies.

Key measures have taken by Govt. of India for promotion of export-

(1) A new Foreign Trade Policy (FTP) 2015-20 was launched on 1st April 2015. The policy rationalized the earlier export promotion scheme and introduced two new schemes, namely Merchandise Exports from India Scheme (MEIS) for improving export of goods and services from India and Scheme SETS for increasing exports of services. Duty credit scripts issued under these schemes were made fully transferable.

(2) The mid term review of the was undertaken on 5th December 2017. Incentive rates for labour intensive/MSME sectors were increase by 2% with a financial implication of ` 8450 crore per year.

(3) A new Logistics Division was created in the department of commerce to co-ordinate integrated development of the logistics sector. India's rank in World Bank's logistics performance

index moved up from 54 in 2014 to 44 in 2018.

(4) Interest equalization scheme on pre and post shipment rupee export credit was introduced from 01-04-2015 providing interest equalization at 3% for labour intensive/MSME sector. The rate was increased to 5% for MSME sectors with effect from 01-11-2018 and merchant exporters were covered under the scheme with effect from 02-01-2019.

(5) Various measures for improving ease of doing business were taken. India's rank in World Bank ease of doing business ranking improved from 142 in 2014 to 77 in 2018 with the rank in trading across borders moving up from 122 to 80.

(6) A new scheme called Trade Infrastructure for export scheme (TIES) was launched with effect from 1st April 2017 to address the export infrastructure gap in the country.

(7) A comprehensive Agriculture export Policy was launched on 6th December 2018 with an aim to double farmer's income by 2022 and provide on impetus to agricultural exports.

(8) A new scheme called Transport and Marketing Assistance (TMA) scheme has been launched for mitigating disadvantage of higher cost of transportation for export of specified agriculture products.

(9) A new scheme called scheme for Rebate of State and Central Tax and Levies covering export of garments and made ups was notified on 07-03-2019 providing refund of duties / taxes at higher rates.

(10) In August 2019, Ministry of Commerce plans to introduce new foreign trade policy aimed at providing incentives and guidelines for increasing export in next five financial year 2020-25.

(11) As of September 2018, Government of India increased the duty incentives for 28 milk item under the merchandise Export from India Scheme (MEIS).

(12) All export and import related activities are governed by the Foreign Trade Policy (FTP) which aimed at enhancing the country's export and use trade expansion as on effective instrument of economic growth and employment generation.

(13) The Department of Commerce has announced increased support for export of various products and included some additional items under the merchandise Export from India Scheme (METS) in order to help exporters to overcome the challenges faced by them.

(14) The Central Board of Excise and Customs (CBEC) has developed an integrated declaration process leading to the creation of a single window which will provide the importers and exporters a single point interface for customs clearance of import and export goods.

(15) RBI has simplified the rules for credit to exporters, through which they can now get long-term advance from bank for up to 10 years to service their contracts. This measure will help exporters get into long-term contracts while aiding the overall export performance.

(16) Among the major policy measures to boost export, the ministry has earmarked 12 champion sectors to be given special attention to enhance their competitiveness create more job and increase exports. These include IT/ITs, Tourism and Hospitality Services, Medical Value Travel, Transport and Logistics Services, Accounting and Finance Services, Audio Visual Services, Legal Services, Communication Services, Construction and Related, Engineering Services, Environment Services Financial Services and Education Services.

(17) India's service sector's share in global service exports stood at 3.3% in 2015 and the target is to increase it to 4.2% by 2022.

(18) The Ministry has also announced India's first ever Agri-Export policy, which aim to enhance India's export to US$ 60 billion by 2022. Policy measures aim to integrate India's agricultural products with global value chains and double its share in world agriculture thereby boosting farmer income.

Conclusion -

It may be conclude that composition and direction of India's Foreign Trade indicated that the

Indian economy is being diversified and traditional as well as non-traditional commodities exports are also of growing nature. The share of developing countries, OECD has shown improvement in their contribution to India's Foreign Trade. However with Asian countries there is an improving uptrend both in export and import. The share of manufacturing has marginally fallen in the GDP and significantly fallen in the share of export. The growth of service was more pronounced in the GDP growth and is reflected in the increasing share of services in the export. While the volume growth dominated the export performance, there is an increasing contribution of higher unit value reflected in the net terms of trade. The demand for imports is bound to increase due to the envisaged growth of the economy raw materials, capital goods components and energy. The trade gap could only be dealt with by increasing India's export. Thus, to sustain a higher rate of growth while keeping the current account deficits under control and to make the Indian Industry competitive, it is imperative to increase the country's export at a fast pace.

No doubt of FTP and its annual supplements also provide various information and facilities to the exporter and importer for the well result and created favorable climate for the boost of foreign trade in India. There are welcome signals in the direction of India's foreign trade.

Reference

- Reserve Bank of India: Handbook of statistics 2018-19.
- Manmohan Singh India's Export Trends.
- Planning Commission: Five year plan.
- Reserve Bank of India Bulletin: Jan 2020.
- Directorate General of Commercial Intelligence and Statistics, Government of India Annual report 2017-18.
- India's Import – Export Historical datea Graphs per year.
- Nelson CA (2000) Import / Export: How to get started in international trade, Tata MC Grow Hill USA.
- UN Comtrade database (all two digit H.S. Code).
- World Trade Statistical Review 2019.
- Handbook of Statistics on the Indian Economy 2017-18.
- B.A. Prakash. The Indian economy since 1991 PEARSON.
- Gaurav Datt, Ashwani Mahajan Datt & Sundharam Indian Economy S. Chand & Company Ltd.

◈◈

रिसर्च जर्नल के? लेखकों को विशेष निर्देश

मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल में पेपर प्रकाशित कराने के? लिए पाँच प्रमुख बातों का ध्यान रखना बहुत ही आवश्यक? है-

(1) रिसर्च जर्नल पत्रिका के? क्रमानुसार चार पेज (ए फोर) से कम नहीं होना चाहिए।

(2) रिसर्च जर्नल में कम से कम आठ सन्दर्भ **(References)** ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार के नाम सहित होना आवश्यक? है।

(3) रिसर्च जर्नल में शोध कर्ता अथवा प्रोफेसर का नाम, पद, कालेज का पता, ऊपर अंकित होना चाहिए।

(4) नवीनतम एक? पासपोर्ट साइज फोटोग्राफ? एवं ई-मेल एड्रेस।

(5) रिसर्च जर्नल में प्रमाण-पत्र हेतु आपके? निवास का पता अंकित होना जरूरी है।

यह आप सभी के? सौहार्द का ही परिणाम है कि? आपके? बौद्धिक विचारों को **'अभिनव गवेषणा'** ?(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल) के माध्यम से पाठकों तक? पहुँचाने का सुअवसर मिल रहा है। विस्तृत जानकारी हेतु कार्यालय अथवा मोबाइल पर सम्पर्क करें? **- प्रबन्ध सम्पादक?**

सम्पर्क- 08896244776, 09335597658

ISSN : 2349-9273

ब्रह्माण्डोत्पत्ति

- डॉ. प्रभाषलता बाजपेयी
प्रवक्ता - भूगोल विभाग,
डॉ. राम मनोहर लोहिया पी. जी. कालेज, खजूलोन-रायबरेली (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल : prabhaslatabajpai@gmail.com

सारांश

वेद, पुराण, ज्योतिष-ग्रन्थ, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रों, निहारिकाओं, उल्काओं, धूम्रकेतुओं इत्यादि ग्रहों की सम्पूर्ण जानकारी ही ब्रह्माण्ड का विषय है। अतः ब्रह्माण्ड क्या है? इस विषय का वृहद उल्लेख ही ब्रह्माण्ड विज्ञान कहलाता है। समस्त प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड विज्ञान करो चिन्तन का प्रथम विषय स्वीकार किया गया है तथा सृष्टि रचना, सृष्टि चिन्तन-शक्ति और उसके दैहिक भौतिक तथा आधिभौतिक स्वरूप के तथ्यों की तर्कपूर्ण व्याख्या की गयी है। पुराणों में ब्रह्माण्ड विज्ञान का अपना विशिष्ट स्थान है। आज से करीब हजार वर्ष पूर्व अर्थात् पृथ्वी पर मानव के आविर्भाव काल से लेकर आज तक वह अपने समयानुकूल ब्रह्माण्ड के विषय में कुछ न कुछ जानकारी अवश्य देता आया है। परन्तु ब्रह्माण्ड के आदि और अन्त का बोध प्राचीन काल से लेकर वर्तमान के वैज्ञानिक युग तक नहींहो पाया है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण पिण्डों की जानकारी की जिज्ञासा मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही चली आ रही है। वास्तव में अनन्त काल से अन्तरिक्ष में चमकते तारे मानव के लिए आश्चर्य और रहस्यमय बने हैं। इस विषय की सम्पूर्ण जानकारी के लिए मानव ने विभिन्न साधनों, सिद्धान्तों और विविध कल्पनाओं का सहारा लिया। हमारे देश के ऋषियों द्वारा लिखे गये प्राचीन ग्रन्थ इस दिशा में सदैव अग्रणी रहे हैं। आज से छः हजार वर्ष पूर्व अक्षरों की खोज हुई थी। अक्षरों की खोज के पूर्व मानव ब्रह्माण्ड के विषय में क्या सोचता था? आकाश के जाज्वल्यमान और टूटते-गिरते तारों के बारे में उसके क्या विचार थे? इनकी जानकारी में हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं, किन्तु इतना यथार्थ है कि पौराणिक काल के मानव को ब्रह्माण्ड का ज्ञान अवश्य था। कूर्म पुराण में ब्रह्माण्ड को गगन, व्योम, नभ, आकाश और अन्तरिक्ष आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। पृथ्वी के ऊपर ब्रह्माण्ड में प्रतिदिन दृष्टिगोचर होने वाले सूर्य, चन्द्र और असंख्य नक्षत्र मण्डल, ठोस द्रव्य, गैसीय अथवा अग्नि पिण्ड के रूप में विद्यमान है, उन्हें आकाशीय पिण्ड कहते हैं। इन्ही को कूर्म पुराण में ज्योर्तिमय कहा गया है।

ब्रह्माण्ड का शाब्दिक अर्थ है 'अण्डाकार भुवन कोष' जिसके यह सारा जगत उत्पन्न हुआ। विश्व का शाब्दिक अर्थ 'चौद भुवन का समूह', समस्त ब्रह्माण्ड, संसार, जगत, दुनिया। भौगोलिक भाषा में पृथ्वी के ऊपर दृष्टिगोचर होने वाले आकाश को ब्रह्माण्ड तथा वैज्ञानिक भाषा में अन्तरिक्ष कहते हैं। अतः परिभाषा से स्पष्ट है कि ब्रह्माण्ड एवं विश्व की उत्पत्ति केवल एक ही बीज या मूल तत्व द्वारा हुई है जिसका प्रथम कारण ईश्वर है। इसी एक तत्व को आधार मानकर प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक के विभिन्न विद्वानों और वैज्ञानिकों ने अनेकानेक परिकल्पनाओं तथा अवधारणाओं की कल्पना की। इसकी व्याख्या में अधिकांशतः ऐतिहासिकता झलकती है। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिकों ने भी उपकरणों एवं

तकनीक द्वारा विश्व या ब्रह्माण्ड को समझने का अथक प्रयास किया है किन्तु मानवीय ज्ञान की अपूर्णता या विश्व के बृहद फैलाव के कारण ब्रह्माण्ड की सही जानकारी नहीं हो पायी है।

वेद, पुराण, ज्योतिष-ग्रन्थ, पृथ्वी, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रों, निहारिकाओं, उल्काओं, धूम्रकेतुओं इत्यादि ग्रहों की सम्पूर्ण जानकारी ही ब्रह्माण्ड का विषय है। अतः ब्रह्माण्ड क्या है? इस विषय का वृहद उल्लेख ही ब्रह्माण्ड विज्ञान कहलाता है।[1] समस्त प्राचीन ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड विज्ञान करो चिन्तन का प्रथम विषय स्वीकार किया गया है तथा सृष्टि रचना, सृष्टि चिन्तन-शक्ति और उसके दैहिक भौतिक तथा आधिभौतिक स्वरूप के तथ्यों की तर्कपूर्ण व्याख्या की गयी है। पुराणों में ब्रह्माण्ड विज्ञान का अपना विशिष्ट स्थान है। आज से करीब हजार वर्ष पूर्व अर्थात् पृथ्वी पर मानव के आविर्भाव काल से लेकर आज तक वह अपने समयानुकूल ब्रह्माण्ड के विषय में कुछ न कुछ जानकारी अवश्य देता आया है। परन्तु ब्रह्माण्ड के आदि और अन्त का बोध प्राचीन काल से लेकर वर्तमान के वैज्ञानिक युग तक नहीं हो पाया है। ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण पिण्डों की जानकारी की जिज्ञासा मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही चली आ रही है। वास्तव में अनन्त काल से अन्तरिक्ष में चमकते तारे मानव के लिए आश्चर्य और रहस्यमय बने हैं। इस विषय की सम्पूर्ण जानकारी के लिए मानव ने विभिन्न साधनों, सिद्धान्तों और विविध कल्पनाओं का सहारा लिया। हमारे देश के ऋषियों द्वारा लिखे गये प्राचीन ग्रन्थ इस दिशा में सदैव अग्रणी रहे हैं। आज से छः हजार वर्ष पूर्व अक्षरों की खोज हुई थी।[2]

अक्षरों की खोज के पूर्व मानव ब्रह्माण्ड के विषय में क्या सोचता था? आकाश के ज्ञावल्यमान और टूटते-गिरते तारों के बारे में उसके क्या विचार थे? इनकी जानकारी में हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं, किन्तु इतना यथार्थ है कि पौराणिक काल के मानव को ब्रह्माण्ड का ज्ञान अवश्य था। कूर्म पुराण में ब्रह्माण्ड को गगन, व्योम, नभ, आकाश और अन्तरिक्ष आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। पृथ्वी के ऊपर ब्रह्माण्ड में प्रतिदिन दृष्टिगोचर होने वाले सूर्य, चन्द्र और असंख्य नक्षत्र मण्डल, ठोस द्रव्य, गैसीय अथवा अग्नि पिण्ड के रूप में विद्यमान है, उन्हें आकाशीय पिण्ड कहते हैं। इन्ही को कूर्म पुराण में ज्योर्तिमय कहा गया है।

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को तथ्य स्वरूप प्रदान करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध काल गणना और ब्रह्म दिवस के महत्व का अध्ययन आवश्यक है। वेदों एवं पुराणों में ब्रह्माण्ड-उत्पत्ति का उल्लेख क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। कूर्म पुराण में उल्लेख है कि सर्वप्रथम परम तेजमय परमेश्वर से ज्ञान एवं प्रकृति की उत्पत्ति हुई है, उससे परमाणुओं से व्याप्त आकाश की उत्पत्ति हुई है। परमाणुओं से युक्त आकाश में क्षोभ अर्थात् हलचल उत्पन्न होने के पश्चात आत्मा, मति, ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति और संवित् की उत्पत्ति हुई।[3] तैत्तरीय उपनिषद् में उल्लेख है कि ब्रह्मात्मा से ब्रह्माण्ड निकला, ब्रह्माण्ड से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति, वनस्पति से औषधि अर्थात् वनस्पति से अन्न की उत्पत्ति हुई।[4]

विश्व सृजन की इस प्रक्रिया का आशय यह है कि ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण पिण्ड (नक्षत्र, आकाश, गंगा, निहारिका, सौरमण्डल, ग्रह-उपग्रह आदि) एक ही प्रकार के आदि पदार्थ अथवा विश्व पदार्थ से निर्मित है। किन्तु ये सब एक साथ नहींनिर्मित हुए, बल्कि इनके विभिन्न रूपों का विकास पदार्थ की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होता है। प्रारम्भिक अवस्था में विश्व पदार्थ शक्ति के रूप में होता है और इसी शक्ति से सर्वप्रथम वायव्य मेघ का निर्माण होता है उस वायव्य मेघ के घनीभूत हो जाने पर उसमें धूलिका की उत्पत्ति होती है तत्पश्चात वही पदार्थ सघन होकर निहारिका, नक्षत्र, सूर्य इत्यादि के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

ब्रह्माण्ड सम्बन्धी तथ्यों की जानकारी पुराणों में ही नहीं बल्कि, वेद, रामायण, महाभारत, भागवत गीता आदि प्राचीन ग्रंथों में भी मिलती है। भारतीय संस्कृत साहित्य की निधि वेदों में ब्रह्माण्ड रचना प्रथक-प्रथक बतायी हुई है लेकिन सभी का अभिमत एक ही है। आलोच्य पुराण मूल वेदों में निहित हैं। यही कारण है कि वेदों के ब्रहमाण्डोत्पत्ति सिद्धान्त का पुराणकार पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अतः कूर्म पुराण के ब्रह्माण्डोत्पत्ति क्रम को निम्नलिखित चार विधियों में वर्गीकृत किया गया है -

1- ब्रह्माण्ड की कलात्मक उत्पत्ति

2- ब्रह्माण्ड की यान्त्रिक उत्पत्ति

3- ब्रह्माण्ड की दार्शनिक उत्पत्ति

4- ब्रह्माण्ड की उपकरणात्मक उत्पत्ति

1- ब्रह्माण्ड की कलात्मक उत्पत्ति -

ब्रह्माण्ड उत्पत्ति की इस रचना को कलात्मक या विश्वकर्मा विधि कहा गया है।[5] सृष्टि की रचना कलात्मक विधि से की गयी है, जिसमें परमेश्वर को प्रमुख सृष्टि निर्माण कर्ता स्वीकार किया गया है। उसके विभिन्न गुणों को देवताओं की

संज्ञा प्रदान की गयी है। ऋग्वेद में ब्रह्माण्ड सृजन हेतु प्रयोग किए जाने वाले पदार्थ को 'अन्तरिक्ष धूलि' माना गया है।[6] ब्रह्माण्ड संरचना में विश्वकर्मा को प्रमुख वास्तुविद बताया गया है। ब्रह्माण्ड की रचना उसी भाँति हुई जिस भाँति किसी गृह का निर्माण विभिन्न कारीगरों द्वारा किया जाता है। पुराण में सृजन तत्व को प्राचीन शक्ति तत्व माना गया है। शक्ति के इस तत्व को अव्यक्त और प्रकृति कहा गया है। प्रत्येक तत्व में एक शक्ति होती है जैसे अग्नि में दाहकता की शक्ति। इसी तरह परमेश्वर रूपी विश्वकर्मा में सृष्टि करने की शक्ति विद्यमान है। सृष्टि की इन शक्तियों में, ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रमुख माना गया है। ब्रह्माण्ड रचना का आधार जल, आकाश, वायु और विष्णु का शरीर बताया गया है। इस सृष्टि में तीन लोकों अन्तरिक्ष, पृथ्वी और स्वर्ग की कल्पना की गयी है।[7] मत्स्य पुराण के अनुसार भगवान विष्णु ने ब्रह्माण्ड की रचना में ऊपर वाले भाग को आकाश, नीचे के भाग को रसातल तथा मध्य के भाग को पृथ्वी बताया है।[8]

2- ब्रह्माण्ड की यान्त्रिक विधि -

यान्त्रिक उत्पत्ति में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति आदि विराट पुरुष से हुई है। इस विराट पुरुष को विश्व का आत्मा माना गया है। यही समस्त विश्व के बीज का केन्द्रक है तथा इसी केन्द्र के विखण्डित होने से पृथ्वी, आकाश, वायु, चन्द्र एवं सूर्य और अन्य आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति हुई है। इस पृथ्वी के समस्त जीवधारी और मानव उसी आत्मा के विखण्डन का परिणाम है।[9]

आलोच्य पुराण एवं भागवत पुराण में विराट पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है। विराट पुरुष के तलवे - पाताल लोक, एड़ियाँ और पंजे - रसातल, पैर के पिण्ड - तलातल, दोनों घुटने - सुतल जंघाए - वितल और अतल, पेट-भूतल, नाभि - सरोवर और आकाश, वक्षस्थल - स्वर्गलोक , गला - मर्हिलोक, बदन - जनलोक, ललाट - तपोलोक, मस्तक - सत्यलोक, बाहुंए - इन्द्र आदि देव, कर्ण, -दिशाएँ, मुख-अग्नि, नेत्र - सूर्य, तालु-जल, जिह्वा - रस, कोख -समुद्र, अस्थियाँ - पर्वत, नाड़िया - नदियाँ, रोम-वृक्ष और स्वास - वायु के रूप है।[10]

आलोच्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों - आधे में पुरुष और आधे में नारी रूप में प्रकट किया। पुरुष रूप में विराट की सृष्टि की। विराट ने तप करके एक मनु पुरुष को उत्पन्न किया। मनु ने सृष्टि की कामना से ब्रह्माण्ड और चराचर की उत्पत्ति की।[11] महाभारत की शान्ति पर्व में ब्रह्माण्ड की रचना अव्यक्त से बतायी गयी है। इसमें सर्वप्रथम महान (विराट) से आकाश की उत्पत्ति हुई बताया गया है। इन सभी तत्वों के सम्मिश्रण से पृथ्वी संरचना बताई गई है।[12] सृष्टि के पूर्व यही महाशक्ति आदि पुरुष में विद्यमान थी इसीलिए इन्हें आदि पुरुष कहा गया है। तथा जन्म न होने के कारण 'अज' एवं सभी प्रजाओं की रक्षा करने के कारण 'प्रजापति', उत्पन्न न होने एवं सबसे पूर्ववर्ती होने के कारण 'स्वयंभू' तथा 'नर' (जल) में सोने के कारण 'नारायण' कहा गया है।[13] वस्तुतः इस विराट पुरुष के केवल एक अंग से इस ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है।

3- ब्रह्माण्ड की दार्शनिक उत्पत्ति -

ब्रह्माण्डोत्पत्ति के दार्शनिक स्वरूप के सिद्धान्त का अभिप्राय गीत या स्वर है। कूर्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने योग निद्रा से जागने के बाद सृष्टि के सृजन का संकल्प लेकर अपने मन को नियुक्त किया। मन ने सृष्टि सृजन हेतु सर्वप्रथम आकाश बनाया, आकाश का विलक्षण गुण शब्द है, फिर आकाश ने अपने को परिमार्जित करके वायु की रचना की जिसका गुण स्पर्श। वायु से अग्नि की उत्पत्ति हुई जिसका गुण रूप है, अग्नि से जल उत्पन्न हुआ जिसका गुण गन्ध है।[14]

विष्णु पुराण के अनुसार 'ब्रह्म' के पूर्व के सृष्टि के आदि में न सत् था न असत् न आकाश था न वायु मण्डल में रात थी न दिन था केवल ब्रह्म को छोड़कर शून्य था।[15]

मत्स्य पुराण में आया है कि सर्वप्रथम नारायण अवतरित हुए नारायण ने विश्व सृष्टि की कामना से अपने शरीर से सतों गुणों, रजो गुण और तमो गुणों से ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न किये इसके बाद पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा तेइस तत्वों के समूह में प्रविष्ट होकर नारायण ने इन तत्वों को मिलाकर एक परिमाण प्राप्त किया। यही परिमाण विश्व संरचना के तत्वों का गर्भ था जिससे ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई।[16]

आलोच्य पुराण के अनुसार ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम 'ब्रह्मा' उत्पन्न हुए जिसे अव्यक्त, कारण, नित्य, सत्-असत्, रूप प्रधान तथा प्रकृति पुरुष भी कहा गया है। यह अनादि और अनन्त अजन्मा पुरुष है। ब्रह्मा ने सृष्टि के समय प्रकृति और पुरुष में शीघ्र प्रवेश करके परम योग से क्षोभ अर्थात हलचल उत्पन्न किया तथा महान तत्व बीज हिरण्यगर्भ (सोने का अण्डा) को जन्म दिया। तत्पश्चात महदादि से लेकर विशेषो से उत्पन्न जल के बुलबुले के समान जल में प्रतीत होने वाला 'वृहद अण्ड' सृष्ट होकर जलाशायी हुआ। इसी प्रकृत अण्ड को 'क्षेत्रज्ञ' 'ब्रह्म' के नाम से जाना गया। यह प्रथम शरीरी तथा पहला

पुरुष कहा जाने लगा जिसे पुरुष हिरण्यगर्भ कहा गया। इसी हिरण्यगर्यभ से मनुष्य, असुर, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, गृह और वायु सहित विश्व की सृष्टि हुई।[17]

अतः स्पष्ट होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड परमेश्वरमय है। यह एक अनोखी शक्ति है जो सभी को निरन्तर गतिमान रखती है।

4- ब्रह्माण्ड की उपकरणात्मक विधि -

ब्रह्माण्ड की उपकरणात्मक उत्पत्ति का आधार प्रधान देह (तत्व) की उपस्थित को माना गया है। पृथ्वी और स्वर्ग के मेल के कारण परिमाण स्वरूप सूर्य की उत्पत्ति हुई बतायी गयी है। इस सूर्य देव सृष्टि रचना का मूल स्रोत माना गया है। इसमें सूर्य को ब्रह्मा की आत्मा, सम्पूर्ण लोक के ईश्वर, महादेव, प्रजापति, त्रिलोकी के मूल और परम देवता बताया गया है। पुराण के अनुसार जब यह विश्व अज्ञात अन्धकार में अवस्थित होकर गम्भीर योगनिद्रा में निमग्न था तथ स्वयंभू अपनी शक्ति से अन्धकार को हटाकर महान तत्वों के साथ प्रादुर्भाव हुए। स्वयंभू ने विश्व को अपने शरीर से उत्पन्न करने की इच्छा से सर्वप्रथम जल की उत्पत्ति की, जल में अपना बीज लगाया। यह बीज हिरण्यगर्भ (सुवर्ण का अण्डा) बन गया। यह हिरण्यगर्भ तेज में सूर्य के समान था। इस अण्डे से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्हें नारायण कहते हैं। नारायण ने हिरण्यगर्भ को दो भागों में बांटकर पृथ्वी और स्वर्ग की उत्पत्ति की। इन दोनों के मद्य अन्तरिक्ष, आठ दिशाएँ, समुद्र और पंच तत्वों से जीव की उत्पत्ति की।[18]

अतः जिस प्रकार वायु में धूल के नन्हें-नन्हें कण उड़ते रहते हैं उसी प्रकार उत्तरोत्तर दस गुण अधिक पृथ्वी आदि सात आवरणों के साथ समस्त ब्रह्माण्ड समूह काल चक्र के संत तक एक साथ घूमता रहता है।

ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विचार -

ब्रह्माण्ड क्या है? विश्व क्या है? इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सृष्टि कारक कौन है? आदि का विस्तृत विवेचन इसी अध्याय में पौराणिक आधार पर किया जा चुका है। इसमें ब्रह्माण्ड (विश्व) की उत्पत्ति हिरण्यगर्भ, सत्, असत् और अव्यक्त के एक पिण्ड से बतायी गयी है। पुराणों के ब्रह्माण्ड अध्ययन सम्बन्धी विषय में तत्व मीमांसा, दर्शन, खगोल और भूगोल आदि सभी विषयों का समन्वय मिलता है। इस तरह वर्तमान आधुनिक संकल्पनाओं के संदर्भ में पैराणिक कल्पनायें पूर्णतः स्पष्ट नहीं है, किन्तु इतना सत्य है कि ब्रह्माण्डोत्पत्ति का पौराणिक अध्ययन आधुनिकता से संवलित है। इन पौराणिक कल्पनाओं की आधुनिक विचारों से साम्यता की जा सकती है। केवल पौराणिक और आधुनिक दोनों का विचार प्रस्तुतीकरण अलग-अलग ढंग का है। पुराणों में वर्णित ब्रह्माण्डोत्पत्ति वर्तमान वैज्ञानिक विचारधारा से पूर्णतः मेल खाती है। आज का खगोल विज्ञान भी ब्रह्माण्डोत्पत्ति को पौराणिक आधार पर ही मानती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- भौगोलिक विचारधाराएं एवं विधितन्त्र - एस. डी. कौशिक - रस्तोगी

2- सौर मण्डल - गुणाकर मुले - राजकमल प्रकाशक, नयी दिल्ली, 1994, पृष्ठ 13

3- कूर्म पुराण - 4-15, 17

4- तैत्तरीय उपनिषद - 2-3-1

5- भौगोलिक विचारधाराओं का इतिहास - माजिद हुसैन - रावत पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ 57

6- ऋग्वेद - 10-8-1-82

7- कूर्म पुराण - 4-56

8- मत्स्य पुराण - डॉ. राम प्रसाद त्रिपाठी - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - अध्याय-248-4, 5, 6

9- भौगोलिक विचारधारा का इतिहास - माजिद हुसैन, पृष्ठ 57-58

10- भागवत स्कन्ध पुराण - 2 - अध्याय-1-10-11, कूर्म पुराण-1-58

11- कूर्म पुराण-8-6, 8, 9

12- महाभारत शान्ति पर्व - 175-11-12, 182-11-21

13- कूर्म पुराण - 6-5

14- कूर्म पुराण - 4-24, 28

15- विष्णु पुराण - 1-2-23-24

16- मत्स्य पुराण - 2-27, 3-5-8

17- कूर्म पुराण - 4-41

18- कूर्म पुराण - 4-41 - 56-58

◈◈

ISSN : 2349-9273

भगवान राम का आदर्श व्यक्तित्व

- डॉ. अरविन्द कुमार चतुर्वेदी
प्रवक्ता संस्कृत विभाग,
पं. रामदत्त त्रिपाठी महाविद्यालय,
झींझक-कानपुर देहात (उ. प्र.)

ई-मेल :
drarvindchaturvedi6062@gmail.com

'आशंसेनिव्यमानन्दं रामनामकथामृतम्।
सिद्धिः स्वश्रवणैर्नित्यं पेयं पाप प्रणोदितुम्।।'

अखण्ड कोटि ब्रह्माण्ड नायक राम सिर्फ एक नाम ही नहीं अपितु राम हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक विरासत हैं, राम हिन्दुओं की एकता और अखण्डता का प्रतीक हैं। राम सत्, चित्, आनन्द घन, ज्योति पुञ्जक राम नाम जो सनातन धर्म की मेरूदण्ड के सदृश धर्म की पहचान है-

'राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।' एवं
'जब जब होई धरम की हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।।'

लेकिन आज हिन्दू धर्म के कुछ लोगों ने ही राम को रणनीति का साधन बना लिया है। अपनी ही सांस्कृतिक विरासत पर सवाल उठाते हैं। राम के अस्तित्व का प्रमाण माँगते हैं, जब कि राम सिर्फ दो अक्षरों का नाम ही नहीं, अपितु प्रत्येक प्राणी में रमा हुआ है। राम चेतना और सजीवता का प्रमाण हैं। अपितु राम नहींतो जीवन मरा है। इस नाम में तो इतनी ताकत है कि मरा-मरा करने वाला व्यक्ति भी राम-राम करने लगता है। इस नाम में वह शक्ति है जो हजारों-लाखों मंत्रों के जाप में भी नहीं है-

'उल्टा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।'

पुराणों एवं वेदों के अनुसार हिन्दू धर्म में भगवान विष्णु के दशावतारों का उल्लेख है। राम भगवान विष्णु के सातवें अवतार के रूप में माने जाते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य रामायण के रूप में लिखा गया, तदोपरान्त आध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण इत्यादि कलिकाल के समय तुलसीदास जी ने भक्ति काव्य धारा को एवं राम के आदर्शों को समाज में पुरस्कृत करने हेतु रामचरित मानस की रचना की, जिसकी प्रामाणिकता भूत भावन विश्वनाथ ने सर्वोपरि की।

भगवान राम आदर्श व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। परिदृश्य अतीत का हो या वर्तमान का, पूरा जीवन आदर्शों, संघर्षों को खूब समझा-परखा है। राम का पूरा जीवन आदर्शों, संघर्षों से भरा पड़ा है। राम सिर्फ एक आदर्श पुत्र ही नहीं, आदर्श पति और भाई भी थे, जो व्यक्ति संयमित, मर्यादित और संस्कारित जीवन जीता है, निःस्वार्थ भाव से उसी में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आदर्शों की झलक परिलक्षित हो सकती है। राम के आदर्श लक्ष्मण रेखा के उस मर्यादा के समान है, जो लाँघी तो अनर्थ ही अनर्थ, जो सीमा मर्यादा में रहे तो खुशहाल या सुरक्षित जीवन। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव एवं उनके महान चरित्र की उच्च वृत्तियाँ जनमानस को शान्ति एवं आनन्द उपलब्ध कराती हैं। सम्पूर्ण भारतीय समाज के जरिये एक समान आदर्श के रूप में भगवान श्रीराम को उत्तर से लेकर दक्षिण तक सम्पूर्ण जनमानस ने स्वीकार किया है।

महाकवि बाल्मीकि ने उनके सम्बन्ध में लिखा है, कि वे गाम्भीर्य में उदधि

(सागर) के समान एवं धैर्य में हिमालय के समान हैं। राम के चरित्र में पग-पग पर मर्यादा, त्याग, प्रेम और लोक व्यवहार के दर्शन होते हैं। राम ने साक्षात् परमात्मा होकर भी मानव जाति को मानवता का सन्देश दिया। उनका पवित्र चरित्र लोकतंत्र का प्रहरी, उत्प्रेरक और निर्माता भी है। इसीलिए भगवान श्रीराम का जनमानस पर गहरा प्रभाव है और युगों-युगों तक ये प्रभाव अमिट रहेगा।

भगवान श्रीराम के जन्म के रहस्य को राजनीतिक तूल देते हुए जन्मतिथि को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं, जब कि श्रीरामकी कथा भारतीय संस्कृति में रची-बसी है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम का जीवन चरित्र लोगों की सही मार्ग पर चलने की शिक्षा देता रहा है। क्या भगवान राम कल्पना हैं? आखिर हमारे पास भगवान राम के सच होने का क्या प्रमाण हैं। कहा जाता है कि पाँचवींसे चौथी शताब्दी ईसा पूर्व को जिस काल का ऋग्वेद का काल कहा जाता है, तभी महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना की थी, किन्तु अब तक इतिहासकारों की राय बंटी हुई थी, लेकिन अब तक इस बात का सच होने का वैज्ञानिक एवं ज्योतिष प्रमाण भी मिल गया है।

दिल्ली में स्थित एक संस्थान इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटीफिक रिसर्च ऑन वेदा यानि आई सर्वे ने लम्बे वैज्ञानिक शोध के बाद चौंकाने वाला दावा किया है। आई सर्वे ने आधुनिक विज्ञान से जुड़ी नौ विद्याओं- अन्तरिक्ष विज्ञान, जेनेटिक्स, ज्योलॉजी, एक्योलॉजी और स्पेश इमरजेन्सी पर रिसर्च के आधार पर दावा किया है। भारत में पिछले 10 हजार साल से सभ्यता लगातार विकसित हो रही है, वेद और रामायण में विभिन्न आकाशीय और खगोलीय स्थितियों का जिक्र मिलता है, जिसे आधुनिक विज्ञान की मदद से नौ हजार साल ईसा पूर्व से लेकर सात हजार साल ईसा पूर्व तक प्रमाणिक तरीके से सिद्ध किया जा सकता है।

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में भगवान श्रीराम के जन्म का वर्णन प्रस्तुत किया है-

'ततो प्रो समाप्ते तु ऋतुना षट् समत्युपः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ।।
नक्षत्रेऽदिति देवत्यै स्वोच्च संस्पेषु पंचसु।
ग्रहेषु ककटि लग्ने वाक्यताविन्दुना सह।।'

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के नवमी तिथि को पुनर्वस नक्षत्र और कर्क लग्न में कौशिल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त सर्वलोकान्वित श्रीराम को जन्म दिया। यदि रामायण में जिक्र नक्षत्रों की इस स्थिति को नासा द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले साफ्टवेयर, प्लेनेटेरियम गोल्ड में उस वक्त की सितारों की स्थिति से मिलान सन्तुलनीय दृष्टिगोचर होता है। जैसे-

(1) सूर्य मेष राशि (उच्च स्थान में)। (2) शुक्र मीन राशि (उच स्थान में)। (3) मंगल मकर राशि (उच्च स्थान में)। (4) शनि तुला राशि (उच्च स्थान में)। (5) वृहस्पति कर्क राशि (उच्च स्थान में)। (6) लग्न कर्क के रूप में। (7) पुनर्वसु के पास चन्द्रमा मिथुन से कर्क राशि की ओर बढ़ता हुआ।

शोध संस्था आई सर्वे के मुताबिक बाल्मीकि रामायण में जिक्र श्रीराम के जन्म के वक्त नक्षत्रों की स्थिति का साफ्टवेयर से मिलान करने पर जो दिन मिला वो दिन 10 जनवरी, 5114 ईसा पूर्व को हुआ, उस दिन दोपहर 12 बजे अयोध्या के आकाश पर तारों की स्थिति और वाल्मीकि रामायण दोनों की स्थिति एक जैसी है।

सरोजबाला के मुताबिक लूनर कैलेण्डर में कन्वर्ट कार में वो चैत्रमास का शुक्ल पक्ष का नवमी निकला। अब हम सब जानते हैं कि चैत्र शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को रामनवमी होती है। तो वही दोपहर 12 से 2 बजे के बीच समान स्थिति निकली है। साफ्टवेयर की मदद से रिसर्चकारों ने राम के भाइयों का जन्म कब हुआ, इसका भी आंकलन किया है। भरत का जन्म पुष्य नक्षत्र यानि लग्न में 11 जनवरी, 5114 ईसा पूर्व को सुबह 4 बजे, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म अश्लेषा नक्षत्र एवं कर्क लग्न में 11 जनवरी, 5114 ईसा पूर्व 11 बजकर 30 मिनट पर हुआ, ऐसा मानते हैं।

डॉ. पी. वी. वर्तक के अनुसार- ऐसी स्थिति 7 हजार 323 ईसा पूर्व दिसम्बर में ही निर्मित हुई थी, लेकिन प्रो. तोवयस के अनुसार- जन्म के ग्रहों के विन्यास के आधार पर श्रीराम का जन्म 7 हजार 129 वर्ष पूर्व अर्थात् 10 जनवरी, 1514 ईसा पूर्व हुआ था।

राम एक आदर्श के प्रेरणास्रोत हैं, श्रीराम-श्रीराम जपते हुए असंख्य साधु-सन्त मुक्ति को प्राप्त कर गये। श्रीराम ब्रह्म के उच्चारण से ही जीवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। जो लोग ध्वनि विज्ञान से परिचित हैं, वह जानते हैं कि श्रीराम नाम की महिमा अपरम्पार है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- रामचरित मानस - तुलसीदास कृत।
2- विष्णुपुराण से उद्धत - व्यास कृत।
3- रामायण - महर्षि वाल्मीकि कृत।
4- इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटीफिक रिसर्च, नयी दिल्ली।
5- कौत्सुक ज्योतिष भण्डारागार।
6- सुप्रसिद्ध रिसर्च वेत्ता सरोजबाला के अनुसार- लूनर कैलेण्डर में।

◈◈

ISSN : 2349-9273

मध्ययुगीन हिन्दी जैन काव्य में जैन प्रबन्ध कृतियों का सामान्य परिचय

- डॉ. नीतू शुक्ला
असिस्टेन्ट प्रोफेसर - हिन्दी विभाग,
गौरी शंकर द्विवेदी महाविद्यालय,
झींझक-कानपुर देहात (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
neetu987654321@gmail.com

सारांश

जैनाचार्यों के कथनानुसार- 'पुराण' का उद्भव तीर्थंकर ऋषभदेव से हुआ है। जैन पुराणों में पुराणों के दो भेद हैं- पुराण और महापुराण। जिसमें एक शलाका पुरुष के चरित्र का वर्णन हो तो, उसे 'पुराण' कहते हैं और जिसमें तिरसठ शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन हो, उसे 'महापुराण' कहते हैं।[3]

जैन पुराणों के उद्भव में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। गुप्तोत्तर काल में देश संक्रमण युग से गुजर रहा था। सार्वभौम सत्ता का अभाव था। जैन धर्म देश के विभिन्न भागों में प्रसारित था। बहुत से राजा जैन मतावलम्बी थे, जिससे जैन धर्म को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। गुप्त युग संस्कृत साहित्य का स्वर्ण युग मान्य है। इस समय रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र को अन्तिम रूप दिया जा रहा था। कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, बाण आदि रीतिबद्ध शैली से संस्कृत साहित्य को समृद्ध कर रहे थे। इस समय वेदों की जगह पुराण का महत्व बढ़ गया था। रामायण-महाभारत आदि लोकप्रिय हो गये थे। विभिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान और सम्मिश्रण अधिक बढ़ रहा था।

प्रस्तावना -

जैन हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काव्य की धारा आठवीं शती से आज तक प्रवाहित हो रही है। इसका कारण यह है कि हिन्दी जैन कवियों ने प्राचीन कथाओं को लेकर ही अपने काव्य भवन का निर्माण किया है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और नारायण आदि महान व्यक्तियों के सरस और हृदयग्राही जीवनांकन द्वारा दिव्य और चिरन्तन सत्य का प्रकाशित करना सरल तथा मानवता के कल्याण हेतु उपादेय समझा। हिन्दी जैन प्रबन्ध साहित्य की उषा ने मध्यकाल में जनसाधारण के सर्वांगीण जीवन क्षितिज को आनन्द विभोर बना दिया, जिससे जीवन का कोना-कोना आलोकित हो उठा।

प्रबन्ध काव्य में इतिवृत्त, वस्तु, व्यापार वर्णन, भाव व्यंजना और संवाद यह चार अवयव प्रमुख होते हैं। कथा में पूर्वापर क्रमबद्धता रहना तो अनिवार्य है ही, इसके बिना कोई काव्य, प्रबन्ध काव्य की कोटि में नहीं आ सकता। प्रबन्ध काव्य के दो भेद हैं- महाकाव्य और खण्ड काव्य। महाकाव्य में जीवन का चित्रण रहता है। पर खण्ड काव्य में जीवन के किसी खास अंश का ही चित्रांकन किया जाता है। जैनाचार्यों ने अपने प्रबन्ध काव्य साहित्य को मुख्यतः पुराण, चरित, कथा और आख्यायिका आदि भागों में विभक्त किया है। भक्ति काव्य में जैन भक्ति काव्य धारा अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुई है और उसकी भाषा का परिष्कार भी हुआ किन्तु अपभ्रंश और राजस्थानी का प्रभाव बना रहा। इसका कारण यह है कि प्रमुख जैन कवि राजस्थान में हुए। हिन्दी के प्रमुख जैन भक्ति कवियों के काव्य का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

पुराणपरक काव्य -

'पुराण' का अर्थ प्राचीन काल की घटनाओं का सूचक ग्रन्थ है। 'पुराण' शब्द का आविर्भाव तो बहुत पहले हो चुका था, परन्तु पौराणिक ग्रन्थ बाद में रचे गये। 'पुराण' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध है। ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में कई स्थलों पर 'पुराण'[1] शब्द का प्रयोग हुआ है। मत्स्य पुराण में 'पुराण' के लक्षण बताते हुए लिखा गया है-

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशोमन्वन्तराणि च।
वंशानुचरित चैव पुराणां पंच लक्षणम्।।'[2]

अर्थात् सृष्टि, प्रलय, वंश, परम्परा, मन्वन्तर तथा विशेष वंशों में होने वाले महापुरुषों का चरित्र जिसमें वर्णित रहता है, वे पुराण हैं।

जैनाचार्यों के कथनानुसार- 'पुराण' का उद्‌भव तीर्थंकर ऋषभदेव से हुआ है। जैन पुराणों में पुराणों के दो भेद हैं- पुराण और महापुराण। जिसमें एक शलाका पुरुष के चरित्र का वर्णन हो तो, उसे 'पुराण' कहते हैं और जिसमें तिरसठ शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन हो, उसे 'महापुराण' कहते हैं।[3]

जैन पुराणों के उद्‌भव में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों की भूमिका महत्वपूर्ण है।[4] गुप्तोत्तर काल में देश संक्रमण युग से गुजर रहा था। सार्वभौम सत्ता का अभाव था। जैन धर्म देश के विभिन्न भागों में प्रसारित था। बहुत से राजा जैन मतावलम्बी थे, जिससे जैन धर्म को राजकीय संरक्षण भी प्राप्त था। गुप्त युग संस्कृत साहित्य का स्वर्ण युग मान्य है। इस समय रामायण, महाभारत, पुराण, धर्मशास्त्र को अन्तिम रूप दिया जा रहा था। कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, बाण आदि रीतिबद्ध शैली से संस्कृत साहित्य को समृद्ध कर रहे थे। इस समय वेदों की जगह पुराण का महत्व बढ़ गया था। रामायण-महाभारत आदि लोकप्रिय हो गये थे। विभिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान और सम्मिश्रण अधिक बढ़ रहा था।

पार्श्व पुराण -

'पार्श्वपुराण' के रचयिता कविवर 'भूधरदास' जी आगरा के निवासी थे। हिन्दी भाषा के जैन कवियों में इनका नाम उल्लेखनीय है। इनकी जाति खण्डेलवाल थी।[5] ये बहुत ही श्रद्धालु एवं धर्मात्मा थे। इन्हें कविता करने का बहुत ही शौक था। इन्होंने अपने इष्ट-मित्रों की इच्छा पूर्ति हेतु ऐसे सार्वजनीन साहित्य लिखने का विचार किया, जिससे साधारण जन भी आत्मसाधना एवं आचार्य तत्व को प्राप्त कर सके। अध्यात्म गोष्ठी में जाना और चर्चा करना नित्य का कार्य था।

पाण्डव पुराण -

पाण्डव पुराण के रचयिता बुलाकीदास जी का जन्म आगरा में हुआ था। यह गोयल गोत्रीय अग्रवाल दिगम्बर जैन श्रावक थे।[6] इनके पूर्वज बयाने में रहते थे। इनके पितामह श्रवण दास बयाना छोड़कर आगरा में बस गये थे। इनकी माता बहुत ही धर्मप्रेमी थीं, उन्हीं के आदेश से सं. 1697 में इन्होंने पाण्डव पुराण की रचना की। बुलाकी दास की वंश परम्परा साहू, अमरसी, प्रेमचन्द, भ्रमणदास, नन्दलाल और बुलाकीदास तक चली। इनके पितामह भ्रमणदास बयाना छोड़कर आगरा में बस गये थे। उनका पुत्र नन्दलाल बहुत योग्य, स्वस्थ और रूप सम्पन्न था। जिस पर मोहित होकर प्रसिद्ध पण्डित हेमराज अपनी एक मात्र पुत्री 'जैनी' का उनसे विवाह किया। उन्हीं के गर्भ से बुलाकीदास का जन्म हुआ। विदुषी माँ की देख-रेख में बुलाकीदास का पालन-पोषण हुआ, जिससे वे विद्वान भी बन सके और महाकवि भी।

खण्ड काव्य -

आचार्य विश्वनाथ ने 'काव्य दर्पण' में खण्ड काव्य का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए लिखा है- 'खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकं देशानुसारि च।' अर्थात् महाकाव्य एक देश या अंश का चित्रण या अनुसरण करने वाला काव्य 'खण्ड काव्य' कहलाता है अर्थात् खण्ड काव्य में घटना की ही प्रधानता होती है और उसमें मानव जीवन के एक अंग का चित्रण किया जाता है।

खण्ड काव्य के 'खण्ड' शब्द का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह बिखरा हुआ या किसी एक महाकाव्य का एक खण्ड है। प्रत्युत् यह 'खण्ड' उस अनुभूति की ओर यह संकेत करता है, जिसमें जीवन अपने सम्पूर्ण रूप में कवि को प्रभावित न कर खण्ड रूप में ही प्रभावित करता है।[7]

वर्धमान चरित -

इस चरित के रचयिता खटोला लाल निवासी सिंघई देवराय के पुत्र बुन्देलखण्ड के कवियों में अत्यन्त श्रेष्ठ कवि नवलशाह हैं। ग्रन्थ के अन्त में दी हुई प्रशस्ति के अनुसार इनके पूर्वज भीषम साहू, भेसली ग्राम (बुन्देलखण्ड) में रहते थे। एक दिन भीषम साहू ने अपने पुत्रों को बुलाकर परामर्श किया कि हमारे पास जो भी धन इत्यादि है, उससे हम कुछ धार्मिक कार्य करना चाहते हैं। तदुपरान्त दीपावली के मुहूर्त पर पंच कल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन करते हुए जिन बिम्ब को विराजमान किया, तोरण ध्वजा आदि से मन्दिर सजाया गया। दूर-दूर से आये हुए धार्मिक जनों का सत्कार करते हुए चार

संघ को दान दिया गया और रथयात्रा का उत्सव किया। चार संघ ने मिलकर टीका किया और एकमत होकर इन्हें सिंघई पद से अलंकृत किया गया। यह बिम्ब प्रतिष्ठा वि. सं. 1651 के अगहन मास में हुई थी।

कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के ग्रन्थों की कथा का आधार लेकर वर्द्धमान चरित की रचना की। इस काव्य में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर का जीवन चरित विस्तारपूर्वक वर्णित है। यह आजीवन अविवाहित रहकर 30 वर्ष की उम्र में संसार से विरक्त हो तप करने चले गये और आत्मशोधन करके अशान्त विश्व को शान्ति का उपदेश दिया। इनका उपदेशामृत पान करने के लिए मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी, देव-दानव सभी आते थे। भगवान महावीर ने सभी आर्यदेशों में विहार करके जनता को कर्तव्य मार्ग का उपदेश दिया और अन्त में मोक्ष लाभ किया।

श्रीपाल चरित -

इस चरित के रचयिता 16वीं शताब्दी के कवि परिमल हैं। इनका जन्म ग्वालियर में हुआ था, परन्तु आप अधिकांश समय आगरा में रहे। यह दिगम्बर जैन श्रावक वरदिया जाति के कवि थे। इन्होंने श्रीपाल चरित की रचना मुगल शासन में की थी। कवि ने अपनी इस कृति में अकबर के शासनकाल का वर्णन करते हुए उसके तेज एवं प्रताप की प्रशंसा की है। कवि ने श्रीपाल चरित में रचना प्रारम्भ का उल्लेख करते हुए लिखा है-

'सम्वत् सोलह सौ ऊपर, सावन इक्यावन आगरै।
मास अषाढ़ बहुतौ आई, वर्षा ऋतु की करै बड़ाई।
पक्ष उजाली आठे जानि, सूकरवार वारि परवानि।।'[8]

परिमल कवि के पहले श्रीपाल चरित को अपनी लेखनी द्वारा कवित्त बद्ध करने में अपूर्व गौरव की वृद्धि करने में ब्रह्मजिनदास, ब्रह्माराय मल्ल एवं भट्टारक वादिचन्द्र के नाम स्मरणीय हैं। श्रीपाल चरित की जो भी पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई, उनमें पदों की संख्या लगभग 2000 के आस-पास है।

नेमिचन्द्रिका -

कन्नौजी भाषा से प्रभावित खड़ी बोली का यह खण्ड काव्य मनरंग लाल द्वारा विरचित है। भगवान नेमिनाथ का चरित कवियों के लिए बहुत आकर्षक रहा है। जम्बू दीप के भारत क्षेत्र के अन्तर्गत सौराष्ट्र क्षेत्र में द्वारावती नगरी थी। इस नगरी में राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये बड़े धर्मात्मा, पराक्रमशील एवं शूरवीर थे। इनकी रानी का नाम शिवदेवी और पुत्र का नाम नेमिकुमार था। इनके वंशज कृष्ण और बलभद्र थे। इनके काव्य में शान्त रस, वात्सल्य रस, करुण रस और विप्रलम्भ श्रृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है। कवि को इस रस के परिपाक में अच्छी सफलता मिली है। मानव की राग भावनाओं का चित्र प्रस्तुत करने में कुशल चित्रकार का कार्य कवि ने कर दिखलाया है।

अलंकारों में अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा और अतिश्योक्ति का समावेश सर्वत्र है। छन्दों में दोहा, चौपाई, भुजंगप्रयात, नाराच, सोरठा, अडिल्ल, गीत छप्पय, त्रोटक, पहरी आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। गण दोष, पद दोष, वाक्य दोष और अति भंग आदि का अभाव पाया जाता है। कोमलकान्त पदावली युक्त भाषा अपूर्व विकास को लिए हुए है।

चन्द प्रभचरित -

यह काव्य आठवें तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ की जीवन गाथा से सम्बन्धित है। कवि हीरालाल जी ने इस काव्य को 17 सन्धियों में विभक्त किया है। प्रारम्भ में श्रोता, वक्ता और त्रिलोक वर्णन को विस्तार देने के कारण कथा की शुरुआत बहुत दूर जाकर की गयी है, जो व्यक्ति आरम्भ से ही कथा जिज्ञासु है, वह इस वर्णन के पढ़ने से ऊब सा जाता है। आरम्भ में चार सन्धियों में ऋषभदेव के चरित का ही वर्णन किया गया है। पाँचवीं सन्धि से दसवीं सन्धि तक पद्मनाभ के भवान्तरों का विशद वर्णन किया गया है। इस प्रकार दश सन्धियों तक चरित नायक के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी प्राप्त नहीं हो पाता है। ग्यारहवीं सन्धि में भगवान चन्द्रप्रभ का गर्भावतार दिखलाया गया है। भव-भवान्तरों की प्रासंगिक कथाओं को कवि ने इतना रोचक बनाया है, जिससे जिज्ञासु पाठकों का मन ऊबता नहीं है। ये कथायें अधिकारिक कथा से जुड़ी हुई हैं, समस्त झरने एक ही साथ मन्दाकिनी का रूप धर ग्यारहवीं सन्धि में उपस्थित हो जाते हैं।

वर्णन शैली में प्रवाह है, भाषा सानुप्रास है। कविता में ताल, स्वर और अनेक राग-रागनियों का भी समावेश किया गया है। अनुप्रास, यमक, विरोधाभास, श्लेष, उदाहरण, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिश्योक्ति अलंकार की यथास्थान योजना की गयी है। निम्न पद्य दर्शनीय है-

'कवल बिना जल, जल बिन सरवर,
सरवर बिनु पुर, पुर बिन राय।
राय सचिव बिन, सचिव बिना बुध,
बुध विवेक बिन शोभा न पाय।।'

इस प्रकार भाव, भाषा और शैली आदि की दृष्टि से यह चरित सुन्दर काव्य है।

लघु काव्य एवं मुक्तक रचनाएँ -

हिन्दी जैन साहित्य में महाकाव्य और खण्ड काव्यों के अलावा कुछ काव्य ग्रन्थ ऐसे भी हैं, जिनमें काव्यत्व अल्प और चरित्र अधिक है। धर्मोपदेश देने के लिए तीर्थंकरों एवं अन्य पुरुषों के चरित्र लिखे गये हैं। कुछ ऐसी कथाएं भी पद्य बद्ध हैं जो व्रतों की महिमा प्रकट करने हेतु लिखी गयी हैं। इनमें चरित्र-चित्रण के साथ आनन्द और विषाद का अभूतपूर्व मिश्रण विद्यमान है। काव्य के मूल आलम्बन, रागद्वेष के विभिन्न रूपान्तर इन कथाओं एवं चरित काव्यों में पाये जाते हैं। जीवन में पाये जाने वाले भावों का चरित काव्यों में यथेष्ट समावेश हुआ है।

काव्य की दृष्टि से इनमें कविता अलंकृत नहीं की गयी है। शब्द चयन और वाक्य योजना भी चमत्कारपूर्ण ढंग से नहीं हुई थी तथा महाकाव्य या खण्ड काव्य के विधान का अनुसरण भी नहीं हुआ। इस प्रकार ऐसे काव्य ग्रन्थ इतने ज्यादा हैं कि इनका अनुशीलनात्मक परिचय देना असम्भव सा है। जिनमें से कुछ रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है-

(1) पार्श्वनाथ गीत -

इस गीत परक काव्य के रचयिता कुमुदचन्द्र का जन्म 1645 वि. सं. में राजस्थान के गोपुर ग्राम में हुआ था। इनकी इस रचना पर राजस्थानी और गुजराती का प्रभाव है। इन्हें जन्म से ही अध्ययनशील मस्तिष्क मिला था। इन्होंने व्याकरण काव्य और सिद्धान्त पर अधिकार कर लिया था। भट्टारक रत्नकीर्ति अपने शिष्य कुमुद के ज्ञान को देखकर मुग्ध हो उठे और उन्हें बारडोली में नये पद पर अभिसिक्त कर दिया। उन्हें इतनी ख्याति मिली कि रत्नकीर्ति भी पीछे रह गये। इसका कारण विद्वता के साथ-साथ वाणी की मधुरता और हृदय की पवित्रता थी।

(2) गुण बावनी -

इस काव्य की रचना बबेरइ में वि. सं. 1676 वैशाख शुक्ल को हुई थी। इस ग्रन्थ में सात काव्य की भाँति पाखण्ड का निराकरण और आत्मा को सम्बोधन कर अध्यात्म सम्बन्धी पदों की रचना की गयी है। इसमें कुल 57 पद हैं । प्रारम्भिक मंगलाचरण में ही प्रणव अक्षर रूप परमेश्वर को नमस्कार करते हुए रचना का प्रारम्भ किया गया है।

(3) हिन्डोला गीत -

हिन्डोला गीत के रचयिता कुमुद चन्द्र विद्वान ही नहींअपितु प्रथम कोटि के साहित्यकार भी थे। इनकी प्रशंसा राजा और नवाब भी करते थे। इनका जन्म गोपुर गाँव में हुआ था। कुमुद चन्द्र के पूर्वज गुजरात से राजस्थान के गोपुर गाँव में बस गये थे। अतः इनकी कृतियों में राजस्थानी व गुजराती का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

(4) आदिनाथ गीत -

प्रस्तुत गीत राग आसावरी में निबद्ध है। इस गीत का मुख्य विषय आदिनाथ का स्तवन है। प्रस्तुत गीत भाव, भाषा शैली की दृष्टि से उत्तम है। यह गीत वर्णनात्मक शैली में रचित है, साथ ही गुजराती भाषा से प्रभावित है। गीत की यह पंक्तियाँ देखें-

'जय श्री जिननाथ निरंजन वांछित पूरे आसरे।
श्री शुभचन्दपयोधर ब्रज दीनकर रत्नचन्द्र कहैं या सारे।।'

(5) भारतेश्वर गीत -

इस गीत में पदों की संख्या कुल सात है। गीत में कवि ने स्वामी आदिनाथ के समय सरण की रचना एवं भगवान के अष्ट प्रतिहारों का वर्णन किया गया है। गीत की भाषा सरल एवं सरस है। गीत का अन्तिम अंश इस प्रकार है-

'भव्य जीवन में जो संवोचम चौबीस प्रतिशय व्रत
युगला धर्म निवारण स्वामी सही मण्डल विचरते
शेष कर्मने गीते जिनवर यमामुक्ति श्री वन्त
कुमुद चन्द्र कहें श्री जिन गाथा लहिए सुख अनन्त।'

(6) नेमि गीत -

नेमि तथा राजुल के प्रसंग को लेकर अनेक जैन रचनाकारों ने अनेक काव्यों की रचना की है। इसके अन्तर्गत राजुल के विरहावस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है। इस गीत में राजुल नेमि के अभाव में अपने आपको कैसी अवस्था में पाती है, इसी दशा का वर्णन इसमें किया गया है। भाषा एवं भाव की दृष्टि से गीत का वर्णन बहुत ही मजबूत और श्रेयस्कर है।

(7) आदीश्वर फागु -

भट्टारक सकल कीर्ति के प्रशिष्य और भुवन कीर्ति के शिष्य भट्टारक ज्ञानभूषण[9] वि. सं. 1557 तक सागवाड़े की गद्दी पर आसीन रहने के बाद अपने शिष्य विजय कीर्ति को भट्टारकीय पद पर बैठाकर अध्यात्म रस में लीन रहने लगे, वे गुजरात के रहने वाले थे। उन्होंने केवल मन्दिरों का निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा, तीर्थक्षेत्रों की यात्रायें ही नहीं की, अपितु विभिन्न देशों की जनता में आध्यात्मिक रस का पान भी कराया। आपने गुजराती मातृभाषा होते हुए भी हिन्दी में आदीश्वर फागु की रचना वि. सं. 1551 में की थी।[10]

(8) अनित्य पच्चीसिका -

इस रचना में भैया भगवती दास ने जीवन की नश्वरता एवं अपूर्णता पर गम्भीरता से विचार किया है। इनकी कविता में विषय के द्वन्द्वात्मक विचारों का चिन्तन, मनन एवं विश्लेषण

विशेष रूप से विद्यमान है। इसका साथ कवि ने अपनी कविता के माध्यम से मानव जीवन की अभ्यान्तरिक सत्य के दिखाने एवं दिखने का पूर्ण प्रयास किया है। कविता का मूलभूत स्रोत आत्मदर्शन से प्रभावित है। मानव जीवन की समस्याओं का समाधान एकमात्र साधन एवं संयम है। कवि की यह विशेषता है कि उसने कहींभी निराशा की भावना व्यक्त नहीं की है। उसने मानव जीवन में प्रेम, आशा, स्फूर्ति, संतोष, विवेक आदि गुणों को अपने जीवन में उतारने की विशेष सलाह दी है।

(9) उपदेश शतक -

इस काव्य के रचनाकार कवि द्यानतराय आगरा के रहने वाले थे। इनका जन्म अग्रवाल जाति के गोयल गोत्र में हुआ था। इनके पितामह का नाम वीरदास और पिता का नाम घनश्याम दास था कवि को पंडित बिहारीदास और पंडित मानसिंह के धर्मोपदेश से जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। इनके पचास से अधिक ग्रन्थ मिलते हैं। इनकी सभी रचनायें धर्मविलाश नमक ग्रन्थ्र संग्रह में छपी हैं। इनकी रचनाओं में शब्द चमत्कार के साथ-साथ अर्थ चमत्कार की भी प्रवृत्ति पाई जाती है।

(10) भूधर शतक -

मानव जीवन में विरक्ति प्राप्त करना सबसे कठिन कार्य माना गया है। कवि भूधरदास ने अपने इस शतक में वैराग्य भावना जाग्रत करने का प्रयास किया है। आपका विचार है कि विश्व में कलह, घृणा, अव्यवस्था का समापन इसी भावना के द्वारा ही सम्भव है। यद्यपि कहने का ढंग सिद्धान्त निरूपण जैसा ही है, परन्तु मंजुल भावनाओं की अभिव्यक्ति कवि ने सरस एवं हृदयग्राहक ढंग से की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- ऋग्वेद 3-5, 5-49, 3-58-6, 10-130-6
2- मत्स्य पुराण - 35-63
3- महापुराण 1-22-23 पाण्डव, पृष्ठ 9 (जैन पुराणों का सांस्कृति अध्ययन, पृष्ठ-3 से उद्धृत) - देवी प्रसाद मिश्र
4- जैन साहित्य का वृहद् इतिहास - गुलाब चन्द्र चौधरी, वाराणसी, 1973, पृष्ठ-8
5- आगरे मैं बलबुद्धि भूधर खण्डेलवाल,
बालक के ख्याल सौं कवित्त कर जानै है।
ऐसे ही करत भयो जैंहिस सवाई सूबा,
हाकिल गुलाबचन्द आये तिथि थाने हैं। - भूधर जैन साहित्य प्रकाशन संस्थान, जयपुर
6- पं. हरिकृष्ण प्रेमी - हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, बम्बई- 1917, पृष्ठ-65
7- काव्य रूप के मूल स्रोत और उनका विकास - डॉ. शकुन्तला दुबे
8- श्रीपाल चरित - पृष्ठ-30
9- अनेकान्त, वर्ष 4, पृष्ठ-502
10- आदीश्वर फागु - आमेर शस्त्र भण्डार की हस्तलिखित प्रति, 262वाँ पद्य (हिन्दी जैन भक्ति काव्य-प्रेम सागर जैन, पृष्ठ-24 से उद्धत)

◈◈

The Gunjan

Multi Displinary Quarterly International Referred Research Journal

Multi Displinary Quareterly International Referred Research Journal
(in Multi Language : Hindi + English + Sanskrit)

ISSN : 2349-9273

SUPER PRAKASHAN Presents : `The Gunjan'
Sector-K-444, `Shiv Ram Kripa' World Bank Barra-Kanpur-208027
Contact- 08896244776, 09335597658,
E-mail: super.prakashan@gmail.com
Visit us: www:superprakashan.com, thegunjan.com, abhinavgaveshna.com

ISSN : 2349-9273

जनजातीय विकास में कौशल शिक्षा की भूमिका एक चिंतन

- प्रेम शंकर अवस्थी
शोध छात्र - शिक्षाशास्त्र विभाग,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)

ई-मेल :
prem9458509939@gmail.com

भारत एक जनजातीय बाहुल्य देश है। देश में लगभग 10 करोड़ जनजातीय समुदाय के लोग रहते हैं। जिनकी 600 से ज्यादा उपजातियाँ हैं। जनजातीय - आदिवासी या वनवासी या ट्रायबल इन शब्दों से जाने वाले ये समुदाय एक ओर उत्तर में जम्मू कश्मीर से लेकर दक्षिण में केरल तक फैसले हुए हैं। केवल पंजाब, चंडीगढ़, दिल्ली और पांडिचेरी के क्षेत्र को छोड़कर ये जनजातीय बन्धु हर प्रदेश में निवास करते हैं।

देश के आर्थिक विकास में प्राकृतिक संसाधन मानवीय संसाधन एवं मानवकृत साधनों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। प्राकृतिक संसाधन जैसे भू-सम्पदा, वन सम्पदा, जन सम्पदा, खनिज सम्पदा प्राकृतिक प्रदत्त होते हैं। इनका अनुकूलतम पूर्ण उपयोग होना दुरुपयोग तथा अनुपयोग रोकना सर्वथा मानवीय संसाधन पर निर्भर करता है। मानवीय संसाधन निर्माण में शिक्षा की अहम भूमिका है। अतः शिक्षा के माध्यम से समाज में वांछनीय परिवर्तन लाए जा सकते हैं। इसी से हमने अपनी शिक्षा व्यवस्था में प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर तक पर्यावरण चेतना, पर्यावरण शिक्षा, पर्यावण संवर्धन एवं संरक्षण को कौशल शिक्षा में सम्मिलित किया है। कौशल शिक्षा से मानवीय संसाधन विकास हेतु समय की मांग को देखते हुए व्यवसायोन्मुखी शिक्षा एवं रोजगार शिक्षा को दसवींकक्षा के पश्चात् ग्यारहवींएवं बारहवींके बाद कौशल शिक्षा स्नातक के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया गया है। इस क्षेत्र मे स्वयंसेवी एवं निजी संस्थाएँ भी फल-फूल रही हैं। अब आवश्यक है कि शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से कौशल जागरुकता लाना छात्र-छात्राओं को स्वरोजगार के लिए मानसिक रूप से तैयार करना। इस हेतु उन्हें आवश्यक शैक्षिक कौशल प्रशिक्षण देकर वर्तमान में इस हेतु उपलब्ध अवसरों की जानकारी प्रदान करने के कार्य में शिक्षण संस्थाएँ महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

कौशल विकास के साथ-साथ को रोजगार के अवसरों में आय के एवं मांग के स्तर में वृद्धि होती है। मांग की पूर्ति हेतु उत्पादन वृद्धि आवश्यक है। उत्पादन वृद्धि के लिए उत्पत्ति के साधनों को रोजगार प्राप्त होता है। परन्तु पूँजी प्रधान उत्पादन तंत्र में रोजगार के अवसर बढ़ने की संभावना कम रहती है।
भारत जैसे विशालतम प्रजातंत्र मे हमने योजनाबद्ध विकास का कार्यक्रम अपनाया है। 2015 में एल.पी.जी. उज्ञवला उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। जिसके फलस्वरूप विदेशी पूंजी का विनियोग तथा पूंजी प्रधान उत्पादन तंत्र का बोलबाला बढ़ रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा सरकारी विभागों में वर्तमान में ही आवश्यकता से अधिक लोग कार्यरत हैं। कम्प्यूटरीकरण एवं सार्वजनिक व्यय को घटाने की आवश्यकता को देखते हुए इस क्षेत्र में रोजगार बढ़ने की सम्भावना नहीं है। अतः युवाओं को रोजगार के लिए तैयार करना। कौशल विकास करना समय की माँग है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अपनायी गयी मौकाले शिक्षा प्रणाली के कर्मचारियों के निर्माण के लिए उपयुक्त थी। कोठारी कमीशन ने व्यवसायिक शिक्षा पर जोर दिया। नई शिक्षा नीति में भी इसको आगे बढ़ाया गया परन्तु आज आवश्यकता है युवाओं में साहसी निर्भीक प्रवृत्ति जाग्रत करने की। उन्हें स्वरोजगार परक कौशल शिक्षा की। छात्र जीवन में स्वरोजगार की महत्वता एवं

अनिवार्यता को समझे जाने से भविष्य एवं रोजगार की तलाश के उसके लिए भटकना, समय, शक्ति एवं धन अपव्यय करने से वे बच सकते हैं। बेरोजगारी के फलस्वरूप होने वाली हताशा एवं नैराश्य को टालने के लिए छात्र-छात्राओं को निम्न तथ्यों को समझना आवश्यक है। भारत में जहाँ 1.25 (सवा सौ करोड़) से अधिक लोग निवास करते हैं। जनसंख्या वृद्धि की दर लगभग 3 प्रतिशत हैं। महिलाओं की संख्या प्रति हजार 933 है। वहाँ बेरोजगारी का प्रतिशत सामान्य 60.89 प्रतिशत पुरुषों में 48.22 प्रतिशत एवं महिलाओं में 74.34 प्रतिशत है। श्रमिक वृद्धि की दर 2.3 प्रतिशत अपेक्षित है। रोजगार प्राप्त व्यक्तियों में 60 प्रतिशत स्वरोजगार करने वाले 30 प्रतिशत असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है। अर्थात् उन्हें न्यूनतम मजदूरी पर रोजगार करने से स्वरोजगार परख कौशव शिक्षा सर्वोत्तम है।

बेरोजगारी की इस भयावह स्थिति के अलावा जहाँ अर्धबेरोजगारी, अदृश्य, बेरोजगारी, मौसमी बेरोजगारी भी व्याप्त है। वहाँ पर बेरोजगारी दूर करने के लिए स्वरोजगार परख कौशल शिक्षा से अच्छा विकल्प हो ही नहीं सकता। इस हेतु शिक्षण संस्थाओं में निम्न प्रकार के कार्यक्रम अपनाये जा सकते हैं-

1- जनजातीय युवाओं को कौशल शिक्षा का अर्थ, उसकी महत्ता एवं आवश्यकता की जानकारी देना।

2- जनजातीय युवाओं को कौशल शिक्षा का प्रशिक्षण देना।

3- वर्तमान में कौशल शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शासकीय, अर्धशासकीय एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के सहयोग से उनके उन्नयन के प्रयास करना।

4- कौशल शिक्षा से निर्मित स्वरोजगार को वित्तीय सहायता देने वाली शासकीय एवं अशासकीय बैंकिंग एवं अन्य संस्थाओं की जानकारी देना।

5- इन संस्थाओं (कौशल प्रशिक्षण संस्थाओं) के अधिकारियों से प्रत्यक्ष भेंट आयोजित कर (रूबरू) होकर उन्हें अद्यतन जानकारी प्रदान करना। द्विमार्गी संप्रेषण से प्रोजेक्ट प्लान बनाना ऋण हेतु क्या-क्या न्यूनतम आवश्यक शर्ते है, उनकी जानकारी, शंका समाधान समस्याओं का हल इस दिशा में आगे बढ़ने हेतु प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

6- मनोविज्ञान, विभाग की छात्राओं को अभिरुचि (Attitude), योग्यता (Ability) को ज्ञात करके उन्हें दिशा निर्देशन दे सकता है।

7- परामर्श केन्द्र (Conselling Center) का इसमें अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

8- Personality Development व्यक्तित्व विकास की दिशा को हमें कौशल शिक्षा की तरफ मोड़ना आवश्यक है।

9- सफल कौशल प्रशिक्षणार्थियों के मिलने से युवाओं को उत्प्रेरणा प्रदान की जा सकती है।

10- महाविद्यालय में कौशल विकास प्रकोष्ठ की स्थापना करके कौशल प्रशिक्षण एवं कौशल विकास के अवसरों एवं (रोजगार) के अवसरों की जानकारी दी जा सकती है।

11- कौशल शिक्षा पर उपलब्ध साहित्य पुस्तकें, पत्र -पत्रिकाएँ समाचार पत्रों के संकलित अंश प्रेरक होंगे।

12- इंटरनेट के माध्यम से जानकारी प्राप्त करने की आदत युवाओं में विकसित करना आज की अनिवार्यता है। इसकी सुविधा भी महाविद्यालय में उपलब्ध कराना चाहिए।

13- कौशल प्रशिक्षण संस्थाओं में मोमबत्ती निर्माण, पुष्प सजावट, ग्रीटिंग कार्ड्स बनाना, केलिग्राफी बैंकिंग, कुकिंग, आइसक्रीम बनाना फल एवं खाद्य संस्करण Fruit & Food Preservation योग एवन्यू प्रेशर, ब्यूटी कल्च आदि के प्रारम्भिक एवं उन्नत सार्टिफिकेट डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का आयोजन उपयोगी सिद्ध होगा।

14- स्वयं सहायता समूह महिला एवं बाल विकास, जिला कौशल विकास केन्द्र, सम्बन्धी जानकारी देने प्रतिवर्ष शिविर लगाना लाभप्रद होगा।

15- पिछड़े हुए अनुसूचित जनजाति, बिना कौशलों के जिलों के लिए विशेष पैकेज की जानकारी इस क्षेत्र में कौशल विकासवर्धक होगी।

16- ग्रामीण क्षेत्र की प्रदूषण रहित शुद्ध जलवायु कम जीवन निर्वाह लागत, कच्चे माल की समीपता यहाँ उपलब्धता विशेष योजनान्तर्गत प्रावधानों की जानकारी, ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल विकास प्रोत्साहित करेंगे।

17- सरकार द्वारा दी जाने वाली स्वयं सेवी संस्थाओं को सहायता आदि की जानकारी युवाओं को देना आवश्यक है।

18- कौशल विकास नीति हस्तशिल्प खादी ग्रामोद्योग विकास योजनाएँ भावी कौशव विकास के व्यक्तियों तक पहुंचना जरूरी है।

कृषि एवं कौशल विकास के साथ-साथ सेवा क्षेत्र भी तीव्र गति से विकसित हो रहा है। इसमें कौशल परक (स्वरोजगार) की अपार संभावनाएँ है।

1- बीमा, 2- बैंकिंग, 3- पोस्ट ऑफिस तथा बाजार सम्बन्धी कार्य करने वाले सहायक बुजुर्गों के लिए एवं व्यस्ततम लोगों के लिए उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

☛ नल, बिजली, टेलीफोन, टी.वी. , कम्प्यूटर, मरम्मत एवं रखरखाव केन्द्रों की मांग बढ़ रही है।

☛ वृद्ध रोगी सेवा घरों में जाकर अथवा इनके केन्द्र

खोलकर देना, अस्पतालों में भर्ती मरीजों को भी इस प्रकार की सेवाएँ छोटे एवं व्यस्त परिवारों के लिए अनिवार्य हो रही है।

☛ झूला घर एवं उसके साथ-साथ ट्यूशन के क्षेत्र में (कौशल परख) स्वरोजगार के पर्याप्त अवसर हैं।

युवाओं के समूह द्वारा स्थापित सेवा केन्द्र बिजली बिल, टेलीफोन, भुगतान के साथ-साथ परिवारों के अन्य दायित्व भी निभा सकते हैं। सेवा सदन, अनाथ महिला, अनाथ विद्यार्थी, निःशक्त इनके लिए सहायता केन्द्र, समाज सुधार, सहायता एवं उन्नयन के क्षेत्र में कौशल परक स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध है। विपणन (मार्केटिंग) के क्षेत्र में कौशल परक स्वरोजगार की अपार संभावनाएँ है।

वार्षिक रख-रखाव करार (Annual Maintenance Contract) के माध्यम से निश्चित आप प्राप्ति का साधन उपलब्ध है। आवश्यक है कि विभिन्न क्षेत्रों में दक्षता की, समर्पण की लगन एवं परिश्रम करने की। यदि आप किसी ग्राहक, परिवार, ग्राहक वर्ग का विश्वास अर्जित कर लेते हैं। तो वह आप का बिना मूल्य विज्ञापन है। अपने दोस्तों, परिचितों, पड़ोसियों, रिश्तेदारों, सहकर्मियों को स्वयं ही अथवा आप के अनुरोध पर वह आपकी जानकारी देगा। अतः आपका सेवा केन्द्र प्रयास खूब फलेगा-फूलेगा।

मानव विकास का साध्य एवं साधन दोनों है। मानव जीवन का लक्ष्य शांतिपबर्ण सुखमय स्वस्थ जीवन यापन करना है। स लक्ष्य की पूर्ति हेतु एक छत के नीचे उपलब्ध विविध सेवा केन्द्र (One Roof-Multiple-Service Centre) उपभोक्ताओं को वरदान सिद्ध होंगे। इसके द्वारा आय प्राप्त की जा सकती है। परिवार का आर्थिक भार पूर्णतः अथवा अंशतः उठाया जा सकता है। कौशलपरक स्वरोजगार के फलस्वरूप समाज में बेरोजगारी के कारण होने वाला नैतिक अधः पतः चोरी, लूटपाट, नैराश्य इनसे मुक्ति पाना संभव होगा।

परिवार, समाज व देश की बेरोजगारी की विकराल समस्या को हल करने के लिए शासकीय, निजी शिक्षण संस्थाओं द्वारा शासन, स्वयंसेवी संस्थाएँ एवं वित्तीय संस्थाओं के सहयोग से उद्यमिता जागरुकता एवं विकास की दिशा में किए गये उपरोक्त प्रयास निश्चित ही सार्थक होंगे। युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करके आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षण संस्थाओं क यह योगदान बहुमूल्य होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- दिलीप दामोदर करबेलकर - ग्रंथ एवं प्रकाशक, हिन्दी विवेक, 5- कमात इण्डस्ट्रीयल इस्टेट- 396 स्वावीर सावरकर मार्ग प्रभादेवी मुम्बई पिन - 25

2- मधुकर राव चितले - वनपुत्र वर्ष 24 अंक 3, अगस्त सितम्बर 2013, मासिक पत्रिका व्यवस्थापक लक्ष्मीनारायण पाटीदार 306 कृष्ण विहार, काम्पलेक्स ए ब्लॉक कलेक्टर आफिस के सामने, 2 लालबाग रोड इंदौर।

3- मधुरकर राव चितले - वन पुत्र वर्ष 26 अंक 4, अक्टूबर नवम्बर 2013, मासिक पत्रिका व्यवस्थापक लक्ष्मीनारायण पाटीदार 306 कृष्ण बिहार काम्पप्लेक्स ए ब्लॉक कलेक्टर आफिस के सामने, 2 लालबाग रोड इंदौर।

4- मधुरकर राव चितले - वन पुत्र वर्ष 26 अंक 4, अक्टूबर नवम्बर 2013, मासिक पत्रिका व्यवस्थापक लक्ष्मीनारायण पाटीदार 306 कृष्ण बिहार काम्पप्लेक्स ए ब्लॉक कलेक्टर आफिस के सामने, 2 लालबाग रोड इंदौर।

5- मधुरकर राव चितले - वन पुत्र वर्ष 26 अंक 4, अक्टूबर नवम्बर 2013, मासिक पत्रिका व्यवस्थापक लक्ष्मीनारायण पाटीदार 306 कृष्ण बिहार काम्पप्लेक्स ए ब्लॉक कलेक्टर आफिस के सामने, 2 लालबाग रोड इंदौर।

6- बाला साहब देशपाण्डे - शताब्दि विशेषांक अरण्यांजलि वर्ष 2013-14 वनवासी कल्याण परिषद एकलव्य संकुल, गायत्री मंदिर के पीछे महाराणा प्रताप नगर, जोन- 1, भोपाल।

7- श्री रमाकान्त केशव देशपाण्डे (उपाख्य बाला साहेब देशपाण्डे) शताब्दि वर्ष 26 दिसम्बर 2013 (26 दिसम्बर 2013 से 26 दिसम्बर 2014तक), लवासी कन्याणाश्रम, चंचल स्मृति जी, डी अम्बेडकर रोड, बड़ाला मुम्बई- 31।

8- स्नेहलता, अखिल भारतीय वनवासी कन्याश्रम (कल्याणाश्रम) जसपुर नगर - 496331 जिला जसपुर, छत्तीसगढ़।

9- डॉ. प्रसन्न दामोदर सप्रे, हमारे वनवासी और कन्याणाश्रम लोकहित प्रकाशन संस्कृति भवन राजेन्द्र नगर, लखनऊ -04

10- प्रो. त्रिलोकीनाथ सिन्हा, हमारे महान 'वन नायक' भाग 2 अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम छत्तीसगढ़।

11- सिंह लाल शाह, मपन मूल्यांकन एवं सांख्यिकीय प्रकाशन, आगरा 12ए श्रीवास्तव डॉ. डी. एन. , अनुसंधान विधियाँ, साहित्य प्रकाशन, आगरा 1996-97

13- सामर्थ्य , मध्य प्रदेश राज्य शिक्षा केन्द्र 2206-07

14- प्रेमचन्द्र डाबी , जनजातीय लोक साहित्य (वागड़ प्रदेश के विशेष संदर्भ) अंकुर प्रकाशन 13 पीपलेश्वर महादेव की गली, नाइयों की तलाई, उदयपुर (राजस्थान) 313001

15- राजीव रंजन प्रसाद, वस्तर नामा (बस्तर के भौगोलिक, ऐतिहासिक, लोक कला - संस्कृति और सामयिक संदर्भों पर) यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा दिल्ली 110032

16- उमाशंकर मिश्र समाजिक संस्कृत मानव शास्त्र, कमल गुप्ता वित्त पालका प्रकाशन प्रेमकुंज, 1317189 शांतिनगर दिल्ली 110035

17- नरेश कुमार वैदूप , जनजातीय विकास, रावत पब्लिकेशक सत्यक अपार्टमेन्ट जैन मंदिर रोड, सेक्टर 3 जवाहर नगर, जयपुर 302004

18- वी. एस. चटर्जी जयशंकर प्रसाद उपाध्याय, वाचिक परम्परा व साहित्य, आकृति प्रकाशन सी - 51 एस - 2 ईस्ट ज्योति नगर, दुर्गापुरी चौक, शाहदरा, दिल्ली 110093

◈◈

ISSN : 2349-9273

श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में भाव ध्वनि

- डॉ. वर्षा गौड़
- उप निदेशक
वैदिक शोध संस्थान, कानपुर-208007
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
varshagaur.india@gmail.com

श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में यथास्थान भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। यहाँ विविध भावों में विभूषित कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं-

'हजारों किरणों वाले सूर्य नारायण भी अपने तेज पुन्ज से जिस अन्धकार को विनष्ट करने में समर्थ नहीं हुये, उस मोहात्मक अज्ञानान्धकार को अपने प्रताप जिन्होंने विनष्ट किया है और जो ब्रह्मादि देवों के नियन्ता है, श्री धर्मदेव के पुत्र, उन श्री स्वामीनारायण को मैं प्रणाम करता हूँ।[1]

भगवत्कथा से विमुखजन जिसे कष्ट से ही प्राप्त कर सकें, ऐसे सौन्दर्य के निधान अक्षरधाम को समाधि के द्वारा बतलाने वाले ऐकान्तिक धर्म के लिए जिन्होंने मनोहर मनुष्याकृति स्वीकार की है और भक्तजनों को अपने लीलाचरित्रों से प्रसन्न कर दिया है - ऐसे श्री स्वामीनारायण को मैं प्रणाम कर रहा हूँ।'[2]

प्रस्तुत पद्यों में कवि के आलम्बन श्रीस्वामीनारायण के प्रति रति की व्यंजना हो रही है। रति में श्रीस्वामीनारायण के जिस गौरव और महात्म्य का चित्रण हुआ है, वह अनुभाव है। यहाँ विबोध, स्मृति, मति, धृति आदि व्यभिचारी भाव हैं।

निम्नलिखित पद्य में कवि सतपुरुषों का अभिवादन करता हुआ इस प्रकार कहता है -

'श्रीस्वामीनारायण भगवान् के पादारविन्दों की दिव्य सुगन्धि में जिसके चित्तरूपी भ्रमर आसक्त है, धर्म, ज्ञान, वैराग्यादि गुणों से अतिश्रेष्ठ जितेन्द्रिय और दया से द्रवित चित्त वाले सत्पुरुषों का भी मैं अभिवादन करता हूँ।'[3]

प्रस्तुत पद्य में कवि की सत्पुरुष विषयक रति ध्वनित हो रही है। यहाँ कवि सतपुरुषों के धर्म, ज्ञान, वैराग्य, जितेन्द्रियता और उदार-भाव का वर्णन करते हुए उनके प्रति अतिशय श्रद्धा और भक्तिभाव को प्रकाशित कर रहा है।
कवि भगवान् श्रीहरि के निर्मल यश का इस प्रकार वर्णन कर रहा है -

'भगवान के यश से शुभ्र हुये भूतल को देखकर विस्मित शंकर भगवान् अपने नन्दी बैल पर प्रियतमा पार्वती और गंगा को चढ़ाकर शीघ्र ही कैलास पर्वत पर चले गये। भगवान् शंकर के कैलास पर्वत पर आरोहण किये जाने पर भगवान् का यश जो शीघ्र प्रवाहशील जल के सदृश अवारणीय है वह इस प्रकार चारों ओर फैल गया कि प्रिय गंगा नंदीश्वर और कैलास पर्वतादि से युक्त स्वयं भगवान शंकर ने उसी समय से तपस्वी के सदृश शुभ्र व्रत को धारण किया। श्रीहरि के यश रूपी चन्द्रकलाओं का पण्डितों ने सदैव पान किया है, तो भी कलाओं के क्षय से रहित प्रतिदिन मोक्ष रूपी उत्तम वासना युक्त सत्पुरुष रूपी कुमुद के समूह को प्रफुल्लित करते हैं।'[4]

प्रस्तुत पद्य में श्रीहरि के निर्मल यश का वर्णन किये जाने से उनके प्रति भक्तिभाव ध्वनित हो रहा है। श्रीहरि के प्रति रति में जिस विशिष्ट गौरव और यश का चित्रण हुआ है, वह अनुभाव है। यहाँ मति, स्मृति, धृति, विबोध आदि व्यभिचारी भाव है।

कवि सम्राट् अचिन्त्यानन्द में श्रीहरि के प्रति नैष्ठिक भक्ति है। उनका

श्रद्धाभिभूत हृदय उनके दिव्य अनुभाव एवं प्रताप का वर्णन करने से आनन्दित हो उठता है। कवि का कथन है कि श्रीहरि अपने अनुपमेय प्रताप के द्वारा पापियों को उसी प्रकार भयभीत कर देते हैं जिस प्रकार सिंह हरिणों को भयभीत कर देता है।[5]

यहाँ सुन्दर उपमा के प्रयोग के द्वारा कवि ने श्रीहरि के अलौकिक उत्कर्ष का वर्णन किया है। पापी व्यक्ति श्रीहरि के प्रताप से भयभीत हो जाता है। अतएव यहाँ त्रास, मति, विबोध आदि भावों की सुन्दर व्यंजना हो रही हैं।

'श्रीहरि के प्रताप की कथा-वार्ता करने वाले के आगे कोई भी पण्डित अथवा ब्रह्मा भी भाषण नहीं कर सकता। यदि कोई उद्धत मनुष्य कुछ बोलने का प्रयास करता है तो उसके शब्दसमूह गले की नली में ही अन्दर-अन्दर गायब हो जाते हैं। अर्थात् वे बाहर नहीं निकल सकते हैं। श्रीहरि का प्रतापरूपी अग्नि असुररूपी जल में गिरकर और उसमें अग्नि लगाकर दिशाओं को प्रकाशित करता है, परन्तु भगवान के स्नेह के परिस्रवण से आर्द्र अत्यन्त कोमल अंग वाले भक्तों को स्पर्श भी नही करता, यह कितनी आश्चर्यजनक बात है।

श्रीहरि के प्रताप से सम्बन्धित उक्ति अर्थात् कथावार्ता में सुधा (अमृत) वास्तव में उपस्थित है। भ्रमित बुद्धि वाले उसे चन्द्रादि में बार बार व्यर्थ ही ढूँढते हैं। यह कोमल मोह के कारण है। इस तरह लोगों को दूसरी-दूसरी जगह में ढूँढ़ना ठीक नही है। इसमें निम्नलिखित अभियुक्ति प्रमाण हैं यथा -

'अब्धौ विधौ फणिनां निवासे
केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति दिवीतिचान्ये ।
क्षारः क्षय पतिमृतिर्गरलं विनाशः कण्ठे सुधा
वसित वै भगवज्जनानाम् ।।[6]

यहाँ कवि ने श्रीहरि के प्रति अतिशय श्रद्धा और विश्वास को व्यक्त करके यह स्पष्ट किया है कि श्रीहरि का प्रताप अद्वितीय है। उसको प्रकाशित करने वाले विद्वान् के समक्ष कोई टिक नहींसकता। श्रीहरि के प्रताप की कथा वार्ता में अमृत स्वयं प्रस्तुत हो जाता है। यहाँ इस वर्णन में मति, स्मृति, हर्ष आदि भावों की व्यंजना हो रही है। भगवान् स्वामीनारायण के दिव्य स्वरूप और असाधारण सौन्दर्य पर प्रकाश डालते हुए कवि सम्राट् अचिन्त्यानन्द इस प्रकार लिखते हैं -

'ये स्वामीनारायण भगवान् सदा किशोर अवस्था वाले। करुणा से विहार विहार करने वाले, सुन्दर दो हाथ वाले, स्वाश्रितों को सुख देने वाले, सुशोभित नवीन मेघ की तरह सुन्दर शरीर वाले, मुरली को धारण करने वाले तथा सुशोभित अवयवों वाले हैं। दक्षिण चरण में स्वत्तिक - जव - जाम्बु - ध्वज - अंकुश - अनुज - अम्बुज - अष्टकोण - वज्र - ऊर्ध्वरेखा इन नव चिन्हों तथा वाम चरण में मीन - त्रिकोण - व्योम, आकाश, गोपद, कलश, अर्द्धचन्द्र ऊर्ध्व रेखा तथा धनुष इन सातों चिह्नों से युक्त है अर्थात् सोलह चिह्नों से युक्त चरणों वालो श्री हरिकृष्ण, रत्नजटित नूपुरों की ध्वनि से सुशोभित पैरों वाले, गहरी नाभि वाले और बड़े पेट वाले हैं। श्रीहरि करोड़ो निन्दनीय गर्व वाले कामदेवों के अतिशय गर्व का विनाश करने वाले, दोनों कर्णों में सुभोभित कुण्डल रूप सुन्दर अलंकार वाले, सुवर्ण के बाजूबंद से ज्योतिमान्, नाना प्रकार के दिव्यमणियों से जगमगाते (चमकीले)न मुकुट वाले तथा दोनों हस्तों में कंकणों से शोभायमान है। श्री स्वामीनारायण भगवान् श्रेष्ठ मोतियों के हारों को धारण किये हैं। अत्यन्त सुशोभित कोस्तुभमणियों से उज्ज्वल शंख जैसे कण्ठ वाले और विशुद्ध मणियों और उज्ज्वल रत्नों के समान कान्तिवाली करधनी से समलंकृत सर्वथा परिपूर्ण काम है।'

प्रस्तुत पद्य में औत्सुक्य हर्ष, मति, स्मृति आदि भावों की व्यंजना हो रही है। कवि सम्राट अचिन्त्यानन्द ने रामानन्द मुनि की भगवान् श्रीकृष्ण में अनन्य भक्ति का निरूपण इस प्रकार किया है -

'वेदोक्तसंस्त्वकार युतः प्रपन्नों यः
प्राक्तनाभ्यासबलेन कृष्णे ।
गरीयसीं प्रीतिमनन्यभक्तिं
चकारस्याखिलपंकहहर्न्तुः ।।
वशी स्थितो नैष्ठिकवर्णिधर्मे
विरक्त्युदस्तात्म निकेतनोयः ।
रामानुजप्रापितकृष्णदीक्षः
सामात्समीक्ष्योज्झित्संशयस्तम् ।।
सपुण्यतीर्थेषु चरन्महात्मा
जनानमान्विदधद्धरायाम् ।
उपदिंशस्तीर्थमगात्प्रयागं भक्तिं
भवोच्छेदसहां च तेभ्यः ।।'[7]

यहाँ श्री रामानन्द मुनि की भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति जो अनन्य भक्ति प्रस्तुत हुई है, उसमें हर्ष, औत्सुक्य, मति, स्मृति आदि भावों की व्यंजना हो रही है। कि कवि ने श्रीहरि के दिव्य चिह्नों का मार्मिक ढंग से वर्णन किया है -

'कुर्वतामपि निरीक्षणमात्रं मोक्षदं
सकलसद्गुणपात्रम् ।
तं विलोक्य नवनीरदगात्रं -

मोदमाप जनता ह्यातिमात्रम् ।।

स्वस्तिकादिनवदिव्यललामशालिदक्षचरण

रमणीयम् ।।

मीनमुख्यनगरम्यतरांकभजमन-

शुभवामपदाब्जम् ।।

ताम्रपल्लव निमांगुलिश निराजितातिमृदु

-सुन्दर पादम् ।

तत्शोणनखनिर्गतरश्मितर्जितोष्णकिरणा-

द्युतिभासम् ।।'[8]

अर्थात् दर्शन करने वाले को भी मुक्ति देने वाले, समग्र सद्गुणों के पात्रभूत, नवीन मेघ की तरह सुन्दर शरीर वाले बालक को देखकर जनसमूह अति आनन्दित हुआ। स्वस्तिकादि नव संख्या वाले, दिव्य और कमनीय शोभा वाले- 1- स्वस्तिक, 2- जव, 3- जाम्बु, 4- ध्वज, 5- अंकुश, 6- अम्बुज (कमल), 7- अष्टकोण, 8- वज्र, 9- ऊर्ध्वरिखा। इन नव चिन्हों से सुशोभित दाहिने पैर वाले और 1- मीन, 2- त्रिकोण, 3- व्योम (आकाश), 4- गोपद, 5- कलश, 6- अर्द्धचन्द्र, 7- धनुष। इन सात अतिशय रमणीय दिव्य चिह्नों से शोभायमान बायें पैर वाले, बालक को देखकर जनसमूह अत्यन्त आनन्दित हुआ। लालवर्ण वाले नव पल्लवों के समान अंगुलियों की पंक्ति से अतिशोभायमान, अतिकोमल, सुन्दर चरण वाले, लाल वर्ण वाले पैरों की अंगुलियों के नाखून से निकलती हुई ऊपर उठने वाली किरणों से जिसने सूर्य की विविध प्रकार की कान्ति को तिरस्कृत किया है, ऐसे बालक को देखकर जनसमूह अति आनन्दित हुआ।

यहाँ हर्ष, औत्सुक्य, स्मृति, मति आदि भावों की सहज रूप से व्यंजना हो रही है। श्रीहरि के सर्वेश्वरत्व एवं सर्वनियन्तृत्व स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए मुनिजन कहते हैं कि हे हरे! राजाओं के स्वामी, चक्रवर्ती की अनतिक्रमणीय आज्ञा से विचरण करने के स्वभाव वाले, अतएव भवाभिभूत एक भूखण्ड के राजा, अपनी प्रजा द्वारा अर्पित किये हुए बलि को भोगने वाले आधीन राजा सम्राट को जिस प्रकार उपहार देते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मादि देव आपको उपहार अर्पण करते हैं। शब्दादि विषयों में आसक्ति रखने वाले, देह और इन्द्रिय के लालन-पालन में लगे रहने वाले और दुर्बद्धि वाले व्यक्ति को आपके अक्षरधाम की प्राप्ति नहीं होती। विषयों की सम्पूर्ति के लिए स्वर्गादि में भ्रमण करने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती अपितु उससे दुःख ही होता है -

'उपेयुषो मंडलनाभितां यथा

रसापतेवर्षभुजोबयाकुलाः ।

बलिं हरे विश्वसृजोऽर्पयति ते

तदापि नोऽलध्यानिदेशवर्त्तिनः ।।

कुयोगिनां त्वं विषयानुषंगिणां

दुरासदः कंठमणिर्यथास्मृतः ।।

अशर्म तेषां सततं हि दुर्धियाँ

भवत्पदावध्यनिवृत्तकालतः ।।'[9]

प्रस्तुत पद्य में हर्ष, तर्क, मति, स्मृति आदि भावों की सहज व्यंजना हो रही है। निम्नलिखित पदों में श्रीहरि के महनीय अनुभाव प्रताप एवं ऐश्वर्य का वर्णन हुआ है। कवि का यह कथन विशेष महत्व रखता है कि श्रीहरि की भक्ति से रहित मानव का सब कुछ निष्फल ही रह जाता है।

'त्वमीशिता स्वर्दुरितेव शेवधिर्निजता-

श्रितानामखिलेष्टसतप्रद ।

निपीतपीयूषमिवाप्यजानतां करेषि मोक्षं

भजतां वपुर्भृताम् ।।

सुरैस्सितैश्वर्यगुणोत्तमान्वयसुरूप-

विख्यातयशोभिरन्वितम्' ।

जनं हि विह्नस्तव भक्तिवर्जितं फलं गावक्ष्या

इवं वीक्षणप्रियम् ।।'[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहरि सम्भव महाकाव्य में विविध भावों की यथास्थान व्यंजना हुई है कवि भाव ध्वनि के संयोजन में पूर्णतया सफल रहा है।

श्रीहरि के बन्धु और एकत्रित पुरजन नेत्रों में आसुओ को भरकर निकल पड़ते हैं। श्रीहरि परित्याग से नष्ट मंगल वाली अयोध्या नगरी जिसका शीघ्र ही देशान्तर हो गया हो, ऐसी स्त्री की तरह शोभाहीन हो गई, गौएँ तृण नहीं खा रही थी, बछड़े दूध नहीं पी रहे थे, अग्निदेव हुत द्रव्य को ग्रहण नहीं कर रहे थे और अयोध्या नगरी का घोर शोक देखकर मंगल, बुध आदि ग्रह भी क्षुब्ध हो गये थे -

'सपदि हरिणा रेजे पुरी न विमंगला विगतदयिता

नारीवाशु स्तृणानि न धेनवः ।

पपुरति पयो दम्या जहर्हुवीषि बहयो ययुरथ

तदुच्छोक निरीक्ष्य भृशं ग्रहाः।।[11]

यहाँ श्रीहरि के वियोग में लोग व्याकुल हो जाते हैं। अतएव श्रीहरि यहाँ आलम्बन हैं। उनका गृहपरित्याग उद्दीपन हैं। उनके वियोग में कंदन निश्वास, उच्छ्वास, प्रलाप आदि अनुभाव है और यहाँ निर्वेद, मोह विषाद, उन्माद आदि भावों की व्यंजना हो रही है।

एक ही साथ में उदय हुए अनन्त सहस्त्र सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाश के सदृश प्रकाशयुक्त निरन्तर एक रूप वाला,

जगत् का आदि कारण, जिसके समान दूसरा कोई नहींहै, ऐसा अक्षरधाम गोलोकधाम में है। उस अक्षरधाम की महिमा अनन्त है। जिसका प्रकाश अलौकिक हैं। जिसे प्राप्त कर मानव पुनः संसार में नहीं आता -

'सहोदितानंतसहस्त्रसूर्यविधुप्रकाश
-सतैतकरूपमह्न ।
आद्यं जगत्कारणमद्वितीयं यदक्षरं ब्रह्म
- वदन्ति वेदाः ।।
परं यदष्टावृतितः पवित्रं कृतान्त-
मायाभयहीनमस्ति ।
अहस्काराधैरर्विभासनीयं गत्वा जनोऽसौ
न निवर्तते यत् ।।
समन्दिरैर्दिव्यविचित्रवर्णनाना
- मणीन्द्रामलरत्नशालैः।
विद्योतमानं ज्वलितैरनेकैर्युक्ता
-धिवासं प्रथितानुभावम्।।' [13]

यहाँ गोलोकधाम का विलक्षण चित्रण हुआ है। गोलोकधाम और अक्षरधाम अलौकिक वस्तुओं से सुशोभित है। इन अलौकिक वस्तुओं का विचित्र वर्णन उद्दीपन है। रोमांच, गद्गद्, स्वर, सम्भ्रम, नेत्र, विकास आदि अनुभाव हैं। यहाँ वितर्क, आवेग, सम्भ्रम, औत्सुक्य, हर्ष आदि भावों की व्यंजना हो रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में विविध प्रकार के भावों का सहज संयोजन हुआ है। भावों की योजना में कवि सफल रहा है। इस महाकाव्य में भाव ध्वनि के महत्वपूर्ण उदाहरण स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं।

श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में रसाभास, भावाभास आदि के महत्वपूर्ण प्रयोग -

श्रीहरिसम्भव महाकाव्य एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इसके प्रयोगकर्ता कवि सम्राट अचिन्त्यानन्द रससिद्ध कविरत्न है। इसमें रसों एवं भावों का सम्यक् परिपाक हुआ है। अतः रसाभास एवं भावाभास के बहुत कम स्थान है। कतिपय पद्यों का अवलोकन करें -

'वृष विपाटिनं उन्दुरुभिर्वृतैः
फणमृतो नकुलैरुश्छागलै रूपाः ।
मृगगणौश्च तरक्षुगणा द्विपादै
हरिवराः करटैश्य निशाटनाः
पशुगणा पुरूमन्युयुतास्तथा
सहजवैरमघास्य परस्परम् ।
मुनिसुता इव संदधते मुनेर्
व्रतमिमे यशवोऽपि हि यत्र सत् ।।' [13]

इस आश्रम में बिल्ली चूहों के साथ, सर्प चूहों और नेवलों के साथ, कुत्ते बकरियों के साथ, सिंह हाथियों के साथ, उल्लू कौओं के साथ अत्यधिक वैर वाले पशु परस्पर स्वाभाविक बैरभाव का परित्याग कर मेल से रहते हैं। इस प्रकार पशु भी मुनि पुत्रों की तरह मुनिवृत्तों को निश्चय ही धारण करते हैं।

यहाँ पशुओं में भी मुनि पुत्रों की तरह शान्त रस की सम्भावना की गयी है। अतएव यहाँ शान्ति रसभाव की स्थिति है।

'परस्परं तन्महिमामित्थं
समीरयन्त्यः प्रणयार्द्रचेतनाः ।।
निजोत्तमा डेग्षु दधुः प्रमोदास्
तदीयपादाम्बुज सद्रजांसि ।।' [14]

यहाँ स्त्रियों का श्रीहरि के प्रति जो विशिष्ट भाव प्रस्तुत किया गया है, उससे भावाभास ध्वनि हो रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीहरिसम्भव महाकाव्य में यथा स्थान रसाभास एवं भावाभास आदि की योजना हुई है। कवि रसयोजना की तरह ही रसाभास एवं भावाभास के संयोजन में सफल रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 1/3
2- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 1/4
3- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 1/5
4- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 1/7-9
5- वही 1/24-26
6- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 1/43
7- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 7/30-32
8- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 7/40-41
9- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 14/12, 13
10- वही 14/28, 29
11- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 14/45
12- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 2/9, 11,12
13- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 14/12, 13
14- श्रीहरिसम्भव महाकाव्य 2/36, 37

◈◈

ISSN : 2349-9273

पुरानी नींव पर नया निर्माण : अतिशय

- श्रीमती अर्चना शर्मा
असि. प्रोफेसर - हिन्दी विभाग,
गणपत पार्सेकर कालेज ऑफ एज्यूकेशन,
हरमल-403507 गोवा

ई-मेल :
archanagoa@yahoo.com

संस्कृति किसी समाज की वह गहरी अन्तर्वस्तु है जो उस समाज द्वारा सोचने, विचार करने, खाने-पीने, रहन-सहन, कला, उत्सव त्योहार आदि में परिलक्षित होती है। हमारी इसी संस्कृति के अतीत के पन्नों में व्यक्तिगत से लेकर पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि सभी समस्याओं के मॉडल दुबके हुए हैं। ऐसे सभी समस्याओं के समाधान के लिए मानव की मानव बनाने की पहल पुरातन काल से होती आ रही है। अतः समाधान हेतु शिक्षा और विद्या में समन्वय आवश्यक है। शिक्षा जीविकोपार्जन की जानकारी देती है तो विद्या जीवन में समझदारी पैदा करने में सहायता करती है। प्राचीन भारत की शिक्षा पद्धति का मूल मंत्र ज्ञान प्राप्ति के साथ मानवीय मूल्यों एवं नैतिक गुणों की स्थापना करना रहा है। प्राचीन शिक्षा जीवन के लिए भौतिक साधनों के अर्जन के अलावा आन्तरिक चेतना की शुद्धता पर बल देता है। 'डॉ. राधाकृष्ण ने मनुष्य मात्र के लिए उच्च शिक्षा को परमोपयोगी माना जो सुख और सम्पत्ति को जुटाने वाली शिक्षा प्राप्त कराने के साथ-साथ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना को जागृत कर सके, उसके आन्तरिक सौंदर्य को बढ़ा सके।'[1] अतः भारतीय संस्कृति में अन्तर्मुखी विकास को ही महत्व दिया गया है। यह मनुष्य मात्र की जीवन शैली को बदल सकता है।

मृदुला सिन्हा भारतीयता के रंग में रंगी लेखिका हैं। इनकी रचनाओं में भारत दर्शन की झलक अवश्य मिलती है। भारतीय जीवन पद्धति को जीने वाली मृदुला सिन्हा की रचना प्रक्रिया भारतीय पृष्ठभूमि को अपने साथ लेकर चलती हैं। पौराणिक कहानियाँ, भारतीय परम्पराएँ या सदियों के अनुभव तथ्यों के आधार पर सामाजिक नैतिक मूल्यों को जीवन में उतारने का प्रयास लेखिका द्वारा सतत् किया गया है। मृदुला सिन्हा का उपन्यास अतिशय पौराणिक कहानी देवयानी-ययाति के कथ्य को लेकर लिखा गया है। जिसमें जीवन मूल्यों के अधुनातन रूप को तलाशने का प्रयास है। वे स्वयं उपन्यास की भूमिका में लिखती हैं- 'अतिशय की कथा के माध्यम से मैंने सनातन समाज के शाश्वत जीवन-मूल्यों को आधुनिकतम रूप में तलाशने का प्रयास किया है।'[2] देवयानी-ययाति के पौराणिक कहानी के अनुसार महर्षि शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का विवाह नहुष के पुत्र ययाति से होता है। ययाति अपनी भोगी, कामलोलुप प्रवृत्ति के कारण देवयानी के सहेली शर्मिष्ठा से सम्बन्ध बनाता है। उसकी इस दुष्प्रवृत्ति के कारण उसके ससुर शुक्राचार्य उसे यौवनावस्था में वृद्ध होने का श्राप देते हैं। वृद्ध होकर भी वह अपनी काम और भोग की तृप्ति के लिए अपने ही पुत्रों से उनकी यौवनावस्था माँगता है। ययाति और शर्मिष्ठा का पुत्र पुरु उसकी मदद करता है। इस कथ्य के माध्यम से लेखिका वर्तमान समाज की सच्चाई को उजागर करती है, जो योग और भोग की होड़ से उपजता है।

सन् 2003 में मृदुला सिन्हा द्वारा लिखा गया 'अतिशय' उपन्यास तीन पीढ़ियों के द्वन्द्व को चित्रित करता है। यह उपन्यास भारतीय जीवन पद्धति की उत्कृष्ट गौरवशाली परम्परा को दर्शाता है, साथ ही आधुनिकता के नाम पर किया जाने वाला अंधानुकरण के माध्यम से भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के संरक्षण

को चुनौती के रूप में देखता है। अतिशय का शाब्दिक अर्थ है 'आवश्यकता से अधिक।' उपन्यास में भोग के अतिशय से उपजी समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है और साथ ही यह उपन्यास संयम के अतिशय से निदान भी प्रस्तुत करता है। संयम बनाम भोग ही भारतीय संस्कृति की गौरवमयी विचारधारा बनाम आधुनिकता का अंधानुकरण है। इन दोनों के बीच सामंजस्य ही मानव को मानव बनाने की प्रेरणा देता है।

अतिशय उपन्यास के केन्द्र में दो मित्र यतीन्द्रनाथ गोयनका और रजनीश है। एक भोग और दूसरा योगी। यति जिसने भोगवादी दर्शन को अपनाकर देश का एक बड़ा उद्योगपति बनने की कामना करता है, वहीं रजनीश भारतीय सनातन संस्कृति को अपने जीवन का आधार मानता है। यति कपड़ा व्यापारी का बेटा है। अपनी सूझ-बूझ और लगन से पुश्तैनी व्यापार को फैलाता है। कपड़ा उद्योग में नई तकनीक को अपनाकर अपने व्यवसाय को ऊंचाई तक पहुंचाता है। यति का विवाह दर्शनशास्त्र के ज्ञानी वचनदेव त्रिपाठी की कन्या शिवानी से होता है। पति यति के काम भोगी प्रवृत्ति के कारण शिवानी यति से नहीं जुड़ पाती है और यति प्रेम की व्यग्रता के कारण शर्मिष्ठा की ओर आकृष्ट हो जाता है। परिणामस्वरूप शर्मिष्ठा मातृत्व के दायित्व से बंध जाती है। यति का जीवन शिवानी और शर्मिष्ठा के बीच कुहासे में कहीं खो जाता है। यति के इस पाप की सजा ससुर त्रिपाठी जी यति को देना चाहते हैं और अनायास ही वह कह जाते हैं - 'मैं भी अपनी पुत्री की दशा देख इन्हें वही शाप देता, जो शुक्राचार्य ने अपने दामाद ययाति को दिया था। यौवन में वृद्धावस्था को प्राप्त होने का शाप।'[3]

यति सुरा-सुन्दरी में डूबकर अपने युवावस्था में ही वृद्धावस्था को प्राप्त होता है। यति द्वारा निर्मित व्यापार का विस्तार वह इस हालत में सम्हालने योग्य नहीं रहता। इस डूबते जर्जर व्यापार को पुनः स्थापित और विस्तारित करने का कर्म यति और शर्मिष्ठा के बेटा पुरुषार्थ करता है। पुरातन और अधुनातन मूल्यों को अपनाने वाला पुरुषार्थ अमेरिका में पढ़कर भारतीय संस्कार रूपी पुरानी नींव पर आधुनिक शिक्षा रूपी निर्माण कार्य कर इमारत तैयार करता है। यह इमारत भारतीय जीवन पद्धति का प्रतीक है, जो जीवन की समग्रता लिए हुए है।

भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन की समस्त उपलब्धियों को चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में समेट रखा है। 'पुरुषार्थ से धर्म है, पुरुषार्थ से धर्म है, पुरुषार्थ से अर्थ है, पुरुषार्थ से समस्त कामनाओं की पूर्ति सम्भव है और पुरुषार्थ से ही परम शांति और परम आनन्द प्राप्त होता है।'[4]

धर्म का सम्बन्ध समाज से होता है। अर्थ का सम्बन्ध शरीर से होता है। काम का सम्बन्ध कामना और मोक्ष का सम्बन्ध आत्मा से होता है। इन चारों के समावेश से ही सुख की प्राप्ति होती है, जो मनुष्य इन चारों पुरुषार्थ के लिए प्रयत्नशील रहता है तभी वह सुखी होता है। किसी एक को पाने की होड़ से मानव जीवन खण्डित हो जाता है। भारतीय जीवन पद्धति में इन चारों की महत्ता समान है। मानव जीवन को सुखकर बनाने के लिए चारों आश्रमों में जीकर चारों पुरुषार्थों की कामना आवश्यक है। उपन्यास में त्रिपाठी जी द्वारा चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति से ही परम सुख पाने का संदेश है। भारतीय दृष्टिकोण को विश्व पटल पर रखते हुए वास्तविक सुख की प्राप्ति हेतु युवाओं को प्रेरित करते हैं। मानव जीवन को मिले वैज्ञानिक उपलब्धियों ने उसे भौतिक सुख तो दिए हैं, किन्तु इन सुखों से मनुष्य सुखी नहींहो सका। भूख, भय, भ्रष्टाचार, आतंकवाद के कारण मानव मन दूसरों से भय, छीने जाने का भय, ठगे जाने का भय आदि से ग्रसित होता गया। विश्वबंधुत्व की भावना के अभाव में इन भौतिक सुखों ने मनुष्य को मनुष्य बनाने पर बल नहींदिया। इन समस्याओं का हल सुलझाते हुए भारतीय जीवन में मानवता को सर्वोपरि माना गया है।

उपन्यास में त्रिपाठी कहते हैं - 'इन समस्याओं का निदान संयम है। अपनी जरूरतों में कटौती। दूसरों के लिए जीना। हमारे पूर्वजों ने मनसा, वाचा, कर्मणा संयम की बात कही। समाज ने उसे व्यवहार में भी उतारा तभी हजारों साल से जिन्दा है समाज। विश्व स्तर पर एक ऐसा संगठन चाहिए, जो मात्र मानव जाति को जीवित और जींवंत रखने का सोचे। अति आवश्यक है कि मानवता जीवित रहे।'[5] वर्तमान युवा पीढ़ी के इस भटकाव के सामने भारतीय संस्कृति के इन आदर्शों को प्रस्तुत कर मृदुला जी समस्या की जड़ों को ढूंढ कर उसके निदान के लिए रास्ता बनाती हैं। देश के युवाओं का विदेशों में पलायन के कारण हम विकासशील देश में ही गिने जाते हैं। युवा पीढ़ी विदेशों के चकाचौंध और भौतिकवाद को ही जीवन का सुख समझकर वास्तविक सुख से भटक रहे हैं। यदि इन नौजवानों के अन्दर अपने पुरातन जीवन दर्शन सनातन ज्ञान और हमारे सांस्कृतिक मानव दर्शन की जानकारी कूट-कूटकर भर दी जाए तो ये देश से बाहर जाकर भी अपनी अलग पहचान बनाकर नाम रोशन करेंगे। भारत की प्राचीन संस्कृति और आध्यात्म का ज्ञान युवा वर्ग को कराना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि भौतिक सुखों की प्राप्ति के साथ-साथ संस्कारित

जीवन पद्धति ही व्यक्ति को लम्बे समय तक प्रसिद्धि के सिंहासन पर बैठाए रखती है। ऐसे ही व्यक्तियों से श्रेष्ठ समाज की कल्पना की जा सकती है।

विश्व में पूँजीवाद और भूमण्डलीकरण का प्रभुत्व है। इसके प्रभाव से भले ही आर्थिक विकास को शिखर तक पहुंचाया गया हो, किन्तु सम्पन्नता और दरिद्रता के बीच की गहरी खाई को पाट नहींसका। असमानता की यह समस्या सभी विकासशील देशों की समस्या है। अतिशय उपन्यास में इस समस्या का भी हल ढूंढने का प्रयास लेखिका ने किया है। इसका समाधान आध्यात्मिक भौतिकवाद में निहित है। आध्यात्मिक भौतिकवाद से आशय है - 'वस्तुओं उसके उत्पादन एवं व्यक्तियों में इनकी खपत की औचित्यपूर्ण दृष्टि। आध्यात्म एक गहरी दृष्टि है, जो आन्तरिक जीवन के साथ भौतिक जीवन के प्रति भी समग्र दृष्टि रखती है। जब यह दृष्टि भौतिक वस्तुओं के उत्पादन एवं उसके सुनियोजन में लग जाती है तो इसे आध्यात्मिक भौतिकवाद के रूप में जाना जाता है।'[6] यति और शर्मिष्ठा का बेटा पुरुषार्थ, जिसने शिकागो विश्वविद्यालय से एम. बी. ए. की पढ़ाई पूरी कर यति के रुग्ण कम्पनी को पुनर्जीवित करने का सराहनीय कार्य किया। इसके लिए वह आध्यात्मिक भौतिकवाद का सहारा लेता है। शिवानी गारमेन्टस के वेबसाइट की टेग लाइन 'आप रुचि भोजन, पर रुची श्रृंगार' साधारण दिखाई देते हुए भी असाधारण है क्योंकि 'अपने द्वारा सिर्फ अपने लिए जी रही भोगवादी प्रवृत्ति को चुनौती देता एक मानवीय दृष्टिकोण'[7] का भाव समाहित है। कम्पनी के 'लोगो' में स्त्री-पुरुष और बच्चों की छोटी-छोटी तस्वीरें हैं। तस्वीर के नीचे लिखा है - 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय, सर्वजन सुखाय'[8] का सूत्र अपने शिष्यों को देकर पुरुषार्थ ने भी हित भाव को विश्व पटल पर रखने के लिए अध्यात्म का सहारा लिया। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों में कपड़े से हर वर्ग का शरीर ढका रहे, ऐसा प्रयास पुरुषार्थ की कम्पनी के माध्यम से किया गया।[9]

भारत के गाँव की परम्परागत कढ़ाई, रंगाई और प्रिंटिग को पुनर्स्थापित करने का जो कार्य शिवानी गारमेन्ट्स द्वारा किया गया, इससे स्थानीय लोक कलाओं को सम्बल मिला। राजस्थान का सांगानेरी प्रिंट हो या बिहार का मधुबनी, पंजाब की फूलकारी हो या लखनऊ की चिकनकारी। सभी में भारत के लोक-जीवन के छाप उभरते हैं। पुराने कारीगरों की कला को पुनः पहचान देने का कार्य किया जाने लगा। मृदुला सिन्हा कहती हैं- 'कोई कला अपनी मिट्टी में उपजी संतानों के अन्दर अवश्य जीवित रहती है।[10] उन्हें पुनः स्थापित करने का कार्य किया गया। जीवन को उसकी समग्रता के साथ समझने की दृष्टि भारतीय जीवन दर्शन का मूल मंत्र है। इस मंत्र को मृदुला जी उपन्यास में प्रयोग करती हुई कहती हैं- जीवन को उसकी परिपूर्णता में देखने सजाने का कार्य ही भारतीय जीवन का मूल मंत्र रहा है। यह पूर्णता का दर्शन हर अंग में दृष्टिगोचर होता है। जीवन में वस्त्र का स्थान भी एकांगी नहीं, जीवन की पूर्णता भी है वस्त्र। वस्त्र के अन्दर समाहित भारत जीवन-दर्शन को पुनर्जीवित करने में लगी है शिवानी गारमेन्ट्स।[11] इस तरह की सोच ही आध्यात्मिक भौतिकवाद के आशय को चरितार्थ करती है। यह व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सुख समृद्धि एवं शान्ति की ओर अग्रसर करता है। यह अर्थोपार्जन के लिए अधिक से अधिक उत्पादन की बात करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः' का उद्घोष करता है। इससे वैयक्तिक विकास, सामाजिक समरसता और राष्ट्रके सर्वागीण विकास का भाव है। समाज, देश और विश्व में व्याप्त असमानता को पाटने का समाधान आध्यात्मिक भौतिकवाद में सन्निहित है।

भारतीय समाज में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वस्थ परिवार स्वस्थ समाज का निर्माण करता है और स्वस्थ समाज सुखी और समृद्ध राष्ट्र का निर्माता है। इस निर्माण में समर्पण, निष्ठा, त्याग संयम आदि जीवन के अस्त्र है, जो जीवन को सार्थक रूप देते हैं एवं सामाजिक सम्बन्ध और जिम्मेदारियों को निभाने की समझ देते हैं। जिसकी शुरुआत परिवार से होती है, जो विवाह के बाद निर्मित होते हैं। उपन्यास में ऐसे सन्बन्धों की गरिमा के बारे में लेखिका कहती है- विवाह केवल दो दिलों का मेल नहीं होता। स्त्री-पुरुष का मेल भी नहीं। दो भिन्न परिवेशों का दो विचारधाराओं का, दो संस्कारों का मेल होता है। इसलिए अपने समाज में विवाह पूर्व जन्म कुण्डलियाँ और परिवार का रहन-सहन, खान-पान जीवनोद्देश्य आदि देखने का प्रचलन रहा है। विवाह दो परिवारों का मिलन है, दो व्यक्तियों का नहीं।[12]

भारतीय समाज में दो परिवारों के बीच का प्रेमपूर्वक निर्वाह विवाह जैसे संस्कारों को अधिक मजबूत बनाते हैं। भारतीय परिवार में पति-पत्नी का सम्बन्ध अधिकार से नहीं समर्पण और त्याग से मजबूत बनता है। उपन्यास में रजनीश शिवानी से कहता है - स्त्री पुरूष का संग निसर्ग का नियम है। दोनों एक साथ चलकर ही जीवन नैया को पार कर सकते हैं। सफल गृहस्थ जीवन के लिए दोनों में सहिष्णुता, संयम और उत्सर्ग के भाव का होना आवश्यक है।[13] आज वास्तविकता यह

है कि जो प्राप्त है उससे परे अन्य सुखों की तलाश में विवाहेत्तर सम्बन्धों की बाढ़ आ गई है। इसका कारण है संयम, अति व्यस्तता, परिवार से दूरी आदि। गृहस्थ जीवन के गड़बड़ाते ही व्यक्ति असफल और टूटा हुआ बन जाता है। उपन्यास में यति का भी यही परिणाम हुआ। दुख को बचाए रखने की कोशिश में आदमी मदृमद्य का सहारा लेता है और नाना भोगाकंक्षाओं में अपने को और भुलाए-जुटाए की कोशिश में रहता है। इसकी जगह यदि इस दुखानुभूति को स्वीकृत और सत्कृत कर लिया जाए तो उन झूठी महत्वकाक्षाओं का डंक निकल जाता है और फिर ऐसे व्यक्ति के द्वारा बाहर वैषम्य नहींबढ़ता बल्कि सामंजस्य का विस्तार होता है।[14]

अध्यात्म की आधारशिला संयम इस कामबीज को परिष्कृत कर ज्ञानबीज मे बदलने की क्षमता रखता है। अतः गृहस्थ जीवन में संयम अति आवश्यक तत्व है। दाम्पत्य सम्बन्धों के साथ-साथ अन्य सम्बन्धो की संरचना भी एक-दूसरे के दायित्वों के सहारे निखरता है। भारतीय संस्कृति में पारिवारिक चिंतन वृहत और आत्मीयता से लबालब है। जिस पर हर भारतीय को गर्व है। भारतीय परिवार की यही परम्परा और संकल्पना केवल भारतीय समाज के नहींअपितु विश्व समाज के लिए भी प्रासंगिक है।

स्त्री अस्मिता को भी भारतीय चिंतन से समझाने का प्रयास लेखिका ने अपने उपन्यास में किया है। प्रकृति ने स्त्री को विशेष गुण दिए हैं, जिसके माध्यम से वह पुरुषों के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को समझ लेती है। स्त्रियों के समर्पण और त्याग जैसे गुण भी प्रकृति की ही देन है। इसके सहारे वह पुरुषों पर जीत भी हासिल करती है। समर्पण का यह भाव केवल स्त्रियों में ही नहीं बल्कि पुरुषों में भी आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के समर्पण भाव से ही स्वस्थ परिवार की कल्पना सभव है, भले ही पुरुष परिवार के केन्द्र में हो, किन्तु नियोजक धुरी के रूप में स्त्रियाँ ही होती है। उपन्यास में रजनीश का यह कथन - स्त्री पुरुष के मिलन में भी नारी भी त्याग व समर्पण की मार्गदर्शक बन सकती है। प्रकृति ने सृजन और संवरण का कार्यभार देकर पुरुष से बहुत ऊँचा दर्जा उन्हें दे रखा है।[15] रजनीश का यह वक्तव्य स्त्री अस्मिता की ऊँचाइयों को स्पर्श करता है। मृदुला जी अपने पात्रों द्वारा ही स्त्री अस्मिता की प्रतिष्ठा कराने में सफल रहती हैं। वे इनके पुरुष पात्रों द्वारा ही समर्थन प्रस्तुत कराती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अतिशय उपन्यास भारतीय संस्कृति और जीवन पद्धति में व्याप्त जीवन मूल्यों की महत्ता को स्पष्ट करता है। मृदुला जी ने जिस पौराणिक कथा को लेकर यह उपन्यास लिखा गया उस कथा के पात्र और प्रसंग वर्तमान समाज में भी प्रासंगिक है। दाम्पत्य जीवन का पारिवारिक जीवन से समन्वय बनाए रखने का सार्थक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास सामाजिक सम्बन्धों को सहेजने के लिए संस्कारित वातावरण बनाने के लिए पौराणिक चरित्रों के माध्यम से आदर्श प्रस्तुत करता है। भारतीय जीवन पद्धति की पुरानी नींव पर आधुनिकता की नयी इमारत तैयार करने की ओर अग्रसर करता है। यह संस्कृति मानव की जीवन शैली को बदल कर भारत को विश्व गुरु बनने का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- पाँचवां स्तम्भ - डॉ. राधाकृष्णन् की शिक्षा दृष्टि की जरूरत, डॉ. रामशरण गौड़, संपादक - संगीता सिन्हा, अंक 117 जनवरी 2017, मासिक पृ. सं 22
2- प्रतिभा प्रतिष्ठान - नई दिल्ली, संस्करण 2016, मृदुला सिन्हा अतिशय पृ. सं. 10
3- वही पृ सं. - 107
4- प्रभात प्रकाशन - दिल्ली-1999, नरेन्द्र मोहन, भारतीय संस्कृति, पृ. सं. 104
5- प्रतिभा प्रतिष्ठान - नयी दिल्ली, संस्करण-2016, मृदुला सिन्हा, अतिशय, पृ. सं. 184
6- अखण्ड ज्योति - डॉ. प्रणव पाण्डया, अंक-10, अक्टूबर-2006, पृ. सं. 23-24
7- प्रतिभा प्रतिष्ठान - नयी दिल्ली, संस्करणम-2016, मृदुला सिन्हा, अतिशय,पृ. सं. 222
8- वही, पृ. सं. 222
9- वही, पृ. सं. 222
10- वही, पृ. सं. 226
11- वही, पृ. सं. 227
12- वही, पृ. सं. 50
13- वही, पृ. सं. 90
14- पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2001, जैनेन्द्र कुमार, संस्कृति आस्था और तत्वज्ञान, पृ. सं. 214

◈◈

ISSN : 2349-9273

जी.एस.टी. के लाभ-दोष, राज्यों के मध्य वितरण एवं दोहरे जी.एस.टी. के लाभ का निर्धारण

- डॉ. सुशील श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष-कामर्स विभाग,
हरसहाय पी. जी. कालेज, पी. रोड,
कानपुर-208011

ई-मेल :
dr.sushilsrivastava@gmail.com

जी.एस.टी. के लाभ -

सम्पूर्ण देश के लिए जी.एस.टी. विजयी स्थिति है। उद्योग, सरकार एवं उपभोक्ताओं सभी के लिए यह एक लाभकारक घटना है। इससे माल एवं सेवाओं की लागत कम होगी, अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा और माल एवं सेवाओं का विश्व स्तरीय प्रतिस्पर्द्धी उत्पादन एवं सृजन होगा। जी.एस.टी. का महत्व एवं लाभों की विवेचना निम्नांकित शीर्षकों में की जा सकती है -

1- **प्रत्येक मध्यस्थ को इनपुट क्रेडिट** - सम्पूर्ण पूर्ति श्रृंखला में निहित विभिन्न पूर्तिकर्ताओं को उनके द्वारा चुकता इनपुट टैक्स का क्रेडिट नियमानुसार स्वीकृत है। परिणामस्वरूप प्रत्येक स्तर पर मूल्य सम्बर्धन ही करयोग्य होता है और सम्पूर्ण कर भार केवल अन्तिम उपभोक्ता ही वहन करता है।

2- **अन्तर्राष्ट्रीय स्तरीय करारोपण प्रणाली** - सूचना एवं सम्प्रेषण की आधुनिक पद्धतियों के उपयोग के कारण भारतीय जी.एस.टी. प्रणाली ने अन्तर्राष्ट्रीय करारोपण प्रणाली का स्वरूप प्राप्त किया है। कराधान नियमों में स्पष्टता, सरलता से देश में निवेश वातावरण में आशान्वित सुधार अवश्यम्भावी है। ईमानदार और कर्मठ व्यवसायियों को संरक्षण और कर वंचकों और धोखेबाज को दूर रखने और चिह्नित करने की व्यवस्थामूलक विशेषता है।

3- **इलेक्ट्रानिक प्रस्तुतिरण** - सभी लेनदेनों के विचरण, प्रपत्र एवं विवरणियों की प्रस्तुति मानक प्रारूपों में ऑनलाइन की जाती है। अतः माल के परिचालन और सेवाओं के प्रावधानों की अन्तिम उपभोक्ता तक की स्थिति इलेक्ट्रानिक प्रणालियों डिजिटल समंकों के रूपमें उपलब्ध होने के कारण, कर वंचना त्रुटियों और कपट के अवसर न्यूनतम होते हैं। इनपुट टैक्स और आउटपुट टैक्स की सम्पूर्ण देश में मैचिग व्यवस्था जी.एस.टी. को अधिक पारदर्शी और शुद्ध प्रक्रियाओं क् रूप में प्रकट होती है।

4- **सम्पूर्ण देश एकल बाजार** - पूर्ववर्ती अप्रत्यक्ष करारोपण व्यवस्था प्रत्येक राज्य स्तर पर विमुक्तियों, प्रक्रियाओं, कर की दरों में भिन्नता के कारण, सम्पूर्ण देश में मूल्य विभेद और व्यावसायिक मानदण्डो में भिन्नता व्याप्त रहती थी। कुछ राज्यों में व्यवसाय केन्द्रीकृत थे, जहां अन्य राज्य केवल उपभोक्ता राज्य समझे जाते थे। जी.एस.टी. क्रियान्वयन पश्चात् सम्पूर्ण देश में व्यावसायिक परिचालनों और मूल्य व्यवस्था में एकरूपता से सम्पूर्ण देश एकल बाजार बन गया है।

5- **चेकपोस्ट का उन्मूलन** - राज्य सीमाओं पर चेक पोस्ट के उन्मूलन से (ई-वे बिल व्यवस्था से) कच्चे माल और अन्तिम उत्पाद की सम्पूर्ण देश में शीघ्र, स्वतन्त्र एवं निर्वाध प्रवाह सम्भव हो गया है। ई-वे बिल व्यवस्था के अधीन माल के प्रवाह पर सम्पूर्ण देश में कही से भी मॉनीटरिंग की जाती है और भौतिक निरीक्षण न्यूनतम हो गया है।

6- आवश्यक और दैनिकोपयोगी वस्तुओं पर कर मुक्ति - बड़ी संख्या में आवश्यक और दैनिकोपयोगी वस्तुओं पर (विशेषकर कृषि आधारित) कर मुक्ति प्रदान की गई है अथवा न्यूनतम दर 5 प्रतिशत रखी गई है। 20 लाख रुपये तक

वार्षिक आवर्त वाले छोटे व्यापारी जी.एस.टी. से मुक्त है। अभी 1.5 करोड़ रुपये वार्षिक आवर्त वाले व्यवसायी कम्पोजीशन स्कीम के अधीन अत्यल्प कर भुगतान की राहत प्राप्त कर सकते हैं।

7- **व्यक्तिगत हस्तक्षेप से मुक्ति** - जी.एस.टी. की सभी प्रक्रियाएँ ऑनलाइन सम्पादित होती है। सभी क्रियाकलाप कॉमन छध्न्द पोर्टल पर किए जाते हैं। परिणामस्वरूप न्यूनतम अफसरशाही और भ्रष्टाचार की सम्भावनाएँ रहती है। पंजीयन, रिटर्न्स, प्रस्तुति, रिफण्ड आदि की सभी प्रक्रियाएँ शीघ्र एवं सरल रूप में सम्पादित हो जाती है।

8- **काले धन व्यवस्था का उन्मूलन** - काला धन अर्थात् कर वंचित आय, इसके संग्रहण में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की कर वंचना होती है। जी.एस.टी. के अधीन प्रत्येक लेन देन इलेक्ट्रॉनिकली सम्पादित होता है। उसकी डिजिटल रिकॉर्डिग और मॉनीटरिंग व्यवस्था के कारण करवंचना अति दुरूह हो जाती है। अधिकांश लेनदेन बैंकिंग प्रणाली से होते हैं। अतः कोई बड़ा व्यवसाय रोकड़ी आधार पर चलाना असम्भव होता है। जी.एस.टी. प्रचलन से पूर्व, सरकार ने सम्पूर्ण वित्तीय सूचनाएँ, व्यक्तियों के समंक संग्रहण (डाटा बैंक) ऐच्छिक आय घोषणा, विमुद्रीकरण, टम्म अनुपालनाओं, आधार लिंकिंग आदि के द्वारा संगृहीत कर ली है, क्योंकि इसके बिना जी.एस.टी. का क्रियान्वयन सम्भव ही नहीं था।

9- **भारत से निर्यातों पर शून्य कर** - चूंकि, भारत से निर्यात, शून्य दर से करारोपित हैं, अतः अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्द्धी है। इससे निर्यात, निर्माणी गतिविधियाँ, रोजगार अवसरों में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय आय में उत्साहजनक परिणाम अपेक्षित हैं।

10- **टैक्स कास्केडिंग और बहुबिन्दु करारोपण का अन्त** - जी.एस.टी. के अधीन सम्पूर्ण पूर्ति श्रृंखला में इनपुट टैक्स क्रेडिट उपलब्ध होती है, परिणामस्वरूप। कर पर कर (टैक्स पिरामिडिंग) नही होने के कारण मूल्य संरचना में कास्केडिंग प्रभाव नही होने से बड़ी संख्या में उत्पाद और सेवाओं के मूल्यों में कमी आती है। कर की दरों, प्रक्रियाओं की एकरूपता के कारण विधायी अनुपालनाओं में सुधार होता है, जिससे करवंचना और नियमोल्लंघन में कमी आती है।

11- **एकीकृत राष्ट्रीय बाजार का सृजन** - जी.एस.टी. का लक्ष्य भारत को ऐसा आदर्श बनाना है, जहाँ कर की एक दर, प्रक्रियाएं हो, अवरोधों का अंत हो और राष्ट्रीय स्तर पर एक संभाग अर्थव्यवस्था का प्रादुर्भाव हो सके।

12- **'भारत में निर्माण' विचार को हल** - भारत सरकार द्वारा प्रारम्भ 'भारत में निर्माण' विचार के अभ्युत्थान को प्रशस्त करने में जी.एस.टी. का महती योगदान रहेगा, क्योंकि एक करव्यवस्था के अधीन माल एवं सेवाओं का उत्पाद राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्द्धी हो सकेगा।

13- **सरकारी राजस्व की अभिवृद्धि** - कर के आधार का विस्तार, सरल करारोपण एवं संग्रहण और करदाताओं की अनुपालना में वृद्धि आदि उत्साहवर्द्धक परिणामों के फलस्वरूप सरकारी राजस्व में वृद्धि आशानुकूल होगी।

14- **तटस्थता** - जी.एस.टी. प्रचलन पश्चात् पूर्ववर्ती व्यावसायिक प्रक्रियाएं, प्रारूप, संगठनात्मक संरचना, भौगोलिक स्थिति एवं उत्पाद प्रतिस्थापन उस रूप में चलते रहेंगे। अतः आर्थिक क्षमताओं में विकास एवं टिकाऊ दीर्घकालीन आर्थिक विकास सम्भावना बलवती होती है।

15- **जी.एस.टी. के अन्य लाभ** - (a) कर की दरों में कमी। (b) अनुपालना लागत में कमी। (c) ऐच्छिक अनुपालना विकास। (d) भ्रष्टाचार, विवाद एवं नौकरशाही में कमी। (e) कम सरकारी प्रशासनिक लागतें (f) मूल से अन्तिम उपभोक्ता तक लेन-देन की खोज।

जी. एस. टी. के दोष -

व्यवसाय के परिचालन एवं उपभोक्ता के हितों के समक्ष कुछ चुनौतियां है, जिनके कारण जी.एस.टी. क्रियान्वयन भी प्रभावित होता है। जी.एस.टी. के कुछ प्रमुख दोष ह्व कमियाँ या बाधाएँ निम्नांकित हैं -

1- **परिचालन लागत में वृद्धि** - भारत में अधिकांश व्यवसायी परामर्शी कर विशेषज्ञों की सेवाओं का लाभ नही लेते है और परम्परागत रूप से स्वयं कर निर्धारण करके रिटर्न प्रस्तुत करते समय अपेक्षित कर का भुगतान कर देते हैं। जी.एस.टी. की अनुपालनाओं को पूरा करने के लिए व्यवसायियों को पेशेवर विशेषज्ञों की सेवाएं अपेक्षित होगी, क्योंकि यह व्यवस्था सर्वथा नवीन, जटिल और थकाऊ है। अतः पेशेवर सेवाओं की लागतों का भार व्यवसाय को वहन करना होता है।

2- **जी.एस.टी. अनुपालनाएँ** - सर्वथा नवीन करारोपण व्यवस्था को अपनाते समय सूक्ष्म सूचनाओं / विवरणों / प्रक्रियाओं को समझने की आवश्यकता होती है, जिसके लिए भारत जैसे विविधता वाले देश में सभी स्थानों पर अभी ऐसी चतुराई का अभाव है। जी.एस.टी. अनुसार करबीजक का निर्गमन, तत्पश्चात रिटर्न्स की सामयिक प्रस्तुति के साथ GSTIN, पूर्ति का स्थान, HSN कोड आदि की

इलेक्ट्रॉनिक अनुपालना, अभी तक प्रचलित बही खाता प्रणाली का तुलना में जटिल प्रतीत होती है।

3- व्यावसायिक सॉफ्टवेयर में परिवर्तन - अधिकांश व्यवसाय लेखांकन, सॉफ्टवेयर के प्रयोग के साथ रिटर्न्स आदि के लिए ERPs को अपनाते हैं, जिससे उत्पाद शुल्क, सेवाकर, वैट जैसी कर अनुपालनाएँ उसमें निहित होती है। जी.एस.टी. प्रचलन के पश्चात् ERPs में भी परिवर्तन करने के लिए उसे अपग्रेड करना अथवा नवीन सॉफ्टवेयर क्रय करना होता है, जो कि जी.एस.टी. अनुपालक हो। इसके लिए नये प्रशिक्षित कर्मचारियों के साथ नवीन उपकरण आदि भी आवश्यक होते हैं।

4- ऑनलाइन प्रक्रियाएँ - जी.एस.टी. की सभी अनुपालनाएँ, रिटर्न्स प्रस्तुति कर भुगतान आदि सभी प्रक्रियाएँ ऑनलाइन पूरी की जाती है। छोटे व्यवसायी प्रायः तकनीक के प्रति चोचलेबाजी का विचार रखते हैं।

5- वर्ष के मध्य में नीतिगत परिवर्तन - वित्त वर्ष 2017-2018 में 1 जुलाई से जी.एस.टी. लागू करके, पहले 3 माह के लिए पुरानी कराधान व्यवस्था के साथ, शेष अवधि के लिए नवीन व्यवस्था अपनानी है।

6- क्लाउड तकनीकी सॉफ्टवेयर - जी.एस.टी. अनुपालनाओं को सरलता से पूरा करने के लिए क्लाउड आधारित तकनीक आवश्यक हो जाती है। इसमें बीजकों को अपलोड करने के पश्चात् आगामी प्रक्रियाएँ स्वयं सम्पादित होती रहेगी।

7- छोटे निर्माताओं पर अधिक करभार - पूर्ववर्ती कर व्यवस्था में 1.5 करोड़ आवर्त तक के निर्माता उत्पाद शुल्क दायित्व में मुक्त थे, जबकि अब जी.एस.टी. व्यवस्था में ऐसी मुक्ति केवल 20 लाख रुपये तक के आवर्त के लिए सीमित हैं। अतः SMEs का कर दायित्व बढ़ गया है। साथ ही, कम्पोजीशन विकल्प की सीमा भी 1.5 करोड़ वार्षिक आवर्त तक है, जिसके साथ इनपुट टैक्स क्रेडिट उपलब्ध नहीं है। अतः नियमित कर भार अथवा कम्पोजीशन का विकल्प भी चुनना आसान और विवेकपूर्ण नहीं लगता है।

8- करावकाश का अभाव - पूर्ववर्ती करव्यवस्था में कपड़ा उद्योग, दवाइयों का उत्पादन, FMCG उद्योग जैसे निर्माताओं को चुने क्षेत्रों में इकाई लगाने पर करावकाश उपलब्ध होता था, साथ ही राज्य सरकारें भी विभिन्न प्रोत्साहन प्रदान करती थी। जी.एस.टी. में ऐसी कोई रियायती प्रावधान नहीं होने के कारण ऐसे उद्योगों की बढ़ी लागतें उपभोक्ताओं को ही वहन करनी होती है।

9- ऊँची एवं विस्तृत कर दरें - जी.एस.टी. व्यवस्था तभी पूर्ववर्ती व्यवस्था से श्रेष्ठ कही जा सकती थी, जब इसमें कुल कर भार में कमी होती है और कर का सीमित विस्तार होता। जी.एस.टी. में कर की अनेक दरें प्रचलित हैं, साथ ही केन्द्र और राज्य दोनों करारोपित करते हैं।

10- मूल्य वृद्धि - सरकारी तन्त्र द्वारा ऐसा बहुत प्रचार किया गया कि निर्बाध इनपुट टैक्स क्रेडिट की उपलब्धि के कारण वास्तविक कर भार कम होगा और परिणामस्वरूप मूल्य कम होंगे, परन्तु ऐसा हुआ नहीं।

लेन-देन	जी.एस.टी. की व्यवस्था	पूर्ववर्ती वैट व्यवस्था	विवेचन
राज्य में विक्रय	CGST+SGST	वैटकेन्द्रीय उत्पाद शुल्क सेवा कर	अब राजस्व का विभाजन केन्द्र व राज्यों में किया जाएगा।
अन्तर्राज्यीय विक्रय	IGST	केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सेवाकर, CST	अब केवल एक ही केन्द्रीय करारोपण किया जाएगा।

IGST एवं CGST का राज्यों के मध्य वितरण

IGST का राज्यों के मध्य वितरण -

अन्तर्राज्यीय व्यापार एवं वाणिज्य के दौरान वसूल IGST का वितरण केन्द्र एवं राज्यों के मध्य जी.एस.टी. परिषद् की सिफारिशों में उल्लिखित रीति से किया जाएगा।

CGST का राज्यों के मध्य वितरण -

केन्द्र सरकार द्वारा उद्गृहीत एवं संगृहीत CGST का केन्द्र एवं राज्यों के मध्य वितरण वित्त आयोग द्वारा प्रस्तावित रीति के अनुसार किया जाएगा।

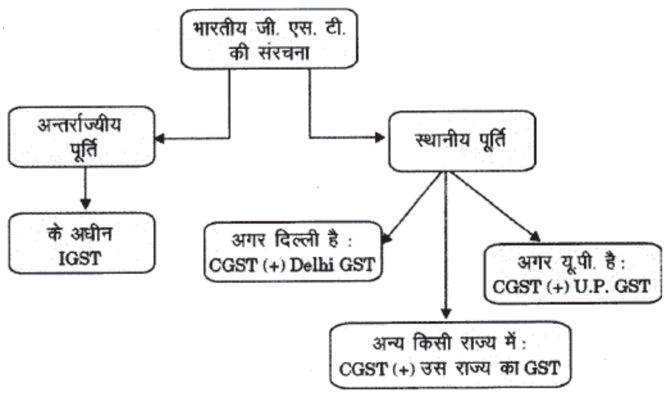

अधिकांश मामलों में जी.एस.टी. व्यवस्था में कर संरचना निम्नांकित रूप में होगी -**(टेबिल देखें)**

दोहरी जी.एस.टी. व्यवस्था -

विश्व के अनेक देशों में, एकीकृत एकल जी.एस.टी. प्रणाली लागू है, अर्थात् सम्पूर्ण देश में एकल कर लागू होता है। यद्यपि संघीय प्रशासन (Federal) देशों में 'दोहरी' जी.एस.टी. प्रणाली लागू है, जहां केन्द्र एवं राज्य दोनों द्वारा जी.एस.टी. उद्गृहीत किया जाता है। भारत में भी दोहरी जी.एस.टी. करारोपण प्रणाली प्रचलित हैं। जिसमें केन्द्रीय जी.एस.टी. (CGST) एवं राज्य जी.एस. टी. (SGST) का उद्ग्रहण, माल एवं सेवाओं के प्रत्येक लेनदेन पर किया जाता है।

दोहरी जी.एस.टी. व्यवस्था का कारण -

भारत एक संघीय देश है, जहाँ केन्द्र एवं राज्य दोनों को उपयुक्त विधानों के अधीन करारोपण एवं संग्रहण की शक्तियाँ संवैधानिक रूप से प्राप्त है। अतः केन्द्र एवं राज्य दोनों स्तरों पर क्रियान्वयन का पृथक् उत्तरदायित्व हैं।

दोहरे जी.एस.टी. के लाभ -

1- सरल एवं पारदर्शी कर - भारत जैसे देश के लिए यह सर्वोत्तम समाधान है, क्योंकि केन्द्र एवं राज्य स्तर पर करों की संख्या में कमी आयी है। इस व्यवस्था में सरल क्रियान्वयन एवं उत्तरदायित्व का सृजन भी निहित हैं।

2- कर की दर में कमी - जुलाई 2017 में भारत में जी.एस.टी. के क्रियान्वयन के समय से लेकर आगे भी कर दी दरों में इस प्रकार कमी आ रही है कि व्यापारी एवं उपभोक्ता दोनों को स्वीकार रहे।

3- करों ए सोपानी प्रभाव में कमी - पूर्ववर्ती करारोपण व्यवस्था के विपरीत, वर्तमान जी.एस.टी. व्यवस्था में करों के सोपानी प्रभाव में कमी आयी है, क्योंकि सम्पूर्ण पूर्ति श्रृंखला में निर्बाध इनपुट टैक्स क्रेडिट को अवसर सुलभ हुए हैं।

4- कर संग्रहण की राशि में वृद्धि - सरलीकृत कर अनुपालना एवं लेनदेन की लागतों में कमी का प्रभाव विस्तृत कर आधार के कारण कर संग्रहण की राशि में वृद्धि होती है।

5- भारत में संघीय राजकोषीय व्यवस्था - भारत जैसे देश में विविधता में एकता सुनिश्चित करने के लिए दोहरी जी.एस.टी. व्यवस्था ही उपयुक्त है। भारतीय राजकोषीय व्यवस्था में एकल जी.एस.टी. प्रणाली विवादग्रस्त एवं अव्यावहारिक हैं।

6- अधिकांश फेडरल देशों में एकल जी.एस.टी. लागू नहीं है - आस्ट्रेलिया को छोड़कर अन्य किसी देश में एक जी.एस.टी. व्यवस्था लागू नही है, जहां कहीं भी फेडरल राजकोषीय व्यवस्था प्रचलन में है।

7- सरल उपलब्धता - पूर्ववर्ती अप्रत्यकरारोपण व्यवस्था के ट्रांजीशन की एकमात्र सम्भावना दोहरी जी.एस.टी. ही थी।

8- शीघ्र परिवर्तनीय एवं सर्वोत्तम लाभकारी - दोहरी जी.एस.टी. व्यवस्था से व्यावसायिक कम्पनियों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वयन के लिए प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण उपलब्ध होगा।

करारोपण की शक्तियाँ भारतीय संविधान से प्रदत्त है, जिसमें संविधान 101 संशोधन अधिनियम, 2016 के अधीन संशोधन द्वारा केन्द्र एवं राज्यों को करारोपण की उपयुक्त शक्तियाँ प्रदान की गई है।

प्रत्येक राज्य का अपना जी.एस.टी. विधान होगा, जैसे- Delhi GST, MPGST, UPGST आदि संसद द्वारा पारित केन्द्रीय स्तर पर CGST अधिनियम है। केन्द्र शासित प्रदेशो में उनके प्रदेश में पूर्ति पर करारोपण के लिए उपयुक्त विधान के प्रवर्तन के लिए, जहां पर उनके विधानमण्डल नही है, ऐसे केन्द्र शासित प्रदेशों के लिए संसद द्वारा ही UTGST को पारित किया गया है। ऐसे केन्द्र शासित प्रदेश, जिनकी अपनी विधानसभाएँ है (जैसे - दिल्ली एवं पुडुचेरी) उन्होंने अपने-अपने जी.एस.टी अधिनियम पारित किए है - जैसे - दिल्ली विधानसभा द्वारा पारित दिल्ली जी.एस.टी. अधिनियम 2017।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- माल और सेवा कर - डॉ. एच. सी. मेहरोत्रा एवं प्रो. वी. पी. अग्रवाल, चतुर्थ संशोधित संस्करण-2019, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ-16

2- Goods and Service Tax - Dr. H. C. Mehrotra and Prof. V. P. Agarwal - Fourth Editon-2019, Sahitya Bhawan Publication, Page-17

3- माल और सेवा कर - डॉ. एच. सी. मेहरोत्रा एवं प्रो. वी. पी. अग्रवाल, चतुर्थ संशोधित संस्करण-2019, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ-18-19

4- Goods and Service Tax - Dr. H. C. Mehrotra and Prof. V. P. Agarwal - Fourth Editon-2019, Sahitya Bhawan Publication, Page-20-21

◈◈

ISSN : 2349-9273

Further Perspectives of Geography through human Consciousness

- Indranil Chingri
Research Scholar -
Dept. of Geography,
Mewar University, Gangrar,
Chittorgarh (Raj.)

E-mail:
Ichingri7777@gmail.com

Superviser :
Dr. P. S. Chauhan
Center Mewar University,
Gangrar, Chittorgarh (Raj.)

1. Introductions :

It is often said that the world is now approaching to the cross-road : A bright or a Dark Future in our history! The Concerned schoolars of the world are struggling in search of a bright future society. Under such circumstances, Indian thoughts are always attracting world schoolars to find a new horizon for re-constructing our society as a sparkling star (Prof. Shuichi Nakayama, 2009).

The proposed research work is taken in favour of humanism and in development of manking. In this proposal the main focus is given to thehuman consciousness and it is derived from the indian philosophy. The human being is in the central part of all studies, not only in geography but also in every field of study rolegon the earch. By considering such thinkings in this research work, the impotance and focus on human consciounsness is given. In plan of the work, the whole theme is according to Indian Philosophy which is deeply connected with the Indian Geography which will be presented.

The total work is concentrated to human consciousness, because in India, the Philosophy and the Geography are deeply inter connected where the manin concentric position is over the human consciousness from Ancient period of time. The whole presentation will be explored and presented throguh consciousness of man according to Indian thgoughts and its cultures. As said `The Thought-Practice' stimulus provides A Base to form a way of life for an Individual' (Volkov, 1975).

In the proposed work, the influence is from the rich philosophical background of Indian Cultures and ancient literatures, which are the main sources of the research. In the plan of work firstly the focus was mainly on the consciousness of human being and its historical reviews is given. Secondly the thoughts and conception of geography in India are presented and after the concepts and the bonding of man and nature are presented, whereas in third the impact of Indian Cultures and customs in Bengal region are presented in context of geographical thoughts in India.

Lastly a new branch of Indian Geography was being introduced in form of music in the field of geography. In India the music has a long historical background in Indian culture. Music is a Vital part of our Indian thoughts and cultures which is deeply rooted in Indian geography. Music plays very important role in development of human consciousness from ancient period in India

which will be presented in the research and finally the research includes the future perspectives and the findings, in the development of Indian geography to serve the society.

2. Literature Survey -

The literatures reagarding the proposed research work are mainly found from philosophy and physcological field of study. A part from these, the main sources of the research work are from our ancient literatures mainly : Vedic Literatures, Upanishads, Ramayana, Mahabharata, Puranas and many mores, which are deeply the part of Indian civilization. Many of the works are done beside the proposed work in the other field of study, but in the field of Indian Geography it is going to be introduced by this title. As in the title of the work, and the main focus and highlight is given on the human consciousness. As Professor Singh says : `AT the outer most reaches of human consciousness, Indian Mystics experienced the universal unity between microcosmic man and macrocosmic planetary system'. **- (Singh, 2009)**

In Indian Context, human `Conscious' or `Chetan' has an important and very significant role in every aspect of life. In the field of geography, about human consciousness it is found in the humanistic approach of geography; but in India or in Indian Context no such researchical work is found academically in the geographical field of study.

In the book entitle `Geographical Thought in India : Snapshots and visions for the 21st Century' - (2009), Prof. Rana P. B. Singh have mentioned some parts on his writing that `What once herodotus (C.484-425 bce) said that `Circumstances rule men; men do not rule circumstances', Needs Revision in the 21st Century on the line of catastrophic transformations and globalising society. In the postcolonial discourses the need for mutual cohesive interaction and selfrealization and awakening to search, re-search and understand the roots are the popularly accepted way of thought process', So in this proposal an attempt to present the thoughts and practices upon consciousness in Indian Intellectual traditions which rooted from ancient Indian civilization was made.

In the book entitled `Evolution of Geographical Thought' (2010), Dr. Majid Husain have mentioned some parts of his writing under humanism and also suggested the research to pay attention on these areas of study.

About Indian Geographical concepts and information which were found in the Ancient Indian Literatures are explores by some scholars in physical part of geography, but along with it many parts of human geography in Indian Context are to be brought under light. As Professor Singh writes : `We should help the field of Indian Geography through re-thinking and re-orienting ourselves to know our roots, context, concerns and the vision' (Singh, 2009).

3. Objectives and Scope of the presentinvestigation -

The main objectives of the proposed research are to present the ideas of geographical teachings and practices in geographical thoughts of India. Where-`Geography can integrate, it can inspire, it can affect and it can provide a service to society and it can do this best by building on its traditional span, which crosses the social-Environmental divide, its global vision, and its long traditions in communication and education' (Singh, 2009).

In the research the main focus is given to the consciousness of man because in Indian thought and in Indian Pholosophical Tradition human consciousness has concentric position, by considering such tradition will be done to explore the Indian Geographical conceptions and Intr-Relationship of man and nature. As Prof. Martin J. Haigh (2009) says : `The discipline could train disparate geomorphologists, Information System Technicans, generic liberal arts folk and cultural studies people or it could train people who are ecoliterate and empowered citizens of the world, people who are practical domains to effect the changes in society needed to create a sustainable future.

And lastly the investingation includes a new form of Indian Geography in form of music which will be presented by the study of Bengal

Region.

The Broad Objectives are :

1. Focus on Indian Geographical Conceptions and Ideas.

2. Highlight on human consciousness in Indian Context.

3. Focus on practical domains to effect the changes in society.

4. Eco-Friendly relationship of man and nature through consciousness on traditional span.

5. Impact of culture and tradition over environment.

The total work will be presented in Indian Context which will be beneficial to understand the geographical thoughts of India which are present in teachings and practices traditionally from ancient period in India in different forms and their conceptions about the man, earth, Nature and geography which will open the better scope in development of Indian Geography Academically.

4. Research Methodology -

Research Methodology is a techniques to lock at the methods which can be applied in a successful way to work out a problem in an orderly and organised manner. The research will be qualitative in nature. The proposed research tries to find out the Indian throughts and thinkings and its practices which are hidden in our different cultures and traditions from ancient period of Indian Civilization.

The research will be presented both in documentary and the interview method in this study. In this research, scholar will use the primary and the secondary data. The data will be depicted in support of the topics.

(i) Statement of Research Problem :

The research will attempt to present the geographical thoughts and thinkings in Indian Context which have rarely given importance in Geographical Literatures.

(ii) Research Design :

The proposed reserch tries to find out the rich philosophical and psychological impact of Indian thoughts in society and its development, so the research can be called exploratary in nature.

(iii) Data Collection Strategy -

(a) Primary Data - In-depath interview will be the source of primary data collection. The primary data are those which are collected afresh and thus to be original in character.

(b) Secondary Data - The research will depend on published/unpublished literatures and documents available on the topic including journals, books, newspaper reports and also reports of non govenment organisations (NGOs) working in the region. The secondary datas are those which have already been collected by someone else and which already been passed through proper process.

The study will be prepared on the basis of the following :

1. Field observations and interviews.

2. Published and unpublished literatures and manuscripts.

3. Experts interview and discussions with diferent organisations and NGOs.

The group interview will also be arranged to know the views regarding different problems and variations in the contcepts theories and their practices in akras and ashrams.

Referiences/Bibliography

1. Sankrityan, Rahul (1947), Darshan Digdarshan (in Hindi).
2. Ali, S. M. (1966), The Geography of Puranas.
3. Jha, Dr. Saktinath (2007), Fakir Lalon Shai, Desh Kal abong Silpo (in Bengali).
4. Basu, Bani (2007), Maitreya Jatak (in Bengali)
5. Rana, Lalita (2008), Geographical thought : A Systematic Record of Evolution.
6. Sen, Jyotirmoy (2008), A Text Book of Social and Cultural Geography.
7. Johnston, R. J. : Geography, Derek; Pratt, Gernldine; Watts, Michael and Whatmore, Sarah (2009) Fifth Edition), The Dictionary of human Geography.
8. Adhikari, Sudeepta (2009), Gographical Thought.
9. Singh, Rana P. B. (2009), Geographical thoughts in India : Snapshots and visions for the 21st Century.
10. Singh, Rana P. B. (2009), Uprooting Geographical thoughts in India : Towards Ecology and Culture in 21st Century.
11. Auribindo, Sri (2010, Second Impression), The Life Divine.
12. Husain, Majid (2010), Evolution of Geographical thoughts.
13. Dikshit, R. D. (2010) Geographical Thoughts : A Contextual History of Ideas.
14. Sharma, Dr. R. N. (2011), Indian Philosophy.
15. Singh, Rana P. B. (2013), Hindu Tradition of Pilgrimage : Sacred.

◈◈

ISSN : 2349-9273

तनाव (Stress)

- Dr. Sufia
Principal
Pahalwan Gurudin Girls
P.G. College, Panari,
Lalitpur-284403 (U.P.)

E-mail:
sufia01zaidi@gmail.com
Mob.- 9889884047

सारांश

मनुष्य का जीवन गतिशील है, जिसके दो पहलू हैं व्यक्तित्व तथा व्यवहार। यह दोनों पहलू ही गतिशील रहते हैं। बाहरी वातावरण जिसमें व्यक्ति व्यवहार करता है, परिवर्तनशील है। जब कि आन्तरिक पहलू मानव शरीर से सम्बन्धित है। जब व्यक्तिगत तथा व्यावहारिक परिवर्तन और बाहरी वातावरण में होने वाले परिवर्तन में व्यक्ति के सामने अनेक प्रकार की बाधाएं आ जाती हैं, जीवन शैली में बदलाव आ जाता है तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं और व्यक्ति बीमारी की ओर अग्रसर होने लगता है। व्यक्ति को अपनी आवश्यकता की पूर्ति के प्रयत्न तो करने ही पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में समायोजन करने पर तनाव उत्पन्न होता है। तनाव को कई तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है जो अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों पर निर्भर करता है। तनाव एक प्राकृतिक निरन्तर गतिक तथा अन्योन्य क्रियात्मक प्रक्रिया है जो उस समय घटित होती है, जब व्यक्ति अपने वातावरण के प्रति समंजित होते हैं। तनाव विभिन्न प्रकार का हो सकता है। जैसे- तनाव (Eustress), दुःख /वेदना (Distress), अति तनाव (Hyperstress) और चिरकालिक तनाव (Hypostress)। यह जीवन के सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही प्रकार की घटनाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। तनाव एक सामान्य घटना है। तनाव और निष्पन्दन आपस में ऋणात्मक रूप से सहसम्बन्धित होते हैं। तनाव को सकारात्मक रूप से प्रयुक्त करना सीखें। प्रत्येक व्यक्ति की तनाव के प्रति अनुक्रिया अनन्य होती है। कोई एक सर्वमान्य विधि नहीं हो सकती है जिसके प्रयोग से सभी व्यक्तियों और सभी स्थितियों के लिए प्रभावकारी बनाया जा सके। विभिन्न तकनीकों और कार्य नीतियों के साथ इस बात पर ध्यान केन्द्रित करें कि किस स्थिति में आप शान्त और नियंत्रित रहते हैं।

प्रस्तावना -

तनाव हमारे जीवन का एक ऐसा हिस्सा है, जो स्वभावतः एक सामान्य व्यक्ति में आवश्यक रूप से पाया जाता है। यही तनाव अगर अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाय तो मनोचिकित्सा की आवश्यकता होती है। यदि सही समय पर इस तनाव का इलाज न कराया जाय तो व्यक्ति मनोवैज्ञानिक बीमारियों का शिकार हो जाता है, जो मनुष्य में मनोव्यथा उत्पन्न करते हैं। तनाव के कारण व्यक्ति शारीरिक या भावनात्मक रूप से परेशान रहता है। तनावपूर्ण घटनाओं के कारण कई प्रकार के मानसिक व्यवधान उत्पन्न होते हैं, जिनमें चिन्ता से उत्पन्न व्यवधान शामिल है। यौन शोषण, शारीरिक दुर्व्यवहार, भावनात्मक दुर्व्यवहार, घरेलू हिंसा तथा डराने-धमकाने समेत बचपन या वयस्क उम्र में हुए दुर्व्यवहार को तनाव के कारण माने जाते हैं, जो कि एक जटिल सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक तथा जैव वैज्ञानिक कारकों को उत्पन्न करती है। कभी-कभी इन कारकों के बड़े

आघातों से भी मनोविकृति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी ये तनाव या दबाव हितकारी भी हो सकते हैं। जब व्यक्ति अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को देखता है तो उसके मन में तनाव महसूस होता है, जिससे उसके रक्त में एक प्रकार का रसायन उत्पन्न हो जाता है, जो व्यक्ति को ताकत व ऊर्जा प्रदान करता है अथवा कोई प्रोजेक्ट या असाइनमेन्ट बनाते समय यदि हल्का सा दबाव या तनाव बना दिया जाय तो काम अच्छे से होता है और इसके विपरीत यदि दबाव बिल्कुल भी न हो तो काम बिगड़ भी सकता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य -

1- तनाव का जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।।

2- तनाव का जीवन शैली पर व्यवहार के प्रभाव का अध्ययन।

3- तनाव और हृदय रोग का जीवन पर प्रभाव।

4- तनाव का कार्य निष्पादन पर प्रभाव का अध्ययन।

5- तनाव का सामाजिक गतिविधियों पर प्रभाव का अध्ययन।

तनाव के कारण -

तनाव के कारणों को प्रतिबलक कहते हैं। प्रतिबलक विभिन्न प्रकार के होते हैं। जीवन में घटने वाली ऐसी घटना जिससे निपटना कठिन हो या अत्यधिक तनाव डालने वाली हो वह तनाव का सम्भावित कारण हो सकता है। तनाव वैयक्तिक या विषयपरक अनुभव होता है, जिसे एक व्यक्ति तनावपूर्ण समझता है तथा दूसरा व्यक्ति सामान्य समझता है। प्रतिबलकों को बाह्य या आन्तरिक रूप में विभाजित किया जा सकता है-

(क) बाह्य प्रतिबलक - ये तनाव के वे स्रोत होते हैं, जो हमारे आस-पास होते हैं किन्तु हमें पता नहीं होता है। यह प्रतिबल हमारे शरीर और मन में आभासी संकट की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। विद्यालय में, घर में, खेलते समय तथा एक सामाजिक स्थिति में तनाव का हमें दैनिक जीवन में सामना करना पड़ता है।

(ख) आन्तरिक प्रतिबलक - कई बार हम यह सोचते हैं कि तनाव का कारण बाह्य घटनाएँ, परिस्थितियाँ या व्यक्ति हैं, परन्तु ऐसा नहीं है। आन्तरिक प्रतिबलक की उत्पत्ति कार्य संपादन के फलस्वरूप होता है। हमारी अन्तस्थ अवस्थाएँ, विश्वास, अभिवृत्तियाँ, व्याख्यान इत्यादि जब बाह्य कारकों या घटनाओं से संयोजित नहीं होती हैं, तब इस प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है।

तनाव के प्रकार -

मनोविज्ञानियों के तनाव के विषय में अलग-अलग विचार हैं। ज्ञानात्मक और दैहिक प्रक्रियाएँ तनाव में सम्मिलित की जाती हैं। तनाव के निम्न प्रकार होते हैं-

(क) तनाव एक उत्तेजना की भाँति - जब व्यक्ति कहता है कि मेरा व्यावसायिक कार्य बहुत महत्वपूर्ण है, तो वह वातावरणीय उत्तेजक के ही सन्दर्भ में बात कर रहा है।

(ख) तनाव एक प्रत्युत्तर की भाँति - कुछ व्यक्ति तनाव को एक भौतिक प्रतिक्रिया समझते हैं। जब व्यक्ति यह कहता है कि मेरा दिल उछलने लगता है, जब मुझे बहुत ज्यादा तनाव होता है तो वह तनाव को ही प्रतिक्रिया की भाँति ही वर्णन कर रहे होते हैं।

(ग) तनाव एक अन्त:हीन क्रिया की भाँति - तनाव का वर्णन वातावरण उत्तेजक एवं व्यक्ति के बीच में अन्त:क्रिया की भाँति दिया जाता है। जब व्यक्ति यह कहता है कि मैं तनाव उस समय महसूस करता हूँ, जब मुझे अपने कार्य क्षेत्र में आर्थिक समस्याओं पर निर्णय लेने होते हैं किन्तु दूसरी समस्याओं के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय मुझे कोई तनाव नहीं होता है।

(घ) दु:ख / वेदना (Distress)- यह एक नकारात्मक तनाव होता है जो व्यक्ति के जीवन में प्रतिकूल घटनाओं की वजह से आता है। दु:ख या वेदना को तीव्र मानसिक आघात कहते हैं, जो दुर्घटना के कारण होती है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के साथ ऐसी घटना घटी है, जिसमें उस व्यक्ति की जान मुश्किल से बची हो, गम्भीर चोट या किसी प्रियजन की मौत हुई हो, ऐसी वेदना को दु:ख कहते हैं। यदि इसका निराकरण न किया जाये तो व्यक्ति अवसाद से घिर जाता है। नकारात्मक तनाव दो प्रकार के होते हैं-

(A) तीव्र तनाव - व्यक्ति जब कोई ऐसी परिस्थिति में फँस जाता है। जैसे- बलात्कार, डाका डालना, लड़ाई-झगड़ा या प्राकृतिक विपदा आदि का असर व्यक्ति पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है। जिस प्रकार के कारण व्यक्ति में तीव्र तनाव उत्पन्न होता है।

(B) चिरकालिक तनाव - जब व्यक्ति किसी समस्या को लेकर गहन चिन्तन करता है और उसे यह लगता है कि वह उस समस्या का समाधान नहीं कर पायेगा तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति तनाव से ग्रसित हो जाता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति कई गम्भीर स्वास्थ्य सम्बन्धित समस्याओं से पीड़ित हो जाता है। यहाँ तक कि व्यक्ति मृत्यु तक की स्थिति में पहुँच जाता है।

(ङ) अति तनाव (Hyperstress)- यह तनाव ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न होता है, जब व्यक्ति को उसकी कार्यक्षमता के विपरीत कार्य करने को बाध्य किया जाता है।

तनाव के प्रभाव -

ऐसी परिस्थितियाँ जिनके कारण हम दुःख या ग्लानि का अनुभव करते हैं और जिसका प्रभाव व्यक्ति के जीवन या दिनचर्या पर पड़ता है। इसका निम्न बिन्दुओं से समझ सकते हैं-

(i) व्यवहारगत प्रभाव - इस प्रकार के तनाव में जब व्यक्ति दबाव में होता है। जैसे- पारिवारिक झगड़े, आफिस का काम आदि। इसके कारण कुछ व्यक्ति अत्यधिक मदिरा पान, सिगरेट, बीड़ी आदि पीना आरम्भ कर देते हैं। कुछ व्यक्ति अधिक काम में व्यस्त रहते हैं, उन्हें व्यायाम करने या अधिक ठीक से खाने की फुर्सत भी नहीं रहती, पूरी नींद भी नहीं ले पाते। अपने दैनिक कार्यों के तनाव को कम करने में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें आवश्यकता पड़ने पर डॉक्टर के पास जाने तक की फुर्सत नहीं होती। ऐसा व्यवहार स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है।

(ii) तनाव का शरीर पर प्रभाव - तनाव और हृदय रोग का सम्बन्ध बहुत पहले ही सिद्ध हो चुका है। यदि तनाव तीव्र हो और तनाव हारमोन्स को शारीरिक क्रिया द्वारा समाप्त नहींकिया जाता है तो बढ़ी हुई दिल की धड़कन और उच्च रक्तचाप से धमनियों पर तनाव पड़ता है। तनाव हार्मोन दिल की धड़कन को तेज कर देते हैं। इससे हार्ट अटैक की सम्भावना बढ़ जाती है।

तनाव के परिणाम -

प्रतिबल के प्रति व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरीकों से प्रतिक्रिया करता है। अत्यधिक तनाव उच्च रक्तचाप, अल्सर आदि भयंकर शारीरिक व्याधियाँ उत्पन्न करता है। मानसिक तौर पर इंसान सही निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और उदासीन रहता है। कार्य पर अक्सर अनुपस्थित रहता है। इसी के साथ सचेत न रहने पर दुर्घटना का शिकार हो जाता है। उसका कार्य सामर्थ्य भी घट जाता है। कार्य सम्बन्धी तनाव कार्य संतुष्टि को भी कम करता है। कार्य पर असन्तुष्टि, तनाव का सबसे सामान्य व सीधा परिणाम होता है।

निष्कर्ष -

मनुष्य की दैनिक गतिविधियाँ समाज एवं परिवार से प्रभावित होती हैं। आधुनिक जीवन में जटिलताओं व कठिनाइयों के साथ-साथ समस्याएँ बढ़ रही हैं। व्यक्ति मानसिक रोग से पीड़ित होता जा रहा है। सामाजिक मुद्दों से निपटते समय व्यक्ति को बहुत ही समस्याओं और चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जो विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा विद्यालय कर्मियों में तनाव उत्पन्न करता है। राष्ट्र के भावी विकास के लिए स्वस्थ व तनावमुक्त शिक्षा लागू करने की आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है, जब विद्यार्थी, शिक्षक और विद्यालय के अन्य सदस्य अपने दैनिक जीवन में आने वाले तनाव से प्रभावी रूप से निपट सकें।

तनाव का जीवन में महत्व के कारण ही इसके सम्बन्ध में काफी समय से अध्ययन किये गये हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने तनावपूर्ण घटनाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया है, जिससे व्यक्ति उन अखण्ड अपेक्षाओं से प्रभावी रूप से निपट सके। समाज, अध्यापक एवं विद्यार्थियों में कुछ ऐसे स्वस्थ तरीके विकसित करने में सहायक हो सकते हैं, ताकि वे तनाव से निपट सकें और अपनी दैनिक समस्याओं का हल ढूँढ सकें। मानसिक तनाव पैदा करने वाली परिस्थितियों में व्यक्ति खुद को बाहर निकाल ले तो वह सभी मानसिक अवसादों से बच सकता है। तनाव से छुटकारा पाने के तरीकों को अपनाना चाहिए। तनावग्रस्त व्यक्ति को परिस्थितियों से बाहर निकालने का प्रयास किसी और कार्य में व्यस्त करके करना चाहिए। ऐसी परिस्थिति से बचें जिन से तनाव पैदा होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- भान, सुमबाली किरनन, 1998 स्ट्रेस मैनेजमेंट स्टर्लिंग पब्लिशर्स, नयी दिल्ली।

2- मकन, टी. एच. - 1994, 'आइम मैनेजमेन्ट टेस्ट ऑफ ए प्रोसेस मॉडल', जर्नल ऑफ एपलाइड साइकोलॉजी।

3- मर्फी, एल. आर. - 1986, 'ए रिव्यू ऑफ ऑर्गनाइजेशन स्ट्रेस मैनेजमेन्ट रिसर्च जर्नल ऑफ ऑर्गनाइजेशनल बिहैवियर मैनेजमेन्ट।

4- जे. एस. फिलिप्स- 1990, 'वर्क साइट स्ट्रेस मैनेजमेन्ट इंटरवेन्शन्स', द अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट।

5- रॉबिन्स, स्टेफन्स पी.- 1992, 'ऑर्गनाइजेशनल बिहैवियर, नौवा संस्करण, प्रैन्टिस हॉल, नयी दिल्ली।

6- कूपर, ए. सी. एवं एस. कार्टराईट, मेन्टल हेल्थ स्ट्रेस इन द वर्कप्लेस, हान्स सेमल के कार्य पर आधारित।

7- कपूर, सी. - 1986, 'जॉब डिस्ट्रेस' बुलेटिन ऑफ द ब्रिटिश सॉइकोलॉजिकल सोसाइटी, खण्ड-39।

◈◈

ISSN : 2349-9273

लोकतंत्र के पुरोधा पण्डित दीनदयाल उपाध्याय

– डॉ. रवेन्द्र राजपूत
असि. प्रोफेसर,
शिक्षक शिक्षा विभाग,
श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेलः
ravendraraj@gmail.com

महान देशभक्त, महामानव पण्डित दीनदयाल उपाध्याय नितान्त सरल और सौम्य स्वभाव की प्रतिमूर्ति थे। साहित्य और राजनीति में आपकी गहरी रुचि थी। दीनदयाल उपाध्याय भारतीय संस्कृति के अधिष्ठान पर ही राष्ट्रीय स्वांतंत्र्य को गढ़ना चाहते थे। अतः पाश्चात्य अवधारणाएं जो सामान्यतः सर्वसम्मत–सी मानी जाती हैं, दीनदयाल उनके अंधे अनुयायी बनने को तैयार नहीं थे। पाश्चात्य राज्य परिकल्पना, पाश्चात्य सेक्युलरिज्म, पाश्चात्य लोकतंत्र तथा पाश्चात्यों के विभिन्न वाद, इन सब पर दीनदयाल अपनी भारतीयवादी टिप्पणी करते हैं तथा वे इन सब परिकल्पनाओं के भारतीयकरण के हिमायती हैं। वे मानते थे कि लोकतंत्र भारत को पश्चिम की देन नहीं है भारत की राज्यावधारणा प्रकृतितः लोकतंत्रवादी है। वे लिखते हैंःवैदिक 'सभा' और 'समिति' का गठन जनतंत्रीय आधार पर ही होता था तथा मध्यकालीन अनेक राज्य पूर्णतः जनतंत्रीय थे। राजतंत्रीय व्यवस्था में भी हमने राजा को मर्यादाओं में जकड़ कर प्रजानुरागी ही नहीं, प्रज्ञा (जन) अनुगामी भी माना है। इन मर्यादाओं का अतिक्रमण करने वाले नृपतियों के उदाहरण अवश्य मिल सकते हैं। किन्तु उनके विरूद्ध जनता का विद्रोह तथा उनको आदर्श शासक न मानकर, हीनता की श्रेणी में गिनने के प्रयत्नों से ही हमारी मौलिक जनतंत्रीय भावना की पुष्टि होती है।''

दीनदयाल जी कहते हैं– ''लोकतंत्र की एक व्याख्या की गई है कि वह वाद–विवाद से चलने वाला राज्य है। 'वादे–वादे जायते तत्व बोधाः' कि यह हमारे यहां की पुरानी उक्ति हैं किन्तु.....यदि दूसरे दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न न करते हुए अपने ही दृष्टिकोण का आग्रह करते जाए, तो वादे–वादे जायते कंठशोषाः' यह उक्ति चरितार्थ होगी। वाल्टेयर ने जब कहा कि 'मैं तुम्हारी बात सत्य नहीं मानता, किन्तु अपनी बात कहने के तुम्हारे अधिकार के लिए मैं पूरी शक्ति से लडूंगा'। तो उसने मनुष्य के केवल 'कंठशोषाः' को ही स्वीकार किया। भारतीय संस्कृति इससे आगे बढ़कर 'वाद–विवाद' को 'तत्वबोध' के साधन के रूप में देखती है।'' पश्चिम में प्रजातंत्र के उदय की प्रक्रिया, उसके पूंजीवाद के रूप में विकृत हो जाने एवं कार्लमार्क्स की तानाशाही परक प्रतिक्रिया आदि का दीनदयाल जी ने विषद् विवेचन किया।

लोकतंत्र का भारतीयकरण–दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र की तात्विक अवधारणा से सहमत होते हुए भी, पाश्चात्य निरंकुश राजशाही की प्रतिक्रिया से उत्पन्न, पूंजीवाद पोषित व सर्वसत्तावादी राज्यवाद की प्रतिक्रिया उत्पन्न करने वाले लोकतंत्र को, भारतीयकृत करना चाहते हैं। लोकतंत्र का भारतीयकरण करने का उन्होंने आवाहन किया।

पश्चिम ने लोकतंत्र को निर्वाचन की एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया प्रदान की है। संविधान, कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका का सृजन किया है, लेकिन यह केवल लोकतंत्र का औपचारिक स्वरूप हैं। लोकतंत्र की असली आत्मा उसके स्वरूप में नहीं, वरन जनाकांक्षा को सही रूप से प्रतिबिंबित करने की भावना में हैः ''जनतंत्र किसी बाहरी ढ़ांचे पर निर्भर नहीं

रहता। बालिग मताधिकार तथा निर्वाचन पद्धति जनतंत्र के बहुत बड़े अंग हैं, किन्तु इनसे ही जनतंत्र की स्थापना नहीं हो जाती। रूस में दोनों ही विद्यमान है, किंतु राजनीति विशारद इसे जनतंत्र मानने को तैयार नहीं। मताधिकार तथा निर्वाचन के साथ एक भावना भी जनतंत्र के लिए आवश्यक है।.....केवल बहुमत का शासन ही जनतंत्र नहीं है।.....ऐसे तंत्र में तो जनता का एक वर्ग सदैव ऐसा रहेगा जिसकी आवाज चाहे वह सही क्यों न हो दबा दी जायेगी। जनतंत्र का यह स्वरूप 'सर्वजनसुखाय, सर्व जन हिताय', नहीं हो सकता.......अतः भारतीय जनतंत्र की कल्पना में निर्वाचन, बहुमत, अल्पमत आदि बाहरी व्यवस्थाओं के स्थान पर सभी मतों के सामंजस्य और समन्वय पर ही बल दिया गया है। विरूद्ध मत रखने वाला एक व्यक्ति ही क्यों न हो, हमें उसके मत का आदर ही नहीं, बल्कि उसका योग्य समावेश अपनी कार्य पद्धति में करना चाहिए। इंग्लैंड में, जहां आज की जनतंत्रीय पद्धति ने सर्वाधिक सफलता प्राप्त की है, विरोधी दल के नेता को सरकारी खजाने से वेतन दिया जाता है। खेल के लिए जैसे दो दलों का होना आवश्यक है, वैसे ही संसद में दो दलों का होना आवश्यक समझा जाता है। शासन की नीतियों पर विरोधी दल सतत् प्रकाश डालता रहता है।''

लोकमत परिष्कार एवं सामान्य इच्छा –

उपाध्याय मानते हैं कि लोकमत का तात्कालिक निर्णय चाहे बहुमत से हो, लेकिन लोकमत केवल बहुमत के शासन व अल्पमतों के वैचारिक स्वतंत्रता से अपने को ठीक प्रकार से अभिव्यक्त नहीं कर पाता। इससे दलीय कटुता एवं समाज में अखण्ड कलह का निर्माण होता है, अतः लोकतंत्र न बहुमत का शासन है, न अल्पमत का, वह जनता की 'सामान्य इच्छा' का शासन है। जनता अपनी सामान्य इच्छा को औपचारिक रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाती। जब 'सामान्य इच्छा' के बारे में सामाजिक सम्भ्रम हो तो 'लोकतंत्र' भीड़तंत्र में बदल जाता है।

वाचाल लोग उसका दुरुपयोग कर सकते हैं। उपाध्याय सेक्सपियर ने नाटक 'जुलियस सीजर' का उदाहरण देते हुए कहते हैं: ''जो जनता ब्रूटस के साथ होकर जुलियस सीजर के वध पर हर्ष मना रही थी, वही थोड़ी देर में ऐंटोनियो के भाषण के उपरान्त ब्रूटस का वध करने को उद्दत हो गयी। मोबोक्रेसी और ऑटोक्रेसी के दोनों पाटों के बीच से डेमोक्रेसी को जीवित रखना एक कठिन समस्या है।'' अतः लोक चेतना के संतुलिस विकास की आवश्यकता रहती है इसी को उपाध्याय प्राचीन भारत की 'लोकमत–परिष्कार' पद्धति कहते हैं लोकमत–परिष्कार एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है। जहाँ साम्यवादी तानाशाही देशों में सत्ता द्वारा 'ब्रेन वाशिंग' अथवा 'असहमतों के नागरिक अधिकारों से वंचन' की अपनायी गयी प्रक्रिया अमानवीय है, वहीं तथाकथित लोकतंत्र में इस विषय में या तो अराजकता है या सरकारी प्रचारतंत्र को उसका माध्यम बनाया जाता है।

दीनदयाल के मतानुसार –

''भारत ने इस समस्या का समाधान राज्य के हाथ से लोकमत निर्माण के साधन छीन कर किया है। लोकमत–परिष्कार का कार्य है वितराग द्वंद्वातीत सन्यासियों का है। लोकमत के अनुरूप चलने का काम है, राज्य का। सनयासी सदैव धर्म तत्वों के अनुसार जनता के ऐहिक एवं अध्यात्मिक उत्कर्ष की कामना लेकर अपने धर्म की मर्यादाओं का ज्ञान करवाते रहते हैं। उनके समक्ष कोई लोभ और मोह न होने के कारण से सत्य का उच्चारण सहज ही कर सकते हैं। शिक्षा और संस्कार से ही समाज के जीवन मूल्य बनते और सुदृढ़ होते हैं। इन मूल्यों का बांध बनाने के बाद, लोकेच्छा की नदी कभी अपने तटों का अतिक्रमण करके संकट का कारण नहीं बनेगी।'' उपाध्याय का 'लोकमत–परिष्कार' विचार वैसा ही है जैसा कि लोकतंत्रात्मक जनचेतना के निर्माण के लिए कुछ लोगों ने पश्चिम में 'वी एजूकेट आवर मास्टर्स' का आंदोलन चलाया था। लोकतंत्र की सफलता के लिए जिन मनोभावों की विवेचना उपाध्याय प्रस्तुत करते हैं, उनमें मुख्य हैं–

1. सहिष्णुता और संयम,
2. अनाशक्त भाव तथा
3. कानून के प्रति आदर की भावना।

इन मनोभावों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हुए, लोकमत परिष्कार के माध्यम से इनका समाज में संचार हो, इसके लिए उन्होंने कार्यकर्ताओं का आह्वान किया।

दीनदयाल जी केवल अकादमिक विद्वान या दार्शनिक ही नहीं थे, वरन् प्रत्यक्ष राजनीतिक क्षेत्र के कार्यकर्ता भी थे। निर्वाचन प्रक्रिया सत्ता स्पर्धा का हथियार नहीं, वरन् सामाजिक सहभागिता का माध्यम है। उसको इसी माध्यम के नाते इस्तेमाल करने के लिए उन्होंने अच्छा उम्मीदवार, अच्छा दल तथा अच्छा मतदाता कैसा होना चाहिए– इस पर भी निर्वाचन काल में ही अपने विचार प्रकट किए हैं। जो उनकी राजनेता नहीं वरन् राजनीतिज्ञ की छवि प्रस्तुत करते हैं।

अच्छा उम्मीदवार –

उपाध्याय जी के मतानुसार ...... ''एक समुचित उम्मीदवार वह है जो विधानमंडलों में अपने दल के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने के साथ ही अपने क्षेत्र के मतदाताओं की नब्ज को पहचानता है। एक व्यक्ति के नाते

उसे अपने मतदाताओं के प्रति वफादार होना चाहिए और एक दल का सदस्य होने के नाते, जिस दृष्टिकोण का यह प्रतिनिधित्व करता है, उस दल के अनुशासन का पालन करने के साथ उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए मन में समर्पण का भाव भी रखना चाहिए।''

दल व जन के प्रति समन्वित निष्ठा अच्छे उम्मीदवार की कसौटी है, लेकिन वर्तमान भारतीय दलों द्वारा चयन की कसौटी पर अपना असंतोष प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि उन्हें अच्छे उम्मीदवार के बजाय जीतने वाले घोड़े की चिंता रहती हैः

''दुर्भाग्यवश यह कहना पड़ता है कि भारत में शायद ही कोई राजनैतिक दल इन सब बातों की चिंता करता हो, और इस कारण उनके मस्तिष्क में केवल यही बात चक्कर काटा करती है कि किसी भी रीति से उसका प्रत्याशी विजयी होना चाहिए। ...... वह किसी भी ऐसे उम्मीदवार को अपने टिकट से खड़ा करने का प्रयास करते हैं जिसमें जीत के लक्षण अधिक प्रतीत होते हों।'' इसलिए दीनदयाल मतदाताओं को सावधान करते है ''हमें स्मरण रखना होगा कि एक अयोग्य उम्मीदवार इस आधार पर हमारा मत प्राप्त करने का अधिकार नहीं है क्योंकि उसका संबंध एक अच्छे दल से है। ...... यह सम्भावना है कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति को अपना टिकट प्रदान करते समय उस दल ने संस्था के लाभ से प्रभावित होकर ऐसा निर्णय लिया हो या ऐसी मंशा न होने के बाद भी उससे निर्णय की भूल हुयी हो। अतः उत्तरदायी मतदाता का अब यह कार्य हो जाता है कि वह अपनी जागरुकता का परिचय देकर उक्त गलती हो दुरुस्त कर दे।''

अच्छा दल –

लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनैतिक दलों की बहुत निर्णायक भूमिका होती है। कोई समाज कितना लोकतांत्रिक है, यह उसके दलों के चरित्र दलों के चरित्र देखकर जाना जा सकता है। उपाध्याय के अनुसार श्रेष्ठ दल के लक्षण हैंः ''जो सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का झुण्ड न होकर एक जीवमान संगठन हो, जिसका सत्ता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपना अलग वैशिष्ट्य हो।

ऐसे दल की दृष्टि में सत्ता पर अधिकार करना उद्दिष्ट न होकर, अपने सिद्धांतों एवं कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का एक साधन होगा। इसलिए उस दल के सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर साधारण–से–साधारण सदस्य तक में अपने इस आदर्शवाद के प्रति एक निष्ठा होगी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि यह निष्ठा ही अनुशासन और आत्मसमर्पण की भावना उत्पन्न करती है। . .... यदि अनुशासन ऊपर से थोपा जाता है तो वह किसी भी दल के आंतरिक शक्तिहीनता को ही प्रकट करता है।''

दीनदयाल उपाध्याय दुखपूर्वक प्रतिपादित करते हैं कि भारत के राजनैतिक दल केवल नाम के लिए ही दल है। दलों के आंतरिक शक्तिहीनता उन्हें समाज के अवांछनीय शक्तियों का अवलम्ब ग्रहण करने को मजबूर करती है। उपाध्याय मुख्यतः मजबूरियों का उल्लेख करते हैं– (1) राजा–महाराजा, (2) जातिवाद तथा (3) उद्योगपति।

राजा महाराजा –

''भारत के राजनैतिक दल अभी अपनी गहरी जड़ें जनता में जमा नहीं कसे हैं। .... राजनैतिक दलों को विभिन्न राजनैतिक कार्यक्रम को एक ओर रखकर चुनाव के लिए सिद्ध होना पड़ता है यही कारण है कि आज भी पुराने राजे–महाराजाओं, नवाबों और जागीरदारों को अपने–अपने दल में घसीटने का प्रयत्न किया जाता है। .... हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि इस पुराने वर्ग को भी देश के राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय बनाना चाहिये, परन्तु उनको टिकट देने का आधार तो राजवंश में उनका जन्म न होकर, उनकी योग्यता ही होनी चाहिए।''

जातिवाद –

जाति और सम्प्रदाय का विचार भी प्रत्याशियों के चयन को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। ..... भारत में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी जाति का अंग हैं। अतः दूसरे लोगों पर जातियता एवं संकीर्णता का आरोप लगाने से अंजाने में ही देश में इस भावना को अप्रत्यक्ष रीति से और अधिक बल मिलता है।.... यदि परिस्थिति यहां तक बिगड़ती है कि डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे व्यक्ति को चुनाव मैदान से इसलिए हटाना पड़े कि वे उक्त निर्वाचन क्षेत्र में निवास करने वाले मतदाताओं ही बहुसंख्य जाति के नहीं हैं तो यह एक गंभीर बात होगी, परन्तु इसके निराकरण का उपाय तो यही है कि दल से संगठन को दृढ़ बनाया जाए न कि जाति के आधार पर मतदाताओं से अपील की जाए।''

उद्योगपति –

प्रत्याशियों का चयन करने में प्रत्याशी की आर्थिक स्थिति और निर्वाचन में धन व्यय करने की क्षमता, दूसरा प्रमुख आधार रहा करता हैं, जो इसे प्रभावित करता है। बहुत से व्यक्तियों को टिकट प्रदान करने का कारण उनके धन व्यय करने की क्षमता ही रहा करती है। ..... वास्तव में वे जनता और राजनैतिक दलों से उनके मत और टिकट प्राप्त करने नहीं आते वरन् उन्हें खरीदने आते हैं।... संसद की सदस्यता तो उनके लिए अपनी चर्बी बढ़ाने एवं अधिक

मोटा होने के कारण व्यापार है। कांग्रेस सहित सभी राजनैतिक दल धनाभाव से इतने परेशान हैं कि वे अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए इनका सहयोग प्राप्त करने को आतुर रहते हैं।

अच्छे मतदाता –

उपाध्याय की यह आस्था है कि मतदाताओं की बुद्धिमता ही इसका इलाज हैः ''यह सब ऐसे तथ्यहहैं कि जो देश की राजनीति को गलत दिशा में ले जा रहे हैं।'' .. .. राजनैतिक दलों को, जो देश की राजनीति में प्रमुख दल के रूप में विकसित होना चाहते हैं, इन खतरों से सचेत रहकर अपने सिद्धांत ही हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी भांति जनता का यह कर्त्तव्य है कि वह जागरुक रहकर बुद्धिमत्ता के साथ हंस के समान अपने नीर–क्षीर–विवेक का परिचय दे जिससे बुद्धिमता के साथ हंस के समान अपने नीर–क्षीर–विवेक का परिचय दे जिससे देश के राजनैतिक दलों के गलत दृष्टिकोण को सुधारा जा सके।'' इस हेतु उपाध्याय मतदाता को निम्न बातें स्मरण रखने का आग्रह करते हैंः

1. ''..... अपने मताधिकार का प्रयोग पार्टी के लिए न कर सिद्धांत के लिए, व्यक्ति के लिए न कर पार्टी के लिए और धन के लिए न कर व्यक्ति के लिए (करना) है।

2. ''..... प्रचार के शिकार होकर किसी भी व्यक्ति को केवल इस आधार पर ही अपना मत दे आते हैं कि वह विजयी होने वाला है तो चुनाव परिणाम कुछ भी हो, वह आपकी हार ही कही जायेगी।''

3. ''...... मतदान का अधिकार आपके सद्विचार और आपके सद्विवेक की कसौटी है अतः उस ओर से उदासीन न हों, उसे बेचें नहीं और न उसे नष्ट होने दें।''

4. ''मतदान का अधिकार प्रत्येक नागरिक की स्वाधीनता का प्रतीक है और इस कारण एक लोकतंत्रवादी होने से आपको इसका उपयोग किसी के निर्देश पर न कर, स्वयं के सद्विवेक एवं आत्मा की पुकार पर करना चाहिए।''

5. ''......जनता को पुनः पुनः यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि वह ही राजनीति दलों की निर्माता है।''

दीनदयाल उपाध्याय एक राजनीतिक दल के महामंत्री थे, लेकिन उनके उपर्युक्त विचार, दलवाद से ऊपर उठकर एक लोकतंत्रवादी के नाते व्यक्क्त किए गए विचार हैं। भारत का बहुलतावादी चरित्र अपनी राष्ट्रीय एकता को तभी बनाए रख सकता है, जब देश में लोकतंत्र रहे। उनके राष्ट्रवाद ने ही उन्हें प्रखर लोकतंत्रवादी बनाया था।

दीनदयाल उपाध्याय का लोकतंत्र विषयक विचार लोकतंत्र की पाश्चात्य व भारतीय अवधारणा से प्रारम्भ होकर उसके भारतीयकरण अर्थात् 'लोकमत–परिष्कार' ही विवेचना करते हुए भारतीय लोकतंत्र के विश्लेषण के साथ पूर्ण होता है। उपाध्याय का चिंतन आदर्शवादी है। वे अपने विचारों में समाज शास्त्रीय व मनोवैज्ञानिक तत्त्वों से ज्यादा नीतिशास्त्र से प्रभावित है। किसी दल को नीतिशास्त्रीय नेता उपलब्ध होना बड़े सौभाग्य की बात होती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो आदर्श का आचरण करता है 'नीतिशास्त्र' की महत्ता को भी सिद्ध कर पाता है। समझौतावादी लोग आदर्श व नीति को तात्कालिक परिणामों के भय से त्याग देते हैं। उनके व्यवहार नीति के नाम पर अवसरवाद पनपता है। जिस 'अवसरवाद' के बारे में दीनदयाल उपाध्याय ने चेताया था, उसका जब भयानक दौर भारत में प्रारंभ हुआ, उसी दौर में उनकी हत्या हो गयी, भारतीय लोकतंत्र ही वह बड़ी क्षति थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राष्ट्र चिन्तन – पं. दीनदयाल उपाध्याय।
2. भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा – पं. दीनदयाल उपाध्याय।
3. भारतीयता का संचारक : पं. दीनदयाल उपाध्याय – संजय द्विवेदी।
4. पं. दीनदयाल उपाध्याय – स्वदेश व स्वधर्म तथा परम्परा व संस्कृति – अशोक बजाज।
5. पं. दीनदयाल उपाध्याय प्रशिक्षक महाभियान – 2015।
6. प्रारूपों की पुस्तिका मंडल वर्ग – पं. दीनदयाल उपाध्याय प्रशिक्षण महाभियान – 2015।

◈◈

ISSN : 2349-9273

महर्षि गौतम के दर्शन की सामाजिक विचारों में भूमिका

– संध्या वार्ष्णेय
शोधार्थिनी,
एजूकेशन डिपार्टमेन्ट,
जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद
(उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
sandhyaji291974@gmail.com

सुपरवाइजर –
– डॉ. ममता गुप्ता
असि. प्रोफेसर –
एजूकेशन विभाग,
जे. एस. विश्वविद्यालय, शिकोहाबाद
(उत्तर प्रदेश)

शोध सारांश

इन दर्शनों में से न्याय दर्शन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह भारतीय तर्क शास्त्र का आदि एवं साक्षात रूप है। स्वामी दर्शानन्द सरस्वती के शब्दों में यथार्थ तथ्य ज्ञान प्राप्ति के साधनों में न्याय दर्शन के साधनों में न्याय दर्शन के साधनों में न्याय दर्शन सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक है, जो मनुष्य न्यायदर्शन को नहीं जानता वह किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। महर्षि गौतम प्रणीत न्यायदर्शन पाँच अध्यायों में विभक्त है। जिनमें से प्रत्येक अध्याय में दो–दो आह्निक है। प्रथम अध्याय के आह्निकों में निःश्रेयस–प्राप्ति के साधनरूप 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में आह्निकों संशय के कारणों और प्रमाणों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय के आह्निक आत्म और बुद्धि की व्याख्या से सम्बन्धित है। चतुर्थ अध्याय के आह्निकों प्रवृत्ति के लक्षणों का उल्लेख किया गया है। पंचम अध्याय के आह्निकों में 24 जातियों तथा 26 निग्रह स्थानों का वर्णन किया गया है। यही न्यायदर्शन की विषयवस्तु की संक्षिप्त रूपरेखा है।

वेदों के परम प्रमाणिकता के आधार पर समस्त भारतीय दर्शनों को दो भागों में विभक्त किया गया है–

(1) नैतिक दर्शन जो वेदों को परम प्रमाण नहीं मानते।
(2) आत्मिक दर्शन जो वेदों को परम प्रमाण मानते हैं।

मुख्य नास्तिक दर्शन तीन हैं–

(1) चावकि दर्शन।
(2) बौद्ध दर्शन।
(3) जैन दर्शन।

आस्तिक दर्शनों की संख्या छः है–

(1) न्याय दर्शन, (2) वैशेषिक दर्शन,
(3) सांख्य दर्शन, (4) योग दर्शन,
(5) मीमांस दर्शन, (6) वेदान्त दर्शन।

इन दर्शनों में से न्याय दर्शन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह भारतीय तर्क शास्त्र का आदि एवं साक्षात रूप है। स्वामी दर्शानन्द सरस्वती के शब्दों में यथार्थ तथ्य ज्ञान प्राप्ति के साधनों में न्याय दर्शन के साधनों में न्याय दर्शन के साधनों में न्याय दर्शन सबसे श्रेष्ठ और आवश्यक है, जो मनुष्य न्यायदर्शन को नहीं जानता वह किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। महर्षि गौतम प्रणीत न्यायदर्शन पाँच अध्यायों में विभक्त है। जिनमें से प्रत्येक अध्याय में दो–दो आह्निक है। प्रथम अध्याय के आह्निकों में निःश्रेयस–प्राप्ति के साधनरूप 16 पदार्थों के तत्त्वज्ञान का वर्णन किया गया है। द्वितीय अध्याय में आह्निकों संशय के कारणों और

प्रमाणों का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय के आह्निक आत्म और बुद्धि की व्याख्या से सम्बन्धित है। चतुर्थ अध्याय के आह्निकों प्रवृत्ति के लक्षणों का उल्लेख किया गया है। पंचम अध्याय के आह्निकों में 24 जातियों तथा 26 निग्रह स्थानों का वर्णन किया गया है। यही न्यायदर्शन की विषयवस्तु की संक्षिप्त रूपरेखा है।

महर्षि गौतम के दर्शन का महत्व –

न्यायदर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम है। उनका न्यायदर्शन भारत का विश्वविख्यात तर्कशास्त्र एवं अद्वितीय ग्रन्थ है। न्यायदर्शन के प्रथम सूत्र में तत्वज्ञान का और द्वितीय सूत्र में मिथ्याज्ञान का जैसा विवेचन हुआ है, वैसा अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं हुआ। न्यायदर्शन के प्रथम सूत्र में कहा गया है कि मानव का सर्वोपरि उद्देश्य निःश्रेयस या मोक्ष प्राप्त करना है और निःश्रेयस या मोक्ष की प्राप्ति 16 पदार्थों के तत्वज्ञान से होती है :

(1) प्रमाण, (2) प्रमेय,
(3) संशय, (4) प्रयोजन,
(5) दृष्टान्त, (6) सिद्धान्त,
(7) अवयव, (8) तर्क,
(9) निर्णय, (10) वाद,
(11) जल्प, (12) वितण्हा,
(13) हेत्वामास, (14) छल,
(15) जाति और (16) निग्रहस्थान।

कहने की आवश्यकता नहीं कि निःश्रेयस की प्राप्ति शिक्षा का भी सर्वोपरि उद्देश्य माना गया है। न्यायदर्शन में ज्ञान प्राप्ति के चार साधन बताये गये हैं–

(1) प्रत्यक्ष प्रमाण, (2) अनुमान प्रमाण,
(3) उपमान प्रमाण और (4) शब्द प्रमाण।

न्यायदर्शन में प्रमाण के 12 प्रमेय या ज्ञेय बताये गये हैं, जो पाठ्यक्रम का आधार है–

(1) आत्मा, (2) शरीर,
(3) इन्द्रिय, (4) अर्थ,
(5) बुद्धि, (6) मन,
(7) प्रवृत्ति, (8) दोष,
(9) प्रत्यय भाव, (10) फल,
(11) दुःख और (12) मिथ्याज्ञान।

इनमें से मिथ्याज्ञान ही शेष चार पदार्थों की जड़ है क्योंकि मिथ्याज्ञान से दोष की, दोष से प्रवृत्ति की, प्रवृत्ति से जन्म की और जन्म से दुःख की उत्पत्ति होती है।

अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया –

शोध प्रक्रिया विषय के अध्ययन की क्रमबद्ध पूर्व निर्धारित तथा तार्किक कार्य योजना है।

सभी उद्देश्यों, तथ्यों तथा निर्देशों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध पत्र में समंक संकलन, संपादन कार्य, सामग्री का वर्गीकरण, सामग्री का सारणीयन तथा विश्लेषण, निर्वहन तथा प्रस्तुतीकरण शोध प्रक्रिया को अपनाया गया है।

रचनाकाल –

पद्मपुराण में बताया गया है कि गौतम ने न्यायसूत्र का, कणाद ने वैशेषिक का और कपिल ने सांख्य का प्रवर्तन किया है।[1] स्कन्दपुराण में भी गौतम को न्याय का प्रवर्तक बताया गया है।[2]

इसके अतिरिक्त नैषधचरित में भी गौतम का न्याय प्रवर्तक के रूप में उल्लेख हैं।[3] किन्तु भारतीय इतिहास में गौतम नाम के कई व्यक्ति हुए हैं। एक महर्षि गौतम का आश्रम मिथिला के पास दरभंगा से 28 मील की दूरी पर था जो आज एक टीले के रूप में विद्यमान है और जिसे गौतम स्थान नाम से पुकारा जाता है। इस टीले के पास गौतम–कुण्ड नामक एक हद है। वहाँ चैत्र रामनवमी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है। दूसरे अक्षपाद गौतम का उल्लेख वायु–पुराण में मिलता है। वायुपुराण की एक कथा के अनुसार महेश्वर ने ब्रह्मा से कहा कि मैं 27वीं चतुर्यगी में प्रमास क्षेत्र में सोम शर्मा ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होऊँगा और मेरे अक्षपाद, कणाद, उलूक और वत्स नामक चार पुत्र होंगे।[4] इसके आधार पर अक्षपाद गौतम का स्थान प्रमास पत्तन सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त एक गौतम का उल्लेख रामायण में मिलता है जिनकी पत्नी अहिल्या का उद्धार भगवान राम ने किया था। सम्भवतः ये गौतम और मिथिला निवासी गौतम एक ही व्यक्ति थे, क्योंकि मिथिला में अहिल्या–कुण्ड नामक एक तालाब है।

राजनैतिक महत्व –

किसी शक्तिशाली साम्राज्य या केन्द्रीय राज्य सत्ता का जन्म नहीं हो पाया था। परन्तु यह सब होते हुए भी राजनैतिक तनाव की स्थिति नहीं थी। प्रमुख रूप से राजतन्त्र का बोलबाला था। राज्यों का आकार भिन्न था। राजा का पद वंशानुगत था। परन्तु कतिपय ऐसे राजाओं का उल्लेख है, जो अपनी कर्तव्यहीनता के कारण पदच्युत कर दिये गये थे। अनेक राजाओं का निर्वाचन भी किया गया था, परन्तु यह प्रथा गणतन्त्रीय राज्यों में अपनाई गई होगी। सूत्र ग्रन्थों में राजाओं के विविध कर्तव्यों तथा

अधिकार क्षेत्र का वर्णन मिलता है। राजा की योग्यता के आधार–श्रेष्ठ, बुद्धि, विवेक, सैनिक चातुर्य, नैतिक बल, इन्द्रिय निग्रह तथा पवित्र आचार आदि थे। गौतम के अनुसार "नियमों" का व्यवहार या न्याय कार्य, धर्मशास्त्र, वेदांग, पुराण तथा उपवेदों के अनुसार नियमित होने चाहिए। इस काल की न्याय व्यवस्था की विशेषता यह थी कि न्याय प्रदान करने में वर्णन का ख्याल किया जाता था तथा निम्न वर्ण वालों को अपेक्षाकृत कड़ी सजा दी जाती थी।

आपस्तम्व के अनुसार– "शूद्र यदि चोरी, हत्या या भूमि का अपहरण करे तो उसे मृत्यु दण्ड दिया जाए यदि ब्राह्मण वैसा करे तो उसे अन्धा कर दिया जाये।"[5]

गौतम के अनुसार– ब्राह्मण का अपशब्द कहने वाले क्षत्रिय पर 100, वैश्य पर 150 कार्षापण दण्ड दे। गौतम के अनुसार– राजा उपज का दशमांश या अष्टमांश या षष्ठांश शिल्पियों से एक मास में एक दिन की आय, वाणिज्य पर बीसवाँ भाग, पशु तथा स्वर्ण पर पचासवाँ भाग तथा फल, पुष्पों, औषधि, शहद मास, तृण और काष्ठ का साठवाँ भाग ले सकता था।[6] लावारिस माल पर राजा का अधिकार था।

गौतम तथा अन्य सूत्रकारों के अनुसार– राजा प्रजा को सुरक्षा देने के कारण कर का अधिकारी है। वशिष्ठ के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह नपुंसक तथा पागलों की रक्षा करे तथा उनकी मृत्यु होने पर उनका धन ले ले।[7]

बोधायन तथा गौतम के अनुसार– स्त्रियाँ यज्ञ व उत्तराधिकार के विषयों में स्वतन्त्र नहीं थीं। वे अपनी इच्छानुसार वैदिक यज्ञ नहीं कर सकती थी, परन्तु इससे स्त्रियों की दशा को पूर्णता निराशाजनक नहीं मानना चाहिए। स्त्रियों का विवाह युवावस्था में होना, उनका उपनयन, ब्रह्मचर्य तथा वेदाध्ययन की अधिकारिणी होना, पुनर्विवाह तथा कतिपय परिस्थितियों में पति से तलाक होना, एक पत्नी की प्रथा का होना आदि अनके कारणों से यह प्रमाणित होता है कि स्त्रियों को समाज के पर्याप्त अधिकार, पद तथा प्रतिष्ठा प्राप्त थी। माता रूप में नारी का पद पिता और आचार्य से भी श्रेष्ठ था।

निष्कर्ष –

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में महर्षि गौतम ने न्याय दर्शन की शैक्षिक भूमिका का बहुत अधिक योगदान है। महर्षि गौतम ने प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा के माध्यम से एक सभ्य समाज निर्मित करने का कार्य किया है। जिसमें प्रमुखतया महिला की सामाजिक स्थिति पर विचार, आर्थिक परिस्थिति के रूप में कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय और व्यापार पर प्रमुख विचार प्रस्तुत किये हैं। धार्मिक परिस्थिति में जब बौद्ध धर्मावल्वियों ने नारीश्वरवादी सिद्धान्तों का प्रचार किया, उससे पहले अक्षपाद गौतम ने न्याय सूत्र की रचना की, जिसमें तर्क द्वारा सत्य–असत्य और धर्म के स्वरूप का निर्णय करने का मार्गदर्शन किया गया इसकी सहायता से लोग बौद्धों के शून्यवाद तर्कों को खण्डित कर सकते थे। राजनैतिक परिस्थिति में शासन प्रबन्ध, न्यायावस्था तथा कर के सुझावों से देश को एक नई दिशा की तरफ अग्रसर कर सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पदम पुराण उत्तर खण्ड अध्याय 263।
2 स्कन्द पुराण : कालिका खण्ड : अध्याय 17।
3 नैषध चरित : 17/74।
4 वायु पुराण : पूर्व खण्ड 23।
5 आपस्तम्व : 2/10/26।
6 गौतम धर्मसूत्र : 12/1/2।
7 वशिष्ठ : 19/27–28।

ISSN : 2349-9273

कौटिल्य के आर्थिक विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता

- डॉ. संगीता सितानी
एसो. प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, महिला महाविद्यालय (परा.), किदवई नगर, कानपुर-208011 (उ. प्र.)

ई-मेल : sangeetasitani4168gmail.com

- भावना द्विवेदी
पी-एच. डी. शोधकर्ती

सारांश

आचार्य कौटिल्य एक ऐसी शख्सियत हैं, जो अपने आप में एक 'ऐतिहासिक काल' हैं, जो अतुल्य है। आचार्य कौटिल्य को यदि 'समय काल प्रवर्तक' कहा जाय तो कुछ गलत नहीं होगा। सामान्यतः आचार्य कौटिल्य एक लोक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, कूटनीतिज्ञ एवं एक महान अर्थशास्त्री के नाम से विश्व में प्रसिद्ध हैं। आचार्य कौटिल्य 'चन्द्रगुप्त मौर्य' के शासनकाल में मुख्य मंत्री थे एवं कौटिल्य की राजनीतियों का अनुसरण कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने नन्द वंश का विध्वंश कर दिया था। आचार्य कौटिल्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य की राज्यावस्था को सशक्त बनाने के लिए भिन्न-भिन्न विषयों एवं क्रान्तिकारी विचारों का उल्लेख अपने एक ग्रन्थ में किया, जिसे 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' नाम से जाना जाता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजनैतिक क्रान्ति, आर्थिक क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, धार्मिक क्रान्ति एवं शैक्षणिक क्रान्ति का वर्णन किया है। आचार्य कौटिल्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' का विषय शासन विधि अथवा शासन विज्ञान है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के विषय से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में कौटिल्य के अर्थशास्त्र को अर्थशास्त्र (इकोनामिक्स) कहना गलत होगा। आचार्य कौटिल्य ने वर्तमान समय में अर्थशास्त्र कहे जाने वाले विषय को 'वार्ता' शब्द से सम्बोधित किया है। आचार्य ने वार्ता (अर्थशास्त्र) के मुख्यतः तीन भाग बताए हैं- कृषि, वाणिज्य तथा पशु-पालन। आचार्य कहते थे- कि प्रायः कृषि, वाणिज्य एवं पशु-पालन से जीविका का अर्जन किया जा रहा है। आचार्य कौटिल्य के इस तथ्य को अनेक शास्त्रकारों, मनु, याज्ञवल्क्य आदि ने भी स्वीकारा व कृषि, वाणिज्य एवं पशु-पालन को वातोराशास्त्र (अर्थशास्त्र) की संज्ञा प्रदान की।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र सामान्यतः एक राजनीति की पुस्तक है, परन्तु वर्तमान समय का अर्थशास्त्र (इकोनामिक्स) का वर्णन भी इसी में सम्मिलित है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचार उनके अर्थशास्त्र की एक विषय वस्तु है, न कि सम्पूर्ण ग्रन्थ है।

आचार्य कौटिल्य ने जो आर्थिक विचार दिये वे किसी अमूल्य से कम नहीं है। भूतकाल से लेकर वर्तमान तक आचार्य कौटिल्य के ही आर्थिक विचारों का अनुसरण होता आ रहा है। आचार्य कौटिल्य के 'आर्थिक विचारों' का अनुसरण कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने राज्यावस्था को सुदृढ़ बनाया व सुव्यवस्थित संचालन किया। आचार्य के ही आर्थिक विचारों का अनुशरण सदियों से राष्ट्रकरते आ रहे हैं। इसका विशेष कारण यह है कि उनकी आर्थिक विचारों की उपयोगिता वर्तमान में भी है व भविष्य में भी होगी, तभी कोई राष्ट्र सम्पन्न व खुशहाल राष्ट्र की श्रेणी में आ पायेगा।

परिचय -

आचार्य कौटिल्य (अनु. ई. पू. 375 ई. पू. 225) का वास्तविक नाम

विष्णुगप्त था।[1] 'कटिल' नामक ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण कौटिल्य तथा चणक पिता के नाम के कारण चाणक्य नाम से जाने जाते हैं।[2]

प्राचीनतम भारत की विभिन्न आर्थिक विचारधाराओं में से यदि ध्यान देने योग्य कोई विचारधारा है तो वह है आचार्य कौटिल्य की विचारधारा। प्रकृतिवादी विचारक होने के नाते आचार्य कौटिल्य ने 'अर्थ' को महत्व किया, उन्होंने कहा- अर्थ (राज्य और समाज) का जीवन रक्त है।[3] आचार्य कौटिल्य ने जीवन में अर्थ के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है- मनुष्यों की जीविका का साधन अर्थ है।[4] मानव के जीवन की तृप्ति ही अर्थ है।[5] अतः मनुष्य के जीवन की तृप्ति में, समाज में एवं राज्य के जीवन में 'अर्थ' महत्वपूर्ण है।

कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया है। इसी के साथ ही तत्कालीन आर्थिक मुद्दों पर बहुत ही सम्यक् दृष्टि एवं वैज्ञानिक विश्लेषण से प्रस्तुत किया। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के विभिन्न पहलूओं कृषि, व्यापार, माप-तौल, उद्योग आदि पर अपने व्यावहारिक विचार व्यक्त किये हैं। यद्यपि कौटिल्य के आर्थिक विचार पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों- एडमस्मिथ, जे. एस. मिल एवं माल्थस आदि की रचनाओं एवं आधुनिक अर्थशास्त्र से बहुत भिन्न हैं।[6] परन्तु फिर भी वह तत्कालीन आर्थिक अवधारणाओं के सम्बन्ध में जो विश्लेषण प्रदान करता है, वह वर्तमान भारत की आर्थिक समस्याओं के निवारण में सहायक सिद्ध हो सकता है। कौटिल्य ने सम्पूर्ण मानव जीवन का विभाजन धर्म, अर्थ एवं काम के आधार पर किया परन्तु तीनों में सर्वाधिक महत्व अर्थ को दिया। आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों की मुख्य विशेषता यह हैकि इसमें परम्परागत 'धर्म प्रधान' विचारों के स्थान पर 'अर्थ प्रधान' विचारों का प्रतिपादन किया गया है।[7]

पूँजी मनुष्य द्वारा अर्जित वह धन है, जो और अधिक धन पैदा करने में लगाया जाये।[8] भिन्न-भिन्न उत्पादों की पूँजी भिन्न-भिन्न है। आचार्य कौटिल्य ने पूँजी के संक्षेप में वर्णन करते हुए कहा है कि, गाय, भैंस, हाथी, बैल आदि जितने भी पशु हैं, हमें उनकी रक्षा करना चाहिए। उनकी गणना करनी अति आवश्यक है एवं उनकी नकल को बरकरार रखने के लिए कई 'कार्याध्यक्षों' की योजना की है। आचार्य के विचारों से प्रकट होता है कि वे पशु पूँजी को भी महत्व देते थे। उनके मतानुसार पशु पूँजी किसी राज्य की आर्थिक क्रियाओं में सहायक सिद्ध होती है। पशुओं का प्रयोग हम खेती, माल ढोने व सवारी के रूप में करते हैं। इस तरह यह पशु मात्र पशु की श्रेणी में होकर एक पूँजी के तौर पर कार्य करते हैं। आचार्य कौटिल्य पशुओं की सुरक्षा व उनके उत्तम स्वास्थ्य के लिए कहते थे, कि अन्य चिकित्सक की तरह पशु चिकित्सक का भी होना अनिवार्य है, जो उनका संरक्षण व उपचार कर सके।

पशु पूँजी के साथ ही आचार्य कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में कुएं, तालाब एवं नहर को भी महत्व दिया है। कृषि की सिंचाई के कृत्रिम साधनों में कुएं, तालाब, नहर एवं बाँध मुख्य हैं। आचार्य इन्हें या इन तत्वों को पूँजी का अंग कहते हैं। अधिकांश कुएं एवं तालाब तो प्रायः व्यक्तिगत पूँजी के तौर पर होते थे। कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में चार तरह की सिंचाई का वर्णन किया है जो कृषि की उपज को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी। ये सेतुबन्ध, कुएँ एवं तालाब आर्थिक विकास में पूँजी के रूप में कार्य करते थे, क्योंकि इनके माध्यम से उपज की वृद्धि होती थी तथा सरकार भी इसमें अपना सहयोग दिखाते हुए पाँच वर्ष तक इसे कर मुक्त कर देती थी।

आचार्य कौटिल्य ने पूँजी सम्बन्धी एक विशेष समस्या जिसे स्थिर पूँजी (मशीन) के नाम से जाना जाता है, के सम्बन्ध में भी अपने विचार दिये हैं। वे मशीन के प्रयोग को वर्जित मानते थे और न ही आचार्य ने अपने आर्थिक विचारों में स्थिर पूँजी को स्थान दिया है। उनके अनुसार स्थिर पूँजी (मशीन) अर्थव्यवस्था में बेकारी की स्थिति पैदा कर देती है।

कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में पूँजी की वृद्धि को विशेष महत्व दिया है। कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में कहा है, कि यदि हमें पूँजी वृद्धि करनी है तो हमें प्रजा को सुखी और संतुष्ट रखने के विषय पर विचार करना ही होगा। आचार्य भीतरी शान्ति व बाहरी रक्षा की बात करते हुए कहते हैं कि कोई भी राष्ट्र तभी समुचित आर्थिक वृद्धि प्राप्त कर सकता है, जब वह अपने राष्ट्र को विदेशी आक्रमण से रक्षा व सैनिक शिक्षा को बनाये रखता है।

यद्यपि आचार्य को प्रजा द्वारा संचालित व्यापार में राज्य का ज्यादा बाधक होना पसन्द नहीं था, तथापि वह देश में विदेशी पूँजी लगाये जाने की अपेक्षा विदेशी वस्तुओं को बाहर से मंगाकर बेचने के कार्य को अत्यधिक प्रोत्साहन देने के पक्ष में थे।

पूँजी से सम्बन्धित विश्लेषण को महत्वपूर्ण उल्लेख के साथ ही साथ आचार्य कौटिल्य ने अप्रत्यक्ष रूप से व्यवस्था सम्बन्धित विवेचना भी की है। आचार्य के समय में वर्तमान की भाँति बड़े-बड़े कल-कारखाने और बड़ी मात्रा की उत्पत्ति न होने से व्यवस्था को विशेष महत्व नहीं दिया जाता था। तथापि

भिन्न-भिन्न उत्पादन कार्यों को प्रारम्भ करने और जारी रखने, उसके पारस्परिक संघर्ष को रोकने तथा व्यवसायिक और श्रमिकों आदि की विविध कठिनाइयों को दूर करने की आवश्यकता तो होती ही थी। इसी का हल सुझाते हुए आचार्य ने 'सहकारी समितियों' एवं संघ, राज्य के कारखाने, श्रमिकों और पूँजीपतियों का आपसी सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए कहते हैं, कि सहकारी समितियों और संस्थाओं के कुछ गुण व कुछ दोष का विचार किया जाये और उन पर लगने वाले मुकदमों के फैसले किस प्रकार के हों, उनका नियम का वर्णन किया है।

आचार्य कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचार में राज्य को व्यवसायिक संस्था का रूप दिया है। कौटिल्य के मतानुसार राजा अपनी पूँजी लगाकर तरह-तरह के कारखाने खोले, जिससे देश के कारीगरों और मजदूरों के श्रम का प्रत्युत्तम उपयोग हो। इसके साथ ही साथ कौटिल्य ने कारखानों की व्यवस्था के नियम इस प्रकार बनाये हैं, जिससे प्रजा के कारखानों से प्रतिद्वन्द्विता होने पर प्रजा को हानि न पहुँचे। कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में कारखानों को स्वतंत्र मजदूरी पर श्रम कराने का अधिकार देने की बात की है।

कौटिल्य ने श्रमिकों एवं पूँजीपतियों का पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा बनाये रखने के लिए अच्छे, न्याययुक्त एवं सुन्दर नियम दिये हैं। कौटिल्य दोनों को अपनी शर्तें खुले आम तय करने की सलाह देते हैं। आचार्य कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचार में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनमें ग्रामीण जीवन में सहकारिता का भाव बढ़े और इस विषय में उदासीन रहने वालों को दण्ड मिले। इसी के परिणाम स्वरूप कालान्तर में केन्द्रीय सरकार पर विपत्तियाँ आने पर भी ग्राम्य जीवन की सुख समृद्धि बनी रही, सम्पूर्ण उद्योग धन्धे स्वतंत्रतापूर्वक चलते रहे।

कौटिल्य ने अपने अध्यायों में से एक अध्याय में खेती और व्यवसाय, धन्धों को महत्व भी दिया है। जिस प्रकार धन की उत्पत्ति के विभिन्न साधनों के सम्बन्ध में कौटिल्य के विचारों का विवेचन उनके अध्याय में देखने को मिलता है, उसी प्रकार खेती एवं व्यवसाय, धन्धे का उल्लेख भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अध्यायों में मिलता है, जिसमें कौटिल्य ने धन की उत्पत्ति के दो मुख्य भेद खेती व व्यावसायिक धन्धों पर की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला है।

सर्वप्रथम खेती को आर्थिक विकास में मुख्य कारक मानते हुए कहा है कि- 'खेती धन उत्पत्ति का एक प्रमुख साधन है।' कौटिल्य के समय में खेती बहुत संतोषप्रद एवं सम्पन्न थी। सामान्यतः वर्ष में दो तरह की फसल होती थी। सिंचाई का समुचित प्रबन्ध रहने से और कृषकों की आवश्यकताओं और कृषकों की सुविधाओं की व्यवस्था रहने के कारण इन फसलों में खूब पैदावार होती थी।

कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में विभिन्न प्रकार की भूमि पर मौसम व भूमण्डल पर किस कुशलता से फसल की जाये जिससे उत्पादन में वृद्धि की जा सके एवं उसका विक्रय किस कुशलता से किया जाये कि अधिकतम धनोपार्जन हो, उसके साथ ही साथ प्रजा को भी लाभ हो, इसका उल्लेख किया है।

खेती के उपरान्त व्यवसाय, धन्धे को महत्व देते हुए कौटिल्य ने विभिन्न व्यवसाय को भी आर्थिक विकास में सहायक माना है। तत्कालीन भारत में कृषि की तरह व्यवसाय भी तीव्र उन्नति पर हो। मेगस्थनीज लिखते हैं- कि भारतवासी कला-कौशल में भी बड़े निपुण पाये जाते हैं। आचार्य कौटिल्य ने व्यवसायों में एक व्यवसाय वस्त्र-व्यवसाय को मुख्य मानते हुए वर्णन किया है। कौटिल्य सूती वस्त्रों के सम्बन्ध में लिखते हैं- कि मथुरा, कोंकरा, कलिंगा, काशी, बंगाल और मैसूर में बने हुए कपड़े सबसे उत्तम समझे जाते हैं। कौटिल्य ने वस्त्र बुनने वालों के प्रसंग में सूत के कवच और रस्सी बनाने वालों का भी उल्लेख किया है।

आचार्य कौटिल्य ने वस्त्र के व्यवसाय के समान ही खनिज के व्यवसाय व उसके विस्तार पर बल दिया है। कौटिल्य कहते थे कि- 'किस चीज की खान है, यह जानने के लिए कच्ची धातु की, उसके भार, रंग, तेज, गंध और स्वाद द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए।' विविध कच्ची धातुओं को इनके शुद्ध रूप में परिवर्तित करने के लिए भी कौटिल्य ने अपने विचारों का प्रस्तुतिकरण किया है।

वस्तु, खनिज के व्यवसाय के अतिरिक्त कौटिल्य नमक के व्यवसाय, रत्नों के व्यवसाय, सुनार के कार्य, शराब का व्यवसाय, औषधियों का व्यवसाय, चमड़े का व्यवसाय को भी आर्थिक विकास में अहम भूमिका प्रदान करने वाले व्यवसाय मानते हैं तथा उनके संरक्षण पर बल देते हैं।

आचार्य कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में 'कर' को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। आचार्य ने 'कर' को आर्थिक विकास में अवरोध उत्पन्न होने वाले कारकों को समाप्त व आय की असमानता को समाप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। 'कर' के सम्पूर्ण कार्यकरण की चर्चा करते हुए आचार्य ने कर वसूली करने वाले अधिकारियों के कर्तव्यों का वर्णन भी किया है। इसके अतिरिक्त कर का स्वरूप कब,

कैसा हो इस पर भी प्रकाश डाला है।

आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि कर उपज या भौगोलिक स्थिति के आधार पर लगना चाहिए। राज्य को चार हिस्सों में बाँटकर उसकी गणना करनी चाहिए। कर वसूल करने के प्रकारों का वर्णन करते हुए कौटिल्य ने यह कहा है कि कर तीन प्रकार से वसूल होते हैं-

1- बाह्य

2- आभ्यन्तर

3- आतिथ्य।[10]

'बाह्य का तात्पर्य अपने राज्य में पैदा हुई वस्तुओं पर वसूल किए जाने वाला कर।'[11]

'आभ्यन्तर से तात्पर्य राजभवन तथा राजधानी में पैदा होने वाली वस्तुओं पर लगाया वसूल किया जाने वाला कर है।'[12]

'आतिथ्य से तात्पर्य अन्य देशों से आई हुई एवं अन्य देशों को निर्यात की गई वस्तुओं पर वसूल किया जाने वाला कर।'[13]

इस प्रकार इसके 2 भेद हैं-[14]

(1)निष्क्राम्य एवं

(2) प्रवेश्य ।

अर्थात् निर्यात की जाने वाली वस्तु पर तथा आयात की जाने वाली वस्तु पर कर।

आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों में सम्पत्ति के उत्तराधिकार के भी समावेश मिलते हैं। कौटिल्य के आर्थिक विचारों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि माता या मात्र पिता के जीवित रहते पुत्र सम्पत्ति के अधिकारी नहीं बन सकते। दोनों के न रहने पर पुत्र उस सम्पत्ति का बंटवारा कर सकते हैं। पिता की सम्पत्ति पर सभी पुत्रों का समान अधिकार है। सम्पत्ति के साथ ही साथ भाइयों को आभूषण तथा नकदी के साथ-साथ ऋण को भी बराबर-बराबर बांट लेना चाहिए, यही नियम है।

कौटिल्य के अनुसार- विद्यमान सम्पत्ति ही विभाज्य होती है। अविद्यमान सम्पत्ति नहीं। कौटिल्य ने पैतृक सम्पत्ति में विशेषाधिकार का क्रम। पिता की सम्पत्ति में पुत्र का उत्तराधिकार के क्रम का वर्णन किया है।

कृषि, व्यवसाय, धंधे कर के साथ ही साथ आचार्य ने व्यापार को आर्थिक विचारों में सम्मिलित किया। आचार्य कौटिल्य ने अपने आर्थिक विचारों में (वार्ता) के अन्तर्गत व्यापार, वाणिज्य को सम्मिलित कर उनके विकास एवं उनके क्रियान्वयन पर भी प्रकाश डाला। कौटिल्य ने दो प्रकार के व्यापार का वर्णन किया -

(1) आन्तरिक व्यापार (देशी व्यापार)।

(2) बाहरी व्यापार (विदेशी व्यापार) ।

आचार्य कौटिल्य के समय में आन्तरिक व्यापार का प्रचलन ज्यादा था। सामान्यतः रोजमर्रा के काम में प्रयुक्त होने वाली चीजों के सम्बन्ध में प्रत्येक ग्राम व नगर स्वावलम्बी थे। व्यापारी उत्पादन माल को भिन्न-भिन्न स्थानों पर लाकर उसे बेचते थे। कौटिल्य के आर्थिक विचारों से यह ज्ञात होता है कि वे भी विचार देते थे। सदैव राज्यों की प्रजा के हित को सर्वोपरी रखते थे, वे जो भी विचार देते थे एवं योजना बनाते थे, उसमें राज्य की प्रजा हित निहित होता था।

कौटिल्य के अनुसार - 'राज्य का अर्थव्यवस्था में या अर्थव्यवस्था की व्यापारिक गतिविधियों में हस्तक्षेप करना उचित है, परन्तु एक सीमा के भीतर ये हस्तक्षेप होना चाहिए, यदि उस हस्तक्षेप से प्रजा को कष्ट हो तो वहाँ उस हस्तक्षेप को रोक देना चाहिए। अपने आर्थिक विचारों में कौटिल्य ने कहा कि यदि कोई व्यक्ति राज्य की आज्ञा के बगैर व्यापार करता है तो वह उचित नहीं है अर्थात् लाइसेंस प्राप्त करे बिना, किसी प्रकार का व्यापार बड़े परिमाण में नहींकरना चाहिए, यह एक दण्डनीय गतिविधि होगी।

कौटिल्य आन्तरिक व्यापारिक के साथ ही बाह्य व्यापार का भी समर्थन करते हैं। कौटिल्य, विदेशी व्यापारियों को स्वदेश में बुलाकर उन्हें व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। कौटिल्य के अनुसार विदेशी व्यापारियों को अनेक प्रकार की रियायतें व उन्हें आश्रय देने के पत्र में थे, परन्तु वे अपने नागरिकों को विदेशों में मिलने वाली असुविधाओं से बचाना ही अच्छा समझते थे।

यद्यपि 'कौटिल्य विदेशी व्यापार को लाभ जनक होने की दशा में बुरा नहीं कहते, परन्तु वह विदेश में मिलने वाली विविध बाधाओं और कठिनाइयों की ओर उदासीन भी रहना नहीं चाहते थे।'[15]

आचार्य कौटिल्य के समय में मुद्रा अपने पर्याप्त चलन में आ गयी थी और वर्तमान की भांति यहाँ बड़े परिमाण में क्रय-विक्रय और व्यापार हो रहा था, जिसमें मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती थी। आचार्यों के आर्थिक विचारों से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में सर्वसाधारण में राज्य का प्रमाणिक सिक्का माना जाता था। उस सिक्के का निर्माण चाँदी की धातु से होता था। कौटिल्य के आर्थिक विचारों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है, कि वे विनिमय के

माध्यम के तौर पर मुद्रा को प्रमाणिक मानते थे। उनके आर्थिक विचारों में औषनिधिक प्रकार के 'आदेश' का उल्लेख किया गया। अनेक विद्वानों की सम्मति में आदेश वर्तमान हुँडियों के समान ही कीमत चुकाने का एक साधन या 'कीमत' आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों में कीमत का उल्लेख भी समाविष्ट है। 'जब किसी वस्तु के निर्धारित परिमाण के बदले में निर्दिष्ट परिमाण की दूसरी वस्तु ली जाती है तो यह उस वस्तु का मूल्य कहलाती है, परन्तु जब किसी वस्तु का मूल्य रुपये-पैसे में निश्चित होता है, तो अर्थशास्त्र में यह उसकी कीमत कही जाती है।'

आचार्य कौटिल्य कीमत को निश्चित करने के संदर्भ में कहते हैं, कि कीमत निश्चित करने का दायित्व राज्य को है, राज्य किसी भी वस्तु की कीमत निर्धारित करेगा।

आचार्य व्यापारियों को संदेह की नजर से देखते थे, वे कहते थे कि- 'व्यापारी स्वार्थपूर्ण प्रवृत्ति का विचार करके व्यापारियों और कारीगरों को 'चोर' न कहे जाने वाले चोर कहना गलत न होगा।

आचार्य ने अपने आर्थिक विचारों में कीमत को निश्चित करने के उपाय भी का भी वर्णन किया है, कि 'बिक्री का माल बेचे जाने से पूर्व राज्यधिकारियों को दिखाया जाए, उनकी स्वीकृति के पश्चात उसके घटिया या बढ़िया होने के अनुसार वर्गीकरण किया जाए, तत्पश्चात् कीमत निश्चित की जाए। उसके उपरान्त निर्धारित कीमत के अनुरूप व्यापार-कर या चुंगी निर्धारित की जाए।

आचार्य ने कीमत निर्धारण की जो नीति सुझायी है स्वाभाविक रूप से व्यवहार में नहीं अपनायी जा सकती है। साधारणतः किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु की मांग एवं पूर्ति पर निर्भर करती है। मांग एवं पूर्ति के नियम से सरलतापूर्वक कीमत का निर्धारण किया जा सकता है। आचार्य ने पूर्व में अपने उदाहरण में केवल मांग को महत्व दिया था तथा कभी पूर्ति को। उनके अनुसार (आचार्य कौटिल्य) ने परायाध्यक्ष प्रकरण में लिखा है- 'बहुत से स्थानों से अर्थात् बहुत से व्यापारी लोग कीमत निश्चित करके बेचे, अर्थात् नियत कीमत पर बेचे। यदि विक्रय होने पर कीमत में कुछ कभी हो जाए तो उसके अनुसार ही व्यापारी लोग 'वेधता दें', अर्थात् उस सारी कमी को पूरा करें।' यहाँ कौटिल्य कीमत के निर्धारण, में पूर्ति को महत्व देते हैं (परन्तु वास्तविकता में केवल मांग या केवल पूर्ति कीमत को प्रभावित केवल मांग या केवल पूर्ति कीमत को प्रभावित नहीं करती बल्कि दोनों आपस में मिलकर कीमत को प्रभावित करते हैं।[16]

आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे एकाधिकार के पक्ष में नहीं थे। उनके मतानुसार यदि विदेशी वस्तुओं को भिन्न-भिन्न स्थानों से बेचने की व्यवस्था की जाए तो एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न ही नहीं हो सकेगी।

वर्तमान में आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता -

आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचार, भारतवर्ष के इतिहास की एक ऐसी अनमोल निधि है, जिस पर आज भी भारत गर्व महसूस करता है। कौटिल्य द्वारा प्रदत्व आर्थिक विचारों का अध्ययन करने के पश्चात् यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वे यूनानी विद्वानों से ज्ञान की कुशलता व निपुणता में कम न थे।

आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों से यह बहुत ही सरलता से स्पष्ट हो जाता है, कि राज्य व राष्ट्र किन नीतियों का प्रयोग कर अपने आप को सम्पन्न व सुदृढ़ बना सकेंगे। वर्तमान में आचार्य कौटिल्य के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता को देखते हुए यह कहना उचित होगा कि आचार्य कौटिल्य द्वारा जितने भी आर्थिक सम्बन्धी विचार, दिए गये हैं, उसमें अधिकतम विचार वर्तमान में उपर्युक्त साबित हुए हैं, अर्थात् आचार्य द्वारा वर्णित 'कर नीति' व्यापार नीति, दण्ड नीति, कृषि सम्बन्धी विचार, मुद्रा की भूमिका, कीमत का निर्धारण, माप-तौल आदि जितने भी नीति व विचार हैं, वह सब वर्तमान में सर्वोत्तम उपकरण के स्वरूप में सिद्ध हुए हैं। वर्तमान में आचार्य द्वारा निर्मित अनेकों नीतियों का पालन हो रहा है तथा आज भी यदि कोई आर्थिक स्थिति सम्बन्धित असन्तुलन उत्पन्न होता है तो उनके ही विचारों व नीतियों का सहारा लिया जाता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- व्यवस्थापक भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, पूंजी / छठवाँ परिच्छेद।

2- व्यवस्थापक भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, पूंजी / छठवाँ परिच्छेद।

3- व्यवस्थापक भारतीय ग्रन्थमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, पूंजी / छठवाँ परिच्छेद।

4- धीरज पॉकेट बुक्स, राधे श्याम गोस्वामी, कौटिल्य अर्थशास्त्र, कर / क्रम सं. 20 व पृ. सं. 96

5- धीरज पॉकेट बुक्स, राधे श्याम गोस्वामी, कौटिल्य अर्थशास्त्र, उत्तराधिकार क्र. सं. 28 व पृ. स. 130

6- व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, व्यापार

(बारहवाँ परिच्छेद) ।

7- व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, व्यापार (बारहवाँ परिच्छेद)।

8- व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाला वृन्दावन, जगनलाल गुप्त व भगवानगास केला, कौटिल्य के आर्थिक विचार, व्यापार (बारहवाँ परिच्छेद)

9- पूंजी, 'छठवाँ परिच्छेद' लेखक जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला' द्वारा लिखित 'कौटिल्य के आर्थिक विचार' में छठे परिच्छेद में वर्णित है।

10- व्यवस्था 'लेखक जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला द्वारा लिखित 'कौटिल्य के आर्थिक विचार में सातवें परिच्छेद में वर्णित है। प्रकाशक - व्यवस्थापक, भारतीय ग्रंथमाल, वृन्दावन।

11- खेती और व्यवसाय धंधे - लेखक जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला द्वारा लिखित 'कौटिल्य' के आर्थिक विचारोट में आठवें परिच्छेद में वर्णित है। प्रकाशक - व्यवस्थापक भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन।

12- कर

13- उत्तराधिकार ।

14- व्यापार - प्रकाशक 'व्यवस्थापक भारतीय ग्रंथमाला, वृन्दावन। लेखक, जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, किताब 'कौटिल्य के आर्थिक विचार।' बारहवां परिच्छेद।

15- मुद्रक - प्रकाशक एवं'व्यवस्थापक भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन लेखक (जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला किताब - 'कौटिल्य के आर्थिक विचार' नवां परिच्छेद ।

16- कीमत - प्रकाशक - व्यवस्थापक के भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन लेखक - जगनलाल गुप्त व भगवानदास केला, किताब - कौटिल्य के आर्थिक विचार , परिच्छेद - दसवां परिच्छेद।

◈◈

विनम्र निवेदन

आपको अवगत कराते हुए हमें अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है कि अब आपके सानिध्य में **सुपर प्रकाशन** के-444, शिवराम कृपा, विश्व बैंक बर्रा-कानपुर-208027 (उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित होने वाले **अभिनव गवेषणा** (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल) का प्रकाशन यू जी सी के प्रदत्त मानकों के आधार पर, उत्तर प्रदेश के राज्यपाल **महामहिम श्रीराम नाईक** द्वारा विगत 10 **जुलाई**, 2015 को **रत्नालय बेंकट हाल, किदवई नगर, कानपुर** में भव्य समारोह में विमोचन के साथ ही पत्रिका का विस्तार होना प्रारम्भ हो गया है। शोध छात्रों हेतु उपयोगी उनके लेखों का सम्पादन करते हुए रेफ्रीड रिसर्च जनरल को यथासम्भव स्तरीय बनाने का प्रयास किया है। इस **अभिनव गवेषणा** मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली रेफ्रीड रिसर्च जर्नल के द्वारा शोध छात्र, प्रवक्ता, असि प्रोफेसर, एसो प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष अधिकाधिक लाभ उठा सकें, इस हेतु कृपया अपने कालेज के पुस्तकालय में स्थान दिलाने की कृपा करें।

पत्रिका को विद्वत् समाज में अधिकतम लोकप्रिय बनाने के लिए समस्त प्राचार्यों का वर्ष में दो बार उनके शोध लेखों का प्रकाशन निःशुल्क किया जायेगा और साथ में सम्पादक मण्डल में स्थान देते हुए उसका प्रमाण-पत्र भी दिया जायेगा। **सदस्यता शुल्क मात्र** 15,500 **(पन्द्रह हजार पाँच सौ रुपये मात्र)** शोध पत्रिका की **आजीवन सदस्यता** के साथ ही सदस्यता-फार्म व निर्देश अंकित हैं। कृपया फार्म सम्मिलित कर शोध-पत्रिका के विस्तार एवं शिक्षक समुदाय के क्रमिक विकास के भागीदार बनें।

- सर्वेश तिवारी (राजन)

प्रबन्ध सम्पादक- **अभिनव गवेषणा**

विशेष- आजीवन सदस्यता का तात्पर्य शोध-आलेख की प्रकाशित 25 प्रतियाँ हैं।

ISSN : 2349-9273

अजातशत्रुर्नव एव भूतले : पं. रुद्रप्रसादोऽवस्थी

- डॉ. उमेश प्रसाद त्रिवेदी
प्रवक्ता - संस्कृत विभाग,
एस. एण्ड आर. फाउण्डेशन जी कालेज
ऑफ इंस्टीट्यूट एण्ड ट्रेनिंग,
चक जमालपुर, पुरवा-उन्नाव
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
umeshtrivedi490@gmail.com

सूत्राणि वाणीमलमोचकानि, रुद्रस्य ढक्काजनितानि यानि।
तद्धारयंश्चाखिलशास्त्रसारो, रुद्रप्रसादो जगतीतलेऽभूत।। 1।।

प्रसादभूतानि दधन् मुखाग्रे, सूत्राणि शम्भोर्नवपञ्चकानि।
रुद्रप्रसादत्वमुपागतोऽभूत्, साक्षात्तदासौ पृथिवी-तलेऽस्मिन्।। 2।।

यथा ही वैयाकरणस्तथासीत्, साहित्यशास्त्रेऽपि गतिस्तदीया।
मतिस्तदीया नवदर्शनेषु, दिने दिने पुष्कलिता मतं मे।।3।।

नवावतारो हि पतञ्जलेर्मुनेर्बुधोत्तमैः साधुकृताभिवन्दनः।
सुपारिजातो निजवंशकानने, ह्यजातशत्रुर्नव एव भूतले।।4।।

सदैव वेदोचितकर्मकारको, गुणाभिरामः प्रणिपातपूजितः।
सदा सदाचारविचारधारको, ह्यभूत् स कीर्त्यातितरां विचक्षणः।।5।।

धर्मार्थकामान् सममेव भुक्त्वा, मोक्षाय सच्चिन्तनतत्परोऽभूत।
श्रीरामचन्द्रस्य वसन्नगर्यामन्ते स रामेति रटन् गतश्च।।6।।

दिवंगते नाथ! विनायशिष्या अनाथभूतास्त्वयि भूतलेऽद्य।
धैर्यं कथिञ्चिद्यदि धारयन्ति, तस्मिन् हि हेतुस्तव शिक्षणन्तत्।।7।।

श्रद्धाञ्जलिः -

न्याये व्याकरणे चैव प्रसिद्धिं परमां गतः।
सर्वशास्त्रार्थमर्मज्ञः कान्यकुब्जशिरोमणिः।।1।।

अवस्थीति सुविख्यात शास्त्राध्यापनतत्परः।
साकेते निवसन् प्राज्ञः शिष्यं सह प्रौढतां गतः।।2।।

काश्यां विख्यातविद्वांसो यस्य कोटि न लेभिरे।
तस्य चाऽनुपमा कीर्तिर्दिक्षु सर्वत्र विस्तृता।। 3।।

तां शास्त्रप्रवणां कीर्तिं श्रुत्वा मोदमुपागतः।
अय्यरस्त महाभागं विद्यापीठे नियुक्तवान्।।4।।

विश्वविद्यालय सोऽयं लक्ष्मणीये पुरे स्थितः।
बभूव विदुषां प्राचां शरणं सुयशाः पुरा।।5।।

तत्र प्राच्यविभागोऽस्ति सौरसारस्वतस्थली।
आचार्याः शास्त्रिणो यत्र पपठुः शास्त्रचिन्तकाः।।6।।

काले काले च शास्त्रार्थो जज्ञे तात्त्विकचिन्तम्।
कौशल तत्र शास्त्रेषु दृष्टं श्रीमद्वस्थिनाम्।।7।।

अद्वैतसिद्धिः पठिता श्रुतास्तार्किकयुक्तयः।
आत्माऽयं धन्यतां नीतो गुरूणां सन्निधौ सुखम्।।8।।

श्रीमानवस्थी सेवातो निवृत्तो पाठने रतः।
शास्त्रचूड़ाममणिर्भूत्वा पुनः साकेतमागतः।।9।।

सुख पाठयतस्तस्य शिष्याणां वबृधे यशः।
तेनैव यशसा सोऽयं स्वर्गे लोके महीयते।।10।।

शास्त्रेषु कुशला प्रज्ञा प्रतिभा पारदृश्यवनी।
अपूर्वा वाग्मिता गोष्ठ्यां तेन सार्द्ध दिवङ्गता।।11।।

स्मृत्यश्रूणिः -

(1)
लब्धरुद्रप्रसादोऽवस्थी रुद्रप्रसादो ऽ भूत।
व्याकृति - विद्वद्वयों ऽरण्यसमो ऽ न्यान्यशास्त्रनिकरस्य।।

(2)
रायबरेलीमण्डलगतोसराहानिवासजनि भूमिः।
श्रीमदयोध्याऽध्येताऽध्यायपनकृत्तत्र राजगोपाले।।

(3)
शास्त्रार्थलब्धसुख्यातिर्विप्रः कान्यकुब्जकुलजातः।
लक्ष्मणपुरविश्वविद्यालयेन सादरमथाऽऽहूतः।।

(4)
तत्राऽध्यापनकालं समाप्य रामस्य जन्मभूमिमथ गत्वा।
आजीवनमध्यापनसुव्रतवान् मोक्षमाप तत्रैव।।

(5)
दृष्टस्तस्य विशेषो लोकव्यवहारगाऽपि तद्बुद्धिः।
सफलाऽकटुभाषित्वाद् हास्यरसिकतासमाश्रयोच्चापि।।

(6)
स्नेहश्लाधासिक्ता या सद्बुद्धिर्ययि स्थिता तस्य।
सा विस्मृता कथं स्याद् आमरणान्तं ममाऽपि लोकेऽव।।

(7)
सूनुः कृष्णकुमारो यो मम शिष्योऽस्ति विज्ञताशाली।
तस्य, स जीवतु शरदां शतमिति भूयोऽर्थये शिवं साम्बम्।।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- अजस्र पत्रिका (त्रैमासिक पत्रिका) - संपादक - डॉ. अशोक कुमार कालिया, डॉ. मात्रिदत्त त्रिवेदी, पं. राम नारायण त्रिपाठी, पं. शारदा चरण दीक्षित, डॉ. सत्यव्रत सिंह आदि, अखिल भारतीय संस्कृत परिसर, लखनऊ

◈◈

ISSN : 2349-9273

समाजवादी नायक : राम मनोहर लोहिया

- डॉ. सीमा वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग,
महिलान महाविद्यालय पी.जी. कॉलेज,
किदवई नगर, कानपुर-208011
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
seemavarmammv@gmail.com

देश की राजनीति में स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान और स्वतन्त्रता के बाद ऐसे कई नेता हुए जिन्होंने अपने दम पर शासन का रुख बदल दिया। अगर जय प्रकाश नारायण ने देश की राजनीति को स्वतंत्रता के बाद बदला तो वही राम मनोहर लोहिया ने देश की राजनीति में भावी बदलाव को बयार आजादी से पहले ही ला दी थी। राम मनोहर लोहिया को भारत एक अजेय योद्धा और महान विचारक के तौर पर देखता है। अपनी प्रखर देशभक्ति और बेलौस तेजस्वी समाजवादी विचारों के कारण अपने समर्थकों के साथ ही डॉ. लोहिया ने अपने विरोधियों के मध्य भी अपार सम्मान हासिल किया।

राम मनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च, 1910 को फैजाबाद में हुआ था। उनके पिताजी श्री हीरालाल पेशे से अध्यापक व हृदय से सच्चे राष्ट्रभक्त थे। उनके पिताजी गाँधीजी के अनुयायी थे। जब वे गाँधी से मिलने जाते तो राम मनोहर को भी अपने साथ ले जाया करते थे। इसके कारण गांधीजी के विराट व्यक्तित्व का उन पर गहरा असर हुआ। पिताजी के साथ 1918 में अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार शामिल हुए। बनारस से इण्टरमीडिएट और कलकत्ता से बी.ए. (ऑनर्स) प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए लंदन के स्थान पर बर्लिन का चुनाव किया। उन्होंने मात्र तीन माह में जर्मन भाषा में धारा प्रवाह पारंगत होकर अपने प्रोफेसर जोम्बार्ट को चकित कर दिया। अर्थशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि केवल दो वर्षों में प्राप्त कर ली। जर्मनी में चार साल व्यतीत करके डॉ. लोहिया स्वदेश वापस लौटे। किसी सुविधापूर्ण जीवन के स्थान पर जंग ए आजादी के लिए अपनी जिंदगी समर्पित कर दी। डॉ. लोहिया प्रायः कहा करते थे कि उन पर ढाई आदमियों का प्रभाव रहा, एक मार्क्स का, दूसरे गाँधी का और आधा जवाहरलाल नेहरू का।

1933 में मद्रास पहुंचने पर राम मनोहर लोहिया गांधी जी के साथ मिलकर देश को आजाद कराने की लड़ाई में शामिल हो गये। डॉ. लोहिया ने इसमें विधिवत रूप से समाजवादी आन्दोलन की भावी रूपरेखा पेश की। सन् 1935 में पं. नेहरू ने ही अपने कांग्रेस अध्यक्ष कार्यकाल में लोहिया जी को कांग्रेस का महासचिव नियुक्त किया।

8 अगस्त, 1942 को महात्मा गाँधी ने भारत छोड़ो आन्दोलन का ऐलान किया। 1942 के आन्दोलन में डॉ. लोहिया ने संघर्ष के नये शिखरों को छुआ। जयप्रकाश नारायण और डॉ. लोहिया हजारीबाग जेल से फरार हुए और भूमिगत रहकर आन्दोलन का शानदार नेतृत्व किया। लेकिन अंत में उन्होंने गिरफ्तार कर लिया गया और फिर 1946 में उनकी रिहाई हुई।

1946-47 के वर्ष लोहिया जी की जिंदगी के अत्यन्त निर्णायक वर्ष रहे। आजादी के समय उनके और पं. जवाहर लाल नेहरू में कई मतभेद पैदा हो गये थे, जिसकी वजह से दोनों के रास्ते अलग हो गये।

एक अन्य घटना के अनुसार 5 जनवरी, 1948 को बम्बई हड़ताल को लेकर लोहिया जी ने गांधी जी से हड़ताल का समर्थन मांगा। 28 जनवरी को गांधी ने कहा कि कल आना, कल पेट भर बात होगी। 30 जनवरी को लोहिया जब बिड़ला भवन के लिए निकले तब उन्हें गांधी जी की हत्या की खबर सुनने को

मिली।

30 सितम्बर, 1967 को लोहिया को नई दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल, अब जिसे लोहिया अस्पताल कहा जाता है, में पौरुष ग्रंथि के आपरेशन के लिए भर्ती किया गया, जहाँ 12 अक्टूबर, 1967 को उनका देहांत 57 वर्ष की आयु में हो गया। कश्मीर समस्या हो गरीबी, असमानता अथवा आर्थिक मंदी, इन तमाम मुद्दों पर राम मनोहर लोहिया का चिंतन और सोच स्पष्ट थी। कई लोग राम मनोहर लोहिया को राजनीतिज्ञ, धर्मगुरू, दार्शनिक और राजनीतिक कार्यकर्ता मानते हैं। डॉ. लोहिया की विरासत और विचारधारा अत्यन्त प्रखर और प्रभावशाली होने के बावजूद आज के राजनीतिक दौर में देश के जनजीवन पर अपना अपेक्षित प्रभाव कायम रखने में नाकाम रहे। उनके अनुयायी उनकी तरह विचार और आचरण के अद्वैत को कदापि कायम नहीं रख सके।

लोहिया के विचार आज भी प्रासंगिक -

समाजवाद को ठेठ भारतीय परिवेश में डालने वाले राम मनोहर लोहिया के प्रेरक और समाज को झकझोर देने वाले विचारों की प्रासंगिकता को लेकर उनकी जन्म शताब्दी पर नये सिरे से बहस शुरु हुई है। राजनीतिक आलोचकों का मानना है कि लोहिया के विचार की धार किसी काल में कुंद नहीं पड़ सकती।

समाजवादी विचारक और जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय स्थित वैश्विक अध्ययन केंद्र के निदेशक प्रोफेसर आनन्द कुमार कहते हैं कि जिंदा कौमें तो अब भी पांच साल इंतजार नहीं करना चाहती लेकिन जनता और उनकी आवाज मुखर करने वाले राजनेताओं के बीच खड़ी खाई पैदा हो गई है। नेता अब सत्याग्रही के बजाय सत्ताग्रही हो गये हैं।

लोहिया के विचार -

लोहिया एक फिजा थे, साथ ही एक अनोखी व गर्म फिजा के निर्माता भी। वह फिजा कैसी थी? सम्पूर्ण आजादी, समता, सम्पन्नता, अन्याय के विरुद्ध जेहाद और समाजवाद की फिजा। आज वह फिजा भी नहीं है, लोहिया भी नहीं हैं। लेकिन दूसरों के लिए जीने वाला कभी मरता नहीं। लोहिया आज भी अपने विचारों में जीवित हैं। लगन, ओजस्विता और उग्रता-प्रखरता को जब तक गुण माना जायेगा, लोहिया के विचार अमर रहेंगे। मूलतः लोहिया राजनीतिक विचारक, चिंतक और स्वप्नद्रष्टा थे, लेकिन उनका चिन्तन राजनीति तक ही कभी सीमित नहीं रहा। व्यापक दृष्टिकोण, दूरदर्शिता उनकी चिन्तन-धारा की विशेषता थी। राजनीति के साथ-साथ संस्कृति, दर्शन, साहित्य, इतिहास, भाषा के बारे में भी उनके मौलिक विचार थे। लोहिया की चिन्तन-धारा कभी देश-काल की सीमा की बन्दी नहीं रही।

विश्व-नागरिकता का सपना देखा था। वे मानव-मात्र को किसी देश का नहीं बल्कि नागरिकता का सपना देखा था। वे मानव-मात्र को किसी देश का नहीं बल्कि विश्व का नागरिक मानते थे। उनकी चाह थी कि एक से दूसरे देश में आने जाने के लिए किसी तरह की भी कानूनी रुकावट न हो और सम्पूर्ण पृथ्वी के किसी भी अंश को अपना मानकर कोई भी कहीं आ-जा सकने के लिए पूरी तरह आजाद हो। लोहिया एक नयी सभ्यता और संस्कृति के द्रष्टा और निर्माता थे। लेकिन आधुनिक युग जहाँ उनके दर्शन की उपेक्षा नहीं कर सका, वही उन्हें पूरी तरह आत्मसात् भी नहीं कर सका।

अपेी प्रखरता, ओजस्विता, मौलिकता, विस्तार और व्यापक गुणों के कारण वे अधिकांश मैं लोगों की पकड़ से बाहर रहे। इसका एक कारण है - जो लोग लोहिया के विचारों को ऊपरी सतही ढंग से ग्रहण करना चाहते हैं, उनके लिए लोहिया बहुत भारी पड़ते हैं। गहरी दृष्टि से ही लोहिया के विचारों, कथनों और कर्मो के भीतर उस सूत्र को पकड़ा जा सकता है, जो सूत्र लोहिया-विचार की विशेषता है, वही सूत्र ही तो उनकी विचार-पद्धति है। लोहिया गाँधी के सत्याग्रह और अहिंसा के अखण्ड समर्थक थे, लेकिन गाँधीवाद के वे अधूरा दर्शन मानते थे, एक समाजवादी थे, लेकिन मार्क्स को एकांगी मानते थे, वे राष्ट्रवादी थे, लेकिन विश्व-सरकार का सपना देखते थे, वे आधुनिकतम विद्रोही तथा क्रान्तिकारी थे, लेकिन शांति व अहिंसा के अनूठे उपासक थे। लोहिया मानते थे कि पूँजीवादी और साम्यवाद दोनों एक-दूसरे के विरोधी होकर भी दोनों एकांगी और हेय हैं। इन दोनों से समाजवाद ही छुटकारा दे सकता है। फिर वे समाजवाद को भी प्रजातंत्र के बिना अधूरा मानते थे। उनकी दृष्टि में प्रजातंत्र और समाजवाद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक-दूसरे के बिना दोनों अधूरे व बेमतलब हैं।

लोहिया ने मार्क्सवाद और गांधीवाद को मूल रूप में समझा और दोनों को अधूरा पाया, क्योंकि इतिहास की गति ने दोनों को छोड़ दिया है। दोनों का महत्व मात्र-युगीन है। लोहिया की दृष्टि में मार्क्स पश्चिम के तथा गाँधी पूर्व के प्रतीक है और लोहिया पश्चिम-पूर्व की खाई पाटना चाहते थे। मानवता के दृष्टिकोण से वे पूर्व-पश्चिम, काले-गोरे, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े राष्ट्र नर-नारी के बीच की दूरी मिटाना चाहते थे। लोहिया के विचार-पद्धति रचनात्मक है। वे पूर्णता व समग्रता के लिए प्रयास करते थे। लोहिया ने लिखा है - 'जैसे ही मनुष्य अपने प्रति सचेत होता है, चाहे जिस स्तर पर यह चेतना आए और पूर्ण से अपने अलगाव के प्रति संताप व दुःख की भावना जागे, साथ ही अपने अस्तित्व के प्रति संतोष का अनुभव हो, तब यह विचार-प्रक्रिया होती है कि वह पूर्ण के

साथ अपने को कैसे मिलाए, उसी समय उद्देश्य की खोज शुरू होती है।' लोहिया अनेक सिद्धान्तों, कार्यक्रमों और क्रांतियों के जनक हैं। वे सभी अन्यायों के विरुद्ध एक साथ जेहाद बोलने के पक्षपाती थे, उन्होंने एक साथ सात क्रांतियों का आहवान किया। वे सात क्रांतियाँ थी - (1) नर-नारी की समानता के लिए । (2) चमड़ी के रंग पर रची राजकीय आर्थिक और दिमागी असमान तक के खिलाफ । (3) संस्कारगत, जन्मजात जातिप्रथा के खिलाफ और पिछड़ों को विशेष अवसर के लिए। (4) परदेसी गुलामी के खिलाफ और स्वतन्त्रता तथा विश्व लोक-राज के लिए । (5) निजी पूंजी की विषमताओं के खिलाफ और आर्थिक समानता के लिए तथा योजना द्वारा पैदावार बढ़ाने के लिए । (6) निजी जीवन में अन्यायी हस्तक्षेप के खिलाफ और लोकतंत्री पद्धति के लिए। (7) अस्त्र-शस्त्र के खिलाफ और सत्याग्रह के लिए।

इन सात क्रांतियों के सम्बन्ध में लोहिया ने कहा - 'मोटे तौर से ये हैं- सात क्रांतियाँ। सातों क्रांतियाँ संसार में एक साथ चल रही हैं। अपने देश में भी उनको एक साथ चलाने की कोशिश करना चाहिए। जितने लोगों को भी क्रांति पकड़ में आयी हो उसके पीछे पड़ जाना चाहिए और बढ़ाना चाहिए। बढ़ाते-बढ़ाते शायद ऐसा संयोग हो जाये कि आज का इन्सान सब नाइन्साफियों के खिलाफ लड़ता-जूझता ऐसे समाज और ऐसी दुनिया को बना पाये कि जिसमें आन्तरिक शांति और बाहरी या भौतिक भरा-पूरा समाज बन पाये।

समाजवाद की यूरोपीय सीमाऔं और आध्यात्मिकता की राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर उन्होंने एक विश्व-दृष्टि विकसित की। उनका विश्वास था कि पश्चिमी विज्ञान और भारतीय अध्यात्म का असली व सच्चा मेल तभी हो सकता है जब दोनों को इस प्रकार संशोधित किया जाय कि वे एक-दूसरे के पूरक बनने में समर्थ हो सकें। भारतमाता से लोहिया की मांग थी - 'हे भारतमाता ! हमें शिव का मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय के साथ-साथ जीवन की मर्यादा से रचो।' वास्तव में यह एक साथ एक विश्व-व्यक्तित्व की माँग है। इससे ही उनके मस्तिष्क और हृदय को टटोला जा सकता है।

लोहिया का विश्वास था कि 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' के प्राचीन आदर्श और आधुनिक विश्व के 'समाजवाद, स्वातंत्र्य और अहिंसा के तीन-सूत्री आदर्श जीवन का सुन्दर सत्य होगा और उस सत्य को जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए मर्यादा-अमर्यादा का, सीमा-असीमा का बहुत ध्यान रखना होगा। दुनिया के सभी क्षेत्रों की परम्पराओं द्वारा प्राप्त स्थल-कालबद्ध अर्द्धसत्यों को सम्पूर्ण बनाने की दृष्टि से संशोधन की चेष्टा लोहिया के जीवन भरी साधना रही है।

आज दुनियाँ की दो-तिहाई आबादी का दर्द और गरीबी व विपन्नता को जड़ से मिटाने और समस्त विश्व को युद्ध और विनाश की बीमारी से मुक्त करने का निदान लोहिया ने बताया। साथ ही वे यह भी जानते थे कि निदान सही होने पर भी संसार में फैला स्वार्थ और लोभ उसे मंजूर न करेगा। क्योंकि सौ फीसदी लाभ करने वाली दवा के मध्य और कायदे-कानून बड़े निर्मम व कठोर होते हैं। लेकिन लोहिया ने इसकी भी कभी चिन्ता न की और उन्हें जो कुछ सत्य प्रतीत हुआ उसी का प्रचार करते रहे। उनका विश्वास था कि सही बात यदि बार-बार और बराबर कही जाय, तो धीरे-धीरे लोगों की उसे सुनने की आदत पड़ती जाएगी। इसीलिए दूसरों को अजीबोगरीब लगने वाली अपनी बातें वे निरन्तर जीवनपर्यन्त कहते रहे। लोहिया में विचार, प्रतिभा और कर्मठता का अनोखा मेल था। राजनीतिक कर्मयोगी के रूप में उनकी देन का मूल्यांकन अभी सम्भव नहीं है। शायद उसका कभी समय भी नहीं आया है, परन्तु जहाँ तक उनके विचारों व सिद्धान्तों की बात है, उनके साथ भी वही हुआ, जो विश्व की लगभग सभी महान प्रतिभाओं के साथ होता चला आया है। ऐसे लोग, जो भी विचार और कल्पनाएँ पेश करते हैं, साधारण लोगों में उनके महत्व का प्रचार व ज्ञान होने में समय लगता ही है, परन्तु आश्चर्य होता है, जब समकालीन राजनीतिक व विचारक भी बहुधा उनके विचारों का सही मूल्यांकन सही समय पर नहींकर पाते और बाद में पछतावे की बारी आती है। उदाहरण के रूप में यदि सन् 1954 में लोहिया के कहने पर केरल के समाजवादी मन्त्रिमण्डल ने इस्तीफा दे दिया होता तो आज इस देश में समाजवादी आन्दोलन तो आदर्श बनता ही, साथ ही दुनिया में भी एक नये आदर्श का निर्माण हुआ होता।

लोहिया ने खुद लिखा है -'मुझे भी कभी-कभी ताज्जुब होता है कि एक तरह के निराधार अभियोग एक ही आदमी के विरुद्ध लगातार क्यों लगाए जाते हैं? मेरे ऊपर दोष लगाने वालों की ताकत यही है कि वे भारतीय शासक वर्ग के खयालों के साथ हैं और मैं उसके बिल्कुल विरुद्ध। इसके अलावा मैंने भारतीय समाज की पुरानी बुनियादों के खिलाफ आवाज उठाई और उन पर हमला किया है। जिसका नतीजा है कि मुझे देश की सभी स्थिर स्वार्थवाली और प्रभावशाली शक्तियों के क्रोध का शिकार बनना पड़ता है।' शायद लीक पर चलना लोहिया के स्वभाव में न था। साथ ही वे प्रवाह के साथ भी कभी बहे ही नहीं, बल्कि प्रचलित प्रवाह के उलटे तैरने के प्रयोग में उनके विचारों को प्रचार के लिए देश के अखबारों का भी सहयोग कभी नहीं मिला। उपेक्षा, भ्रामक प्रचार और मिथ्या लेखन

द्वारा लोहिया के विचारों को दबाने की सदा कोशिश की गई, पर क्या यह संभव था कि इस प्रकार उनके विचारों को नष्ट किया जा सकता? उनकी महान कृतियों को जब भुलाना असंभव हो जाता था तभी आंशिक रूप में उन्हें प्रकाशन मिलता था - सो भी कभ-कभी सही रूप में नहीं, बल्कि तोड़-मरोड़ कर, अर्थ को अनर्थ करके। दूसरी ओर हर झूठ का बराबर खण्डन करते रहना तथा सफाई देना स्वाभिमानी लोहिया के स्वभाव के खिलाफ तो था ही।

समाजवादी नायक : श्री राम मनोहर लोहिया -

जेनेवा में लीग ऑफ नेशंस की सभा चल रही थी ! जैसे ही उसमें बीकानेर के महाराजा, जो कि अंग्रेजों का समर्थक था, भारत के प्रतिनिधि के रूप में बोलने के लिए खड़े हुए तभी एक भारतीय युवक ने दर्शक दीर्घा में खड़े होकर उनका विरोध किया। इस युवक के अनुसार उस व्यक्ति को भारत का प्रतिनिधित्व करने का वास्तव में कोई हक नहीं था जो कि भारत की जनता का हितैषी न होकर ब्रिटिश राज का मित्र हो। यह प्रखर युवक कोई और नहींश्री राम मनोहर लोहिया जी थे ! इस घटना ने उन्हें पूरे भारत में रातों-रात प्रसिद्ध कर दिया।

1932 में स्वदेश वापस आते ही वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गये। प्रारम्भ से ही लोहिया जी का झुकाव समाजवाद की ओर था। कांग्रेस के वरिष्ठ सदस्यों के ढीलेपन से असंतुष्ट होकर लोहिया जी, जे. पी. नारायण, अच्युत पटवर्धन, युसुफ मेहराली जैसे समाजवादी युवा क्रांग्रेसियों ने 1934 में 'कांग्रेस समाजवादी पार्टी' की स्थापना की और लोहिया जी ने 'कांग्रेस सोशलिस्ट' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन भी किया।

1963 में जब लोहिया जी संसद में पहुँचे तब तक देश में लगातार तीन आम चुनावों से कांग्रेस की ही सरकार थी। इस स्थिति में आवाज उठाने वाले लोहिया जी पहले व्यक्ति थे। उन्होंने सरकार के अनावश्यक व्यय पर एक पैम्फलैट लिखा- 'एक दिन के 25,000 रुपये ।' असल में प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू पर प्रतिदिन 25,000 रुपये खर्च होते थे जबकि देश की 70 प्रतिशत जनता मात्र तीन आना प्रतिदिन पर गुजर कर रही थी। नेहरू ने इसका यह कहकर विरोध किया कि भारत के योजना आयोग के आंकड़ो के अनुसार एक दिन की प्रति व्यक्ति आय लगभग 15 आना है। लोहिया जी ने इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर विशेष चर्चा की मांग की। यह बहस आज भी 'तीन आना-पंद्रह आना' नाम से प्रसिद्ध है। बहस में कोई भी सदस्य उनके अकाट्य तर्को के आगे टिक नहीं सका और उन्होंने साबित किया कि योजना आयोग के आंकड़े काल्पनिक और गुमराह करने वाले हैं। सच तो यह था कि आज की ही तरह केवल कुछ अमीर लोगों की आय ने प्रति व्यक्ति आय के औसत को बढ़ा दिया था जिससे एक बिल्कुल ही अविश्वसनीय चित्र बन गया था। लेकिन लोहिया जी के आंकड़े सही साबित हुए।

आज हम देखते है कि खुद को समाजवादी कहने वाले नेता जिनके पास राजनीति में आने से पहले कुछ भी नहीं था। आज वह लाखों करोड़ों में खेल रहे हैं, अपने बच्चों के विवाह में लाखों-करोड़ो खर्च कर रहे हैं और भ्रष्टाचार में डूबे हैं। उन्हें गरीब इंसानों की भुखमरी, गरीबी, आंसू और तकलीफ नहीं दिखाई देती। वही एक समाजवादी लोहिया जी भी थे जिनका जीवन प्रत्येक समाजवादी के लिए अनुकरणीय है।

राजनीति -

उनके अनुसार भारत में कौन शासन करेगा इसका निर्धारण तीन बातों से होता है - उच्च जाति, धन और ज्ञान। जिसके पास इनमें से कोई भी दो चीजें होती है वह शासन कर सकता है। यह सूत्र आज भी उतना ही सत्य है। उन्होंने किसानों की दिन दिन की समस्याओं को खत्म करने के लिए हिंद किसान पंचायत की स्थापना की। वह चाहते थे कि पूरी दुनिया के समाजवादी एक हो जाएँ। उन्होंने विश्व में शांति की स्थापना के लिए विश्व सरकार की स्थापना की। जीवन के अन्तिम वर्षो में उन्होंने राजनीति के अलावा हजारों युवाओं से भारतीय साहित्य, राजनीति, कला जैसे विविध विषयों पर संवाद करना शुरू कर दिया। 12 अक्टूबर, 1967 को दिल्ली में लोहिया जी का देहावसान हो गया। इसे समाजवाद की पराकाष्ठा की कहा जायेगा कि वह अपने पीछे न कोई संपत्ति छोड़ कर न बैंक बैलेंस।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- डॉ. पुखराज जैन - राजनीति विज्ञान
2- डॉ. बी.एल. फड़िया-भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन।
3- विश्व प्रकाश गुप्त, मोहनी गुप्ता - भारतीय राजनीति विकास और विश्लेषण।
4- पवन कुमार - भारतीय राजनीतिक विचारक।
5- डॉ. ए. अवस्थी, डॉ. आर.के. अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन।
6- Urmila Sharma - Indian Political Thought.
7- डॉ. रामविलास शर्मा - गांधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्यायें।
8- http://www.growthindia.org/?p=2689
9- http://days.jagaranjunction.com2011/03/23/-rammanoharlohia/
10- http://upendrasatyarthi.blogspot.in/2009/06/blog-postohia/ 07.html
11- http://bharatkenayak.blogspot.in/2011/04/blog-postostohia/ 16.html

ISSN : 2349-9273

पुराणों का वर्गीकरण एवं विष्णु पुराण

– डॉ. विनीता वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर–संस्कृत विभाग,
डी. एन. पी. जी. कालेज,
फतेहगढ़ (फर्रुखाबाद)–209601
उत्तर प्रदेश

ई–मेल :
dr.vineetacall22@gmail.com138

सारांश

विष्णुपुराण के प्रभाव से वैष्णवागमों का विकास हुआ। अग्नि पुराण के 39वें अध्याय में वैष्णवों के जिन पांचरात्र दार्शनिक तत्वों का निरूपण किया गया है। वे विष्णुपुराण के आधार पर प्रतिपादित किये गये हैं, क्योंकि विष्णु पुराण ही वैष्णवागमों का प्राचीन स्रोत अथवा उपजीव्य ग्रन्थ रहा है।

ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर विष्णु पुराण अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है। इसी पुराण के अनुसार पराशर ने अपने पिता शक्ति की मृत्यु के प्रतिशोध में राक्षसों को नष्ट करने के लिए यज्ञ किया। इसमें हजारों राक्षस स्वाहा होने लगे, यह देखकर ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य आये, उन्होने पराशर को समझाकर शान्त किया। तब पुलस्त्य ने पराशर को पुराणसहिता कर्ता होने का वरदान दिया।

पुराण भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्राचीन आधार ग्रन्थ हैं। पुराण सदैव हमारे साहित्य और समाज से किसी न किसी रूप में प्रतिनिधि रहे हैं। पुराणों की लोकप्रियता कभी भी कम नहीं हुई हैं। पुराण अपनी सरस शैली और समाजोपयोगी विषयवस्तु से प्राचीन होते हुये भी नवीन बने रहतें हैं। पुराणों की कथाओं के आधार पर अनेक समर्थ कवियों ने महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की हैं।

पुराणों का वर्गीकरण विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार से प्राप्त होता है। विष्णुपुराण के अनुसार दो प्रकार के पुराण हैं। एक वे पुराण हैं जो महापुराण कहलाते हैं तथा दुसरे पुराण, उपपुराण कहे जाते है।[1] इसी प्रकार के दो भेदों का प्रतिपादन देवीभागवत 3/3/16, गरुडपुराण 1/5/16 तथा कूर्मपुराण 1/17/20 में भी प्राप्त होता है। पुराणेतर ग्रन्थों में अठ्ठारह महापुराण तथा अठ्ठारह उपपुराणों के उल्लेख के साथ–साथ अष्टादश औपपुराणों का भी नाम मिलता है। इस प्रकार पुराणों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. महापुराण 2. उपपुराण 3. औपपुराण

दूसरी ओर ज्ञानानन्द सरस्वती ने शब्दकल्पद्रुम में पुराणों का पाँच प्रकार से विभाग किया है। उनके अनुसार निम्नवत पुराणों का वर्गीकरण किया गया है–

1. महापुराण
2. उपपुराण
3. औपपुराण
4. उपोपपुराण
5. उपौपपुराण

अन्य प्रकार से वर्गीकरण –

अष्टादश महापुराणों का वर्गीकरण विभिन्न ग्रन्थों में अनेक प्रकार से मिलता है। पद्म पुराण ने सात्विक, राजस, तथा तामस भेद से इन महापुराणों को तीन भागों में विभक्त किया है। इसके अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिंड्ग, शिव, स्कन्द तथा

अग्नि महापुराण तामस कहलाते है। ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य तथा ब्रह्माण्ड महापुराण राजस हैं और विष्णु पुराण, नारद पुराण, भागवत पुराण, गरुड़ पुराण, पद्म पुराण तथा वाराह महापुराण सात्विक कहे जाते हैं।[2]

स्कन्दपुराण ने चार प्रकार से महापुराणों का वर्गीकरण किया है। इसमें पुराणों का नाम उल्लेख न कर मात्रा संख्या बतायी गयी है। इस वर्गीकरण से साधरणत: जिज्ञासा शान्त नहीं होती । इसके अनुसार अष्टादश महापुराणों में दस शिवपरक या शैव है। चार ब्राह्म हैं, दो देवीपरस या शाक्त हैं तथा दो विष्णुपरक या वैष्णव महापुराण हैं।[3]

मत्स्यपुराण में महापुराणों को चार वर्गो में विभाजित किया है। इसके अनुसार सात्विक, राजस, तामस तथा संड्कीर्ण भेद से वर्गीकरण किया गया है। तथा यह भी प्रतिपादित किया गया है। कि जिन महापुराणों में विष्णु का माहात्म्य अधिकांशत: वर्णन किया गया है, वे सात्विक हैं- ब्रह्म तथा अग्नि का माहात्म्य वर्णन करने वाले राजस महापुराण है। शिव का माहात्म्य वर्णन करने वाले तामस तथा सरस्वती, पितरो का वर्णन करने वाले संड्कीर्ण महापुराण कहलाते है।[4]

गरुड़पुराण ने मात्रा छ: महापुराणों को तीन प्रकार से विभक्त किया है शेष का उल्लेख इसमें प्राप्त नहीं होता, अत: अपूर्ण सा प्रतीत होता है। इसके अनुसार मत्स्य तथा कूर्म सत्वाधम महापुराण है। वायु सात्विक मध्यम तथा विष्णु, भागवत, गरुड सात्विकोत्तम महापुराण है।[5]

अर्वाचीन विद्वानों ने महापुराणों को छ: भागों में विभाजित किया है।[6] जिनके नाम निम्न प्रकार है-

1. **साहित्यिक पुराण**- जिन पुराणों में मानव के उपयोगी सभी विद्याओं का वर्णन पाया जाता है, वे साहित्यिक पुराण कहे जाते हैं इनमें अग्नि, गरुड तथा नारद महापुराण आते हैं।

2. **तीर्थ एवं व्रत सम्बन्धी पुराण**- तीर्थो तथा व्रतों का विशेष प्रतिपादन करने वाले पुराण जैसे पद्म, स्कन्द तथा भविष्य महापुरण हैं। वे सभी तीनों इस वर्ग में आते हैं।

3. **परिवर्धित पुराण** -जिन पुराणों में आगे पीछे कुछ जोडकर पुराण को परिवर्धित किया गया है, वे इस वर्ग में आते है, जैसे ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त तथा भागवत महापुराण ।

4. **ऐतिहासिक पुराण** -वायु तथा ब्रह्माण्डपुराण इस वर्ग में आते हैं, इनमे कलियुग के राजाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

5. **साम्प्रदायिक पुराण** -जिन पुराणों में शैव, शाक्त गाणपत इत्यादि सम्प्रदायों का प्रतिपादन किया गया है वे इस वर्ग में परिगणित हैं। इनमें लिंड्ग वामन तथा मार्कण्डेय महापुराण आते हैं।

6. **संशोधित पुराण** -जिनमे अधिक संशोधन होने के कारण मूलपाठ का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता है वे इस वर्ग में आते हैं। इनमे वाराह कूर्म तथा मत्स्य को इस वर्ग में रखा जा सकता है।

विष्णुपुराण -

यह एक महत्त्वपूर्ण महापुराण है। वैष्णव भक्ति तथा दर्शन का आधार होने के कारण इस महापुराण को विशेष समादर प्राप्त हैं। क्योंकि इस पुराण की रचना श्रीमद्‌भागवत से पूर्व हुई है, इसीलिए इसका प्रभाव भागवत पर स्पष्टरूप से दिखायी देता है। विष्णुपुराण के ध्रुव-प्रहलाद चरित्र, जड़भरत चरित्र सप्तद्वीप वर्णन, सृष्टिवर्णन इत्यादि प्रतिपाद्य विषयों का विस्तार पूर्वक वर्णन भागवत में प्राप्त होता है। इस महपुराण के पंचम अंश में साररूप से जिस कृष्णचरित का वर्णन किया गया है, उसी के प्रभाव से असाधरण वर्णन श्रीमद्‌भागवत में किया गया है। जगद्‌गुरु शंड्कराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, प्रभृति ने विष्णुपुराण की प्रामाणिकता और महत्व समझते हुये अनेक स्थलों पर इसके श्लोकों को प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किया है।

रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसूत्र विवेचन के प्रसङ्‌ग में अपने श्रीभाष्य में विशिष्टाद्वैत मत की पुष्टि के लिए विष्णुपुराण 2/12/39-45 श्लोक प्रमाण हेतु प्रस्तुत किये है। निम्बार्काचार्य ने अपने द्वैताद्वैत मत को स्थापित करने के लिए विष्णुपुराण 6/7/47-71 के श्लोकों का उल्लेख किया है।

विष्णुपुराण के प्रभाव से वैष्णवागमों का विकास हुआ। अग्निपुराण के 39वें अध्याय में वैष्णवों के जिन पांचरात्र दार्शनिक तत्वों का निरूपण किया गया है। वे विष्णुपुराण के आधार पर प्रतिपादित किये गये हैं, क्योंकि विष्णु पुराण ही वैष्णवागमों का प्राचीन स्रोत अथवा उपजीव्य ग्रन्थ रहा है।

ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर विष्णुपुराण अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होता है। इसी पुराण के अनुसार पराशर ने अपने पिता शक्ति की मृत्यु के प्रतिशोध में राक्षसों को नष्ट करने के लिए यज्ञ किया। इसमें हजारों राक्षस स्वाहा होने लगे, यह देखकर ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य आये, उन्होने पराशर को समझाकर शान्त किया। तब पुलस्त्य ने पराशर को पुराणसहिता कर्ता होने का वरदान दिया।[7]

यही विष्णुपुराण पराशर ने मैत्रेय को सुनाया था।[8] इस

प्रसङ्ग से स्पष्ट होता है कि पराशर की रचना निश्चित रूप से व्यास से पूर्ववर्ती मानी जायेगी।

इस पुराण की यह भी विशेषता है कि विष्णुपरक होने पर भी साम्प्रदायिकता से दूर है। विष्णु एवं शिव में तत्वत: अभेद प्रतिपादित करने वाले विष्णुपुराण की यह उक्ति मार्मिक है।

अविद्यामोहितात्मान: पुरुषा भिन्नदर्शिन:।
वदन्ति भेदं पश्यन्ति चावयोरन्तरं हर:।।

(विष्णु. 5/33/39)

यह पुराण संङ्कीर्णता से हटकर व्यापकता का पोषक दिखायी देता है। विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति में यहाँ उल्लेख किया गया है कि यह सम्पूर्ण जगत भगवान् की शक्ति से व्याप्त है अत: वे 'विष्णु' कहलाते है क्योंकि विश् धतु का अर्थ प्रवेश करना है। भगवान् सब में प्रविष्ट होने के कारण विष्णु कहे जाते है।

यस्माद्विष्टमिदंविश्वं तस्य शक्त्या महात्मन:।
तस्मात्स प्रोच्यते विष्णु विशेर्धतो प्रवेशनात् ।।

(विष्णु. 3/1/45)

विविध दृष्टिकोण से देखने पर विष्णुपुराण एक अति विशिष्ट पुराणग्रन्थ सिद्ध होता है। इसकी वेदमूलकता और प्रामाणिकता को भारतीय दर्शन की अनेक धाराओं ने स्वीकार किया है। इसके अनेक उदाहरणों को लेकर वेदान्तभाष्य, उपनिषद्भाष्य तथा गीताभाष्य आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का विश्लेषण हुआ है। साथ ही इस महापुराण में वर्णित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, भूगोलवर्णन, सृष्टिवर्णन, महापुराणों का गणनाक्रम, ज्योतिश्चक्रवर्णन, सदाचार, राजवंश वर्णन और परमात्मा के पारमार्थिक स्वरूप का प्रतिपादन इत्यादि अत्यन्त रोचक एवं विशेष हैं।

नारद पुराण 94/12 के अनुसार विष्णुपुराण को दो भागों में विभक्त बताया गया है, तथा इसमें तेइस हजार श्लोक होने का उल्लेख किया गया है। मत्स्य पुराण 53/17 भी इसमें 23 हजार श्लोक होने को प्रमाणित करता है, किन्तु मत्स्य के अनुसार विष्णु पुराण के दो भाग नहीं परन्तु एक ही भाग हैं। वर्तमान में जो विष्णु पुराण उपलब्ध होता है, उसमें छ: हजार श्लोक ही मिलते हैं। पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र के अनुसार काठियावाड़ (गुजरात) में किन्हीं के घर तेइस हजार श्लोकों से युक्त विष्णु पुराण के मिलने की संभावना व्यक्त की गयी है।[९]

विष्णु पुराण का वैशिष्ट्य समझकर अनेक विद्वान् आचार्यो ने इस पर टीकायें लिखी है। इनमें नृसिंह, जगन्नाथ, चित्सुख, रत्नगर्भ, श्रीधर, विष्णुचित्त, सूर्यकर आदि की टीकाओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु वर्तमान में तीन-रत्नगर्भ की वैष्णवाकृत, विष्णुचित्त की विष्णुचित्तीया तथा श्रीधर की आत्मप्रकाश टीकायें उपलब्ध होती हैं। इस सभी मूल्यांकन से कहा जा सकता है कि विष्णु पुराण का स्थान महत्वपूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने।
तथा चोपपुराणानि मुनिभि: कथितानि च ।।
(विष्णु पुराण 3/6/24)
2. मत्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोध मे ।।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवंत शुभम्।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने।।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे।।
(पद्म पुराण - उत्तराखण्ड 163/81-84)
3. अष्टादशपुराणेषु दशभिर्गीयते शिव:।
चतुर्भि: भगवान्ब्रह्मा द्वाभ्यां देवी तथा हरि:।।
(स्कन्द पुराण 2/30/28)
4. सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरे:।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदु:।।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संङ्कीर्णेषु सरस्वत्या: पितृणां च निगद्यते।।
(मत्स्य पुराण 53/68-69 गीताप्रेस)
5. सत्वाधमे मत्स्यकूर्मे तवाहु: वायुं चाहु: सात्विकं मध्यमं च।
विष्णो: पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गारुडं प्राहुरार्या:।।
(गरुड़ पुराण पूर्व खण्ड 2/7)
6. पुराणविमर्श-बलदेव उपाध्याय, पृ. 93 द्वितीय संस्करण, वाराणसी।
7. पुराणसंहिताकर्ता भवान् वत्स भविष्यति। (विष्णु पुराण 1/1/26)
8. सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते।
पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम् ।। (विष्णु पुराण 1/130)
9. अष्टादशपुराणदर्पण, - पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र, पृ. 120 वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई, सन् 1905 संस्करण।

◈◈

ISSN : 2349-9273

बौद्धमत की असंगतियों का खण्डन

- डॉ. प्रतिमा अवस्थी
असि. प्रोफेसर - संस्कृत विभाग,
ठाकुर बलदेव सिंह महाविद्यालय, बहादुर-उञ्जैना, कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
pratima94157shukla@gmail.com

बौद्धमत के अनुयायी परस्पर किंचित् मतभेदों को लेकर विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करते हुए उनके नाम इस प्रकार से बताये हैं - वैभाषिक, षोत्रान्तिक, योगाचार तथा माध्यमिक । इनमें वैभाषिक और सौत्रान्तिक ये दोनों बाह्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार करते हैं। दोनों में अन्तर इतना ही है कि वैभाषिक प्रत्यक्ष दिखने वाले बाह्य पदार्थों का अस्तित्व मानता है और सौत्रान्तिक विज्ञान से अनुमति बाह्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार करता है वैभाषिक के मत में आदि बाह्य पदार्थ प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय है।

योगाचार के मत में 'निरालम्ब विज्ञान' मात्र की ही सत्ता है, बाह्य पदार्थ स्वप्न में देखी जाने वाली वस्तुओं की भाँति मिथ्या है। माध्यमिक सबको शून्य ही मानता है। उसके मत में दीपशिखा की भाँति संस्कारवश क्षणिक विज्ञान की धारा ही बाह्य पदार्थों के रूप में प्रतीत होती है। जैसे दीपक की शिखा प्रतिक्षण मिट रही है, फिर भी एक धारा सी बनी रहने के कारण उसकी प्रतीत होती है, उसी प्रकार बाह्य पदार्थ भी प्रतिक्षण नष्ट हो रहे हैं।

वैभाषिक तथा सौत्रान्तिक मत को एक मानकर उसका निराकरण किया जाता है उन दोनों की मान्यता का स्वरूप इस प्रकार है - रूप विज्ञान, वेदना, संज्ञा तथा संस्कार - ये पाँच स्कन्ध है। पृथ्वी आदि चार भूत तथा भौतिक वस्तुएँ। शरीर, इन्द्रिय और विषय - ये रूप स्कन्ध कहलाते हैं। पार्थिव परमाणु रूप, रस और स्पर्श - इन चार गुणों से युक्त एवं कठोर स्वभाव वाले होते हैं वे ही जल के आकार में संगठित होते हैं। तेज के परमाणु रूप और स्पर्श गुण से युक्त एवं उष्ण स्वभाव वाले हैं, वे अग्नि के आकार में संगठित हो जाते हैं। वायु के परमाणु स्पर्श की योग्यता वाले एवं गतिशील होते है वे ही वायु रूप में संगठित होते हैं। फिर पृथ्वी आदि चार भूत शरीर, इन्द्रिय और विषय रूप में संगठित होते हैं।

इस तरह से चार प्रकार के क्षणिक परमाणु हैं जो भूत-भौतिक वर्ग ही रूप स्कन्ध एवं बाह्य समुदाय कहलाता है। 'विज्ञान स्कन्ध' कहते हैं। आभ्यन्तरिक विज्ञान के प्रवाह को। इसी में 'मैं' की प्रतीत होती है। यह घट ज्ञान, पट ज्ञान आदि के रूप में अविच्छिन्न धारा की भाँति स्थित है। इस को कर्ता, भोक्त और आत्मा कहते हैं। इसी से सारा लौकिक व्यवहार चलता है। सुख-दुःख आदि अनुभूति का नाम 'वेदनास्कन्ध' है। उपलक्षण से जो वस्तु की प्रतीत करायी जाती है, जैसे ध्वज से गृह की और दण्ड से पुरुष की, उसी का नाम 'संज्ञान स्कन्ध' है। राग, द्वेष, मोह, मद, मात्सर्य, भय शोक और विषाद आदि जो चित्त के धर्म है उन्ही को संस्कारस्कन्ध कहते हैं। विज्ञान आदि चार स्कन्ध चित्त चैत्तिक कहलाते हैं। विज्ञान स्कन्ध रूप चित्त का नाम ही आत्मा है, शेष तीन स्कन्ध 'चैत्ये' अथवा 'चैत्तिक' है। ये सब प्रकार के व्यवहारों का आश्रय बनकर अन्तः करण में संगठित होते हैं।

'इतरेतप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्।'

बौद्धशास्त्र में विज्ञान संतति के कुछ हेतु माने गये है, उनके नाम इस

प्रकार है - अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम, रूप, षडायनन स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव जाति, जरा, मरण शोक, परिदेवना, दुःख तथा दुर्मनस्ता आदि क्षणिक वस्तुओं में नित्यता और स्थिरता आदि का जो भ्रम है वही 'अविद्या' कहलाता है। यह अविद्या विषयों में रागादिरूप 'संस्कार' उत्पन्न करने में कारण लगती है। वह संस्कार गर्भस्थ शिशु में आलय 'विज्ञान' उत्पन्न करता है। उस आलय-विज्ञान से पृथ्वी आदि चार भूत होते है जो शरीर एवं समुदाय के कारण है। वही नाम का आश्रय होने से 'नाम' भी कहा गया है। वह नाम ही श्याम-गौर आदि रूप वाले शरीर का उत्पादक होता है। गर्भस्थ शरीर की जो कहल-बुद्उद आदि अवस्थाएँ है, उन्हीं को नाम तथा 'रूप' शब्द का वाच्य कहा गया है।

पृथ्वी आदि चार भूत, नाम, रूप, शरीर, विज्ञान और धातु - ये छः जिनके आश्रय हैं - उन इन्द्रियों के परस्पर सम्बन्ध का नाम 'स्पर्श' है। उससे सुख आदि की 'वेदना' (अनुभूति) होती है। उससे क्रमशः तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरावस्था, मृत्यु-शोक, परिवेदना तथा दुर्मनस्ता (मन की उद्विग्नता) आदि भी इसी प्रकार उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात पुनः अविद्याम आदि के क्रम से पूर्वोक्त सभी बातें प्रकट होती रहती है। यह घटीयन्त्र (रहट) की भांति निरन्तर चक्कर लगाते हैं, अतः यदि इस मान्यता को लेकर कहा जाय कि इन्ही से समुदाय की सिद्धि हो जाती है तो यह ठीक नहीं है क्योकि पूर्वोक्त अविद्या आदि में से जो पूर्ववर्ती है वह बाद में कहे हुए संस्कार आदि की उत्पत्ति मात्र में कारण होता है, संघात की उत्पत्ति में नही अतः उसकी सिद्धि असम्भव है।

'प्रति संख्य निरोध' - बौद्ध मतानुयायी मानते हैं अप्रतिसंख्यानिरोधा तथा आकाश - इन तीनों के अतिरिक्त समस्त वस्तुएँ क्षणिक हैं। दोनों निरोध और आकाश तो कोई वस्तु ही नही है, ये अभावमात्र है। निरोध और विनाशक बोध के होने से अभाव है ही, आकाश भी आवरण का अभाव मात्र ही है। इनमें से आकाश की अभावरूपता का निराकरण किया गया है।

'आकाशे चाविशेषात् 'शब्दगुण कमाकाशम्।'

पृथ्वी, जल आदि जितने भी भाव-पदार्थ देखे जाते हैं उन्हीं की भाँति आकाश भी भावरूप है। आकाश के भी सत्ता का सबको बोध होता है। पृथ्वी गन्ध का, जल, रस क तेज रूप का तथा वायु स्पर्श का आश्रय है, इसी प्रकार शब्द का भी कोई आश्रय होना चाहिए। आकाश ही उसका आश्रय है आकाश में शब्द का श्रवण होता है। यदि आकाश न हो तो शब्द का श्रवण ही नही हो सकता। प्रत्येक वस्तु के लिए आधार और अवकाश स्थान होना चाहिए। आकाश ही शेष चार भूतों का आधार है तथा वही सम्पूर्ण जगत् को अवकाश देता है। इससे भी आकाश की सत्ता प्रत्यक्ष है पक्षी आकाश में चलने के कारण ही खग या विहंग कहलाते हैं। कोई भी भाव पदार्थ अभाव में नहीं विचरण करता है।

श्रुति ने परमात्मा से आकाश की उत्पत्ति स्पष्ट शब्दों में स्वीकार की है - 'आत्मन आकाश सम्भूनः' इस प्रकार युक्ति तथा प्रमाण से भी आकाश की सत्ता सिद्ध है, कोई ऐसा विशेष कारण नहीं है, जिससे आकाश को भाव रूप न माना जा सके। अतः आकाश की अभाव रूपता किसी प्रकार सिद्ध न होने के कारण बौद्धों की मान्यता युक्तिसङ्गत नहीं है।

बौद्धमत की मान्यताओं पर जितना ही विचार किया जाता है, उतना ही उनकी प्रत्येक बात युक्तिविरुद्ध जा पड़ती है। बौद्धों की प्रत्येक मान्यता का युक्तियों से खण्डन हो जाता है, अतः वह कदापि उपादेय नही है। यहाँ सूत्रकार ने प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए माध्यमिक बौद्धों के सर्वशून्यवादका का भी खण्डन कर दिया - यह बात इसी के अंतर्गत समझ लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि क्षणिक वाद और विज्ञानवाद का जिन युक्तियों से खण्डन किया गया है, उन्ही के द्वारा सर्वशून्यवादिका का भी खण्डन हो गया, ऐसा मानना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- वेदान्तदर्शन
2- सांख्यकारिका
3- तर्कसंग्रह
4- तैत्तरीय उपनिषद्
5- बौद्ध दर्शन
6- योग-दर्शन

◈◈

ISSN : 2349-9273

गीता और परोपकार

डॉ. अनिल कुमार गुप्ता
प्रवक्ता – वाणिज्य विभाग,
बी. एन. एस. डी. कालेज,
कानपुर–208001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल :
anilg468@gmail.com

कविवर रहीम का प्रसिद्ध दोहा है–

यों रहीम सुख होत है उपकारी के संग।
बाँटनवारे को लगे ज्यों मेंहदी के रंग?

भविष्य की सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रति, प्रीति होनी बहुत आवश्यक है अर्थात् प्राणिमात्र को सुख मिले कोई दुःखी न रहे, सबका आदर–सत्कार हो, सबकी मान–बड़ाई हो, सबका कल्याण हो, सबको परमात्मा की प्राप्ति हो। ऐसा भाव होना बहुत आवश्यक है। ऐसा सर्वहितकारी भाव होने से संसार को अपनी तरफ खींचने का भाव मिट जाता है और अपने पास धन–सम्पत्ति, वैभव, स्थूल–सूक्ष्म कारण शरीर आदि जो सामग्री है, जो कि संसार से ही मिली हुई और संसार से भिन्न है, उसको प्राणिमात्र के हित में लगाने का भाव जाग्रत् हो जाता है। फिर प्राणियों की सेवा करने में, उनका आदर–सत्कार करने में, उनको सुख आराम पहुँचाने में, उनका हित करने में उस सामग्री का स्वतः सद्व्यय होने लग जाता है।

परोपकार से आशय–

प्रायः दूसरों की भलाई करने को ही परोपकार कहा जाता है। सेवा हि परमोधर्मः के सूत्र वाक्य से सेवा या परोपकार को श्रेष्ठ धर्म माना गया है वास्तव में जब हम दूसरों के भले के बारे में सोचते हैं और किसी की भलाई करते हैं तो वह हमारी ही भलाई होती है परोपकार के अंतर्गत दूसरों को कुछ देना, भोजन कराना या वस्त्र वितरण करना ही मात्र सम्मिलित नहीं है अपितु अपने माता पिता की सेवा, बुजुर्गों और गुरुओं का सम्मान किसी के प्रति राग द्वेष ना रखना सभी के प्रति प्रेमभाव रखना भी शामिल होता है। इसलिए कहा भी गया है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम?

अभिवादन (प्रणाम) करने वाले तथा नित्य वृद्ध पुरुषों की सेवा करने वाले पुरुष की आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति (बल)–इन चारों की वृद्धि होती है। परोपकार के सम्बन्ध में भारत के राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में लिखा है–

यह पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरें ।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।।

गीता और परोपकार–

मनुष्य अनादिकाल से अपने व्यक्तिगत सुख और हितमें तत्पर रहता आया है। अतः मेरे को सुख मिले, मेरा आदर हो, मेरी मान–बड़ाई हो, मेरे नाम की महिमा हो, मेरी मनचाही हो, मेरा हित हो, मेरा कल्याण हो, मेरी मुक्ति हो–इस तरह उसका संसार को अपनी तरफ ही आकर्शित करनें का स्वभाव पड़ा हुआ है। इस स्वभाव के कारण उसमें कामना, ममता, आसक्ति आदि की वृद्धि एवं दृढ़ता होती है, जब कि कल्याण कामना, ममता आदि से रहित होने से होता है। इस संबंध में भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में (2/71) ठीक ही कहा है–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति?

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर ममता रहित, अहंकार रहित और स्पृहा रहित हुआ विचरता है, वही शान्ति को प्राप्त होता है । कामनायें वस्तुतः जीवन की विडम्बना है। जीवन का दुःखद पहलू है– कामनायें। प्रतीत होता है कि कामनाओं से शान्ति मिल रही है, वस्तुतः बात विपरीत है। शान्ति तो पहले से ही थी, कामना करके अशान्ति उत्पन्न कर ली, मन स्वयं विक्षेपता की स्थिति में ला खड़ा किया, कामना पूर्ण होने पर तो वह विक्षेपता मिटी, स्वयं द्वारा उत्पन्न अशान्ति दूर हुई। इस तथ्य को स्वीकारो, इस पर गम्भीर चिन्तन करो और साथ ही इस सत्य पर भी कि क्या एक कामना पूर्ण हो जाने पर तत्सम्बन्धी और कामनायें भीतर उठकर पुनः मन को अशान्त नहीं कर देंगी?

गीता में परोपकार हेतु प्रेरणा बिन्दु–

(1) जगत के समस्त प्राणियों का हित– भारतीय संस्कृति का अनूठा उद्घोष वाक्य "वसुधैव कुटुम्बकम" सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार मानता है। गीता एक ऐसा सर्वमान्य ग्रंथ है जो जगत के समस्त चराचर प्राणियों के हित की कामना करता है। रामचरितमानस में महान संत तुलसीदास जी भी कहते हैं–

परिहत बस जिनके मन माहीं।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।

अर्थात् जिनके मन में परहित अथवा दूसरों की भलाई का जज्बा बना रहता है, उनके लिये संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जो उन्हें न मिल सके। दूसरों के जख्मों पर मरहम लगाने वाला, सच्चे मन से लोगों की सेवा करने वाला आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक तीनों प्रकार की व्याधियों से मुक्त होकर आनन्दपूर्वक जीवन ही नहीं व्यतीत करता बल्कि वह धर्म का भी सही अर्थों में पालन करता है और स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हुए यह लोक ही नहीं परलोक भी सँवार लेता है।

गीता (12/4) में भगवान श्रीकृष्ण सर्व भूत हिते रतः के सम्बन्ध में उद्घोषित करते हैं–

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।4।।

इन्द्रिय समुदाय को सम्यक् प्रकार से नियमित करके, सर्वत्र समबुद्धि वाले, भूतमात्र के हित में रत वे भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं।

सफलता के लिए आवश्यक गुण को बताते हुए भगवान कहते हैं कि साधक को अर्पण की भावना से सदैव यथाशक्तिभूतमात्र की सेवा में रत रहना चाहिए। जब तक मनुष्य इस शरीर को धारण किये जीवित रहता है, तब तक उसके लिये यह सर्वथा असम्भव है कि नित्य निरन्तर प्रत्येक समय अपने मन और बुद्धि को आत्मचिन्तन में ही स्थिर कर सके जगत के साथ उसे सामान्य व्यवहार करना ही होगा। इस प्रकार के व्यवहार में उसे निरन्तर अथक प्रयत्न करके प्राणी मात्र की सेवा करनी चाहिए। यह तो इस ज्ञान का स्वरूप ही है। भूतमात्र को प्रेम करना तो उसका धर्म ही है। सेवा धर्म के सम्बन्ध में अत्यन्त संवेदनशील प्रसंग देना यहाँ पर समीचीन होगा–

एक बुढ़िया थी। जो बेहद कमजोर और बीमार थी। रहती भी अकेली ही थी। उसके कन्धों में दर्द रहता था, लेकिन वह इतनी कमजोर थी कि खुद अपने हाथों से दवा लगाने में भी असमर्थ थी। कन्धों पर दवा लगवाने के लिये कभी किसी से मिन्नतें करती तो कभी किसी से। एक दिन बुढ़िया ने पास से गुजरने वाले एक युवक से कहा कि बेटा! जरा मेरे कन्धों पर ये दवा मल दे। भगवान तेरा भला करेगा। युवक ने कहा कि अम्मा। मेरे हाथों की उँगलियों में तो खुद दर्द रहता है। मैं कैसे तेरे कन्धों की मालिश करूं?

वृद्धा ने कहा कि बेटा! दवा मलने की जरूरत नहीं बस इस डिबिया में से थोड़ा मरहम अपनी उंगलियों से निकालकर मेरे कन्धों पर फैला दे। युवक अनिच्छा से डिबिया में थोड़ा–सा मरहम लेकर अपने एक हाथ की उंगलियों से बुढ़िया के कंधों पर लगा दिया। दवा लगाते ही बुढ़िया की बेचैनी कम होने लगी और वह इसके लिये उस युवक को आशीर्वाद देने लगी बेटा, भगवान तेरी उंगलियों को भी जल्दी ठीक कर दे। बुढ़िया के आशीर्वाद पर युवक अविश्वास से हँस दिया, लेकिन साथ ही उसने महसूस किया कि उसकी उंगलियों का दर्द भी गायब–सा होता जा रहा है।

वास्तव में बुढ़िया को मरहम लगाने के बाद युवक की उँगलियों पर कुछ मरहम लगा रह गया था। उसने दूसरे हाथ की उँगलियों से उसे पोंछने की कोशिश की तो मरहम उसके उस हाथ की उँगलियों पर भी लग गया यह उस मरहम का ही कमाल था, जिससे युवक के दोनों हाथों की उँगलियों का दर्द गायब–सा होता जा रहा था। अब तो युवक सुबह, दोपहर और शाम तीनों वक्त बूढी अम्मा के कन्धों पर मरहम लगाता और उसकी सेवा करता। कुछ ही दिनों में बुढ़िया पूरी तरह से ठीक हो गयी और साथ ही युवक के दोनों हाथों की उँगलियों भी दर्द से मुक्त होकर ठीक से काम करने लगी। तभी तो कहा गया है कि जो दूसरों के जख्मों पर मरहम लगाता है, उसके खुद के जख्मों को भरने में देर नहीं लगती।

"दूसरों के घाव पर मरहम लगाना" अब इस मुहावरे को भी देख लीजिये दूसरे के जख्मों पर मरहम लगाने का अर्थ है– किसी को सान्त्वना देना, किसी की पीड़ा को कम करना। जरूरी नहीं इसके लिये कोई दवा या मरहम ही लगाया जाय क्योंकि यह पीड़ा भौतिक ही नहीं मानसिक भी हो सकती है। पीड़ा जो भी हो, कष्टदायक होती है। यदि कोई किसी को किसी भी प्रकार की पीड़ा से मुक्त करता है तो पीड़ित को बड़ी राहत मिलती है। वह पीड़ा को समाप्त करने वाले के प्रति कृतज्ञता से भर उठता है और आशीर्वाद या दुआएँ देने लगता है।

(2) सात्विक दान की महत्ता–

गीता में परोपकार हेतु जिस दान के महत्व को बताया गया है, वह श्रेष्ठ, उद्देश्य और परिणाम में कुछ चाहने वाला न हो। महान देशभक्त और भारतीय संस्कृति के संवाहक महामना पंडित मदन मोहन मालवीय ने जब बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का कार्य कर रहे थे तो उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से कुछ ना कुछ दान लिया वे कहा करते थे–

एक पैसा मांगू नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के काज हित मोहि ना आवे लाज।।

गीता (17/20) में भगवान सात्विक दान की महत्ता का वर्णन करते हुए कहते हैं–

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्।।

दान देना कर्तव्य है। ऐसे भाव से जो दान देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

सब प्रकार की सामर्थ्य परमात्मा की दी हुई हैं। उसे अपना मानकर संग्रह करते रहना, अपने सुख ऐश्वर्य में ही उपयोग करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं। परमात्मा द्वारा दी गई सामर्थ्य का परमात्मा के बनाये जीवों के हित के लिए उन्हीं के नाम पर सदुपयोग करना मेरा कर्तव्य है–ऐसा भाव ही वास्तविक और सात्त्विक दान है। सामर्थ्य के सदुपयोग का नाम ही दान है! लेकिन उसमें भी गीता की इस अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रेरणा को विचार में रखना आवश्यक है। दान, देश, काल और पात्र को ध्यान में रखकर हो। जिस स्थान पर जिस समय, जिस व्यक्ति को जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति ही सर्वोत्तम दान है। दूसरा पक्ष यह भी है–किसी विशेष अवसर पर, विशेष तीर्थ अथवा पावन–पुण्य स्थल में योग्य पात्र को दिया गया दान भी सात्त्विक श्रेणी में ही आता है। जैसे ग्रहण काल के अवसर पर कुरुक्षेत्र तीर्थ में अधिकारी वेदपाठी, ब्राह्मणों अथवा किसी जरूरतमन्द व्यक्ति को उस समय की आवश्यकतानुसार दिया गया दान।

यह भी ध्यान रहे कि दान देकर बदले में कुछ लेने की भावना न हो। प्रभु ने मुझे दिया है, उसी का मानकर आगे दे रहा हूँ बस इतना भाव! यह नहीं कि मुझे इसके बदले क्या मिलेगा अथवा जिसने मेरे लिए कुछ उपकार किया है, मैं भी उसी के लिए करूँ–ऐसा नहीं।

मैडम ब्लैवट्स्की की परदुःखकातरता के सम्बन्ध में एक संवेदनशील प्रसंग देना प्रसंगिक होगा–

मैडम ब्लैवट्स्की का जन्म रूस के दक्षिण भाग में इकटरीनसलो नामक स्थान में सन् 1931 ई. में एक समृद्ध परिवार में हुआ था। उन्होंने थियोसॉफिकल समाज की स्थापना में अमित योगदान दिया था और लोगों में निर्मल अध्यात्मशक्ति के प्रति श्रद्धा जगायी।

उनके जीवन का एक मार्मिक प्रसंग है, जिससे उनके परहित–चिंतन पर प्रकाश पड़ता है। अपनी विचारधारा प्रचार के लिये वे अमेरिका के न्यूयॉर्क नगर में जा रही थीं। उन्होंने प्रथम श्रेणी का टिकट लिया था और हारवर में जहाज पर चढ़ने ही जा रही थी कि देखा, एक स्त्री अपने दो बच्चों को साथ लिये सिसक–सिसक कर रो रही है। ब्लैवट्स्की ने रोने का कारण पूछा।तो उसनें बताया कि बहन। मेरे पति ने मुझे अमेरिका बुलाने के लिये रुपये भेजे थे। जहाज के एक धोखेबाज एजेण्ट ने मुझे नकली टिकट देकर मेरे पैसे ठग लिये। मैंने उसको बहुत खोजा, पर यह दीखता ही नहीं। मेरे टिकट साधारण श्रेणी के थे। स्त्री ने अपनी विवशता प्रकट की। ब्लैवट्स्की का कोमल हृदय उसकी वेदना से द्रवित हो उठा। बहन! बस इतनी ही बात है? इसके लिये रोने–धोने से लाभ ही क्या है। करुणामयी ब्लैवट्स्की ने मुस्कुरा कर कहा। स्त्री को अपने बच्चों सहित पीछे–पीछे आने का संकेत किया। यह ब्लैवट्स्की की सद्भावना से आशान्वित हो उठी।

ब्लैवट्स्की जहाज के एजेण्ट के पास गयीं, उन्होंने अपना प्रथम श्रेणी का टिकट बदल दिया, उसके स्थान पर साधारण श्रेणी के चार टिकट ले लिये। आओ, बहन! जहाज चलने ही वाला है। हम शीघ्रता से अपने स्थान पर चलें। ब्लैवट्स्की के पीछे–पीछे स्त्री अपने दोनों बच्चे लेकर जहाजपर चढ़ गयी। ब्लैवट्स्की ने साधारण स्थान पर खड़ी होकर न्यूयॉर्क की यात्रा पूरी की।

(3) दान देना मात्र कर्म नहीं अपितु मानसिकता है–

दान देना केवल क्षमता पर निर्भर नहीं करता अपितु श्रद्धा भाव व मानसिकता पर आधारित होता है। सेवा एवं दान बड़े उच्च्य विचार के शब्द हैं। सेवा एवं दान के पीछे निःस्वार्थ भावना होनी आवश्यक है। सेवा एवं दान की

भावना निःस्वार्थ तभी होगी, जब से उसके पीछे न पद, न प्रतिष्ठा, न पैसा और न किसी प्रकार की सुख–सुविधा की आकांक्षा हो। इसको समझने के लिये महात्मा गांधी के कथन को उद्धृत करना उचित होगा।

एक दिन एक व्यक्ति महात्मा गाँधी के पास अपना दुखड़ा लेकर पहुँचा। उसने गाँधी जी से कहा– बापू यह दुनिया बड़ी बेईमान है। आप तो यह अच्छी तरह जानते हैं कि मैंने पचास हजार रुपये दान देकर धर्मशाला बनवायी थी, पर अब उन लोगों ने मुझे ही उसकी प्रबन्ध–समिति से हटा दिया है। धर्मशाला नहीं थी तो कोई नहीं था, पर अब उसपर अधिकार जताने वाले पचासों लोग खड़े हो गये हैं।

उस व्यक्ति की बात सुनकर बापू थोड़ा मुसकराये और फिर बोले–भाई! तुम्हें यह निराशा इसलिये हुई कि तुम दान का सही अर्थ नहीं समझ सके। वास्तव में किसी चीज को देकर कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा दान नहीं है। यह तो व्यापार है। तुम ने धर्मशाला के लिये दान तो दिया, लेकिन फिर व्यापारी की तरह उससे प्रतिदिन लाभ की उम्मीद करने लगे। वह व्यक्ति चुपचाप बिना कुछ और बोले वहाँ से चलता बना। उसे दान और व्यापार का अन्तर समझ में आ गया।

इस सम्बन्ध में गीता (16/1) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्।।

श्री भगवान बोले– भय का सर्वथा अभाव, अन्तःकरण की पूर्ण निर्मलता, तत्त्व ज्ञान के लिए ध्यान योग में दृढ़ स्थिति सत्विक दान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, कर्तव्य पालन के लिए कष्ट सहना और शरीर मन तथा वाणी की सरलता।

ईश्वर द्वारा प्रदत्त सामर्थ्य को उसी के भाव से आवश्यकतानुसार उसके प्राणियों के लिए सदुपयोग करना ही दान है। प्रभु ने किसी भी प्रकार की सामर्थ्य दी है, उसे अपना मानकर अहं–ममता नहीं, परसेवा में लगाओ। सामर्थ्य का सदुपयोग दान है।

एक बार महात्मा गौतम बुद्ध ने उपदेश देते हुए कहा–देश में अकाल पड़ा है। लोग अन्न एवं वस्त्र के लिये तरस रहे हैं। उनकी सहायता करना हर मनुष्य का धर्म है। आप लोगों के शरीर पर जो वस्त्र हैं, उन्हें दान में दे दें। यह सुनकर कुछ लोग उठकर चले गये। कुछ लोग आपस में कहने लगे–यदि वस्त्र– इन्हें दे दें तो हम क्या पहनेंगे? उपदेश समाप्त हुआ। सभी श्रोता चले गये परंतु निरंजन बैठा रहा। वह सोचने लगा–मेरे शरीर पर एक वस्त्र है। अगर मैं अपना वस्त्र दे दूंगा तो नग्न होना पड़ेगा। फिर सोचा–मनुष्य बिना वस्त्र के पैदा होता है और बिना वस्त्र ही चला जाता है। साधु–संन्यासी भी बिना वस्त्र के रहते हैं। अतः निरंजन ने अपनी धोती दे दी। बुद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। निरंजन अपने घर की ओर चल पड़ा। वह खुशी चिल्लाकर कह रहा था–मैंने अपने आधे मन को जीत लिया।

तभी निरंजन ने देखा कि दूसरी ओर से महाराज प्रसेनजित चले आ रहे हैं। निरंजन की बात सुनकर उन्होंने उसे पास बुलाया और पूछा–तुमने अपने आधे मन को जीत लिया, इसका क्या अर्थ है?

निरंजन ने उत्तर दिया– "महाराज! महात्मा गौतम बुद्ध दुखियों के लिये दान में वस्त्र माँग रहे थे, यह सुनकर मेरे एक मन कहा कि शरीर पर पड़ी एकमात्र धोती दान में दे दी, परन्तु दूसरे मन ने कहा कि यदि दोगे तो पहनोगे क्या? आखिर दान देने वाले मन की विजय हुई। मैंने धोती दान में दे दी। अब मुझे गरीबो ंकी सेवा के सिवा कुछ नहीं चाहिये।

यह सुनकर राजा प्रसेनजित ने अपना राजकीय परिधान उतारकर निरंजन को प्रदान कर दिया। निरंजन उसे भी महात्मा बुद्ध चरणों में डाल दिया। बुद्ध ने निरंजन को हृदय से लगाते हुए कहा–जो दूसरों के लिये अपना सब कुछ दे देता है, उसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

(4) दानादि समर्पण भाव से करना–

परमार्थ के लिए जो भी हम यज्ञ तप दान आदि करते हैं उसमें समर्पण भाव का होना आवश्यक है प्रख्यात संत श्री भोले बाबा ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ वेदांत छनदावली में वृक्षों की परोपकारिता के सम्बन्ध में सुन्दर वर्णन किया है–

हो शत्रु अथवा मित्र सबको, एकसा ही जानते।
उपकार करना मुख्य अपना, धर्म ही तुम मानते।।
सर्वस्व अपना अर्प कर, सेवा हमारी कर रहे।
हिम पात गर्मी सह रहे, श्रम तुम हमारा हर रहे।।

इसी प्रकार गीता (9/27) में भगवान श्रीकृष्ण सेवा कार्य में समर्पण के सम्बन्ध में सुन्दर विचार प्रस्तुत करते हैं–

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! तू जो कुछ करता है, जो खाता है, जो हवन करता है जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर!

समर्पण भाव से कर्म गीता की अपने–आप में अनूठी–अनुपम प्रेरणा है। पत्ती, फूल,फल, जल पदार्थ के रूप में हैं, इन्हें भगवान को अर्पण करना सहज है, वस्तु,

भगवान के चरणों में रख दी, वैसे इस श्लोक में गीता–उपदेष्टा ने व्यावहारिक–पारमार्थिक समस्त क्रियाओं को ही सम्मिलित किया है। ऐसा कुछ भी न हो जो ईश्वर अर्पित बुद्धि से न हो, शारीरिक समस्त क्रिया और यज्ञ–दान तप की आध्यात्मिक क्रिया, सब कुछ और जो कुछ भी व्यावहारिक, व्यापारिक, पारिवारिक, सामाजिक दृष्टि से जो जो कर्म हैं वे सब।

समर्पण का यह भाव किसी भी दृष्टि से असम्भव नहीं, कठिन भी नहीं। कर्म करें, लेकिन उस कर्म से या कर्म फल से अहंता–ममता का सम्बन्ध न रखें। मैं कर ही नहीं रहा, तेरी कृपा से, तेरी शक्ति से हो रहा है, इसलिये– तेरा तुझको अर्पण। समर्पण वास्तविकता को स्वीकार करने की स्थिति हैं। यह सच्चाई ही तो है कि बिजली के उपकरणों के साथ विद्युत–धारा (करंट) है तो ही वे अपना कार्य कर रहे हैं। समर्पण अहंकार को वस्तु या क्रिया से अलग करने की अवस्था है। समर्पण जीवन का हल्कापन या निश्चिन्तता । कर्म करते हुए, खाते–पीते हुए तथा सब कुछ उपयोग करते हुए उसका भार प्रभु चरणों में छोड़ने की दिव्यता समर्पण हैं। समर्पण कृतज्ञता भी है। सब कुछ उसी का दिया है, उसके प्रति अर्पण करना है। लाये कुछ नहीं थे लेकर जायेंगे कुछ नहीं–यहीं मिला है, जिससे मिला है उसके प्रति कृतज्ञता ! इसीलिये हमारी भारतीय सनातन परम्पराओं में तेरा तुझको अर्पण, त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये का भाव है। भगवान को भोग लगाना भी इसी काव्य परम्परा का ही अंग है।

परोपकार के सम्बन्ध में लिखते हुए एक अनूठा प्रसंग स्मरण आ रहा है जो हमें रोमांचित कर देता है। एक बार एक राजा ने एक संत से प्रश्न किया यद्यपि आप एक महान संत हैं, फिर भी मैं आप से भी महान व्यक्ति से मिलना चाहता हूँ। संत ने एक क्षण राजा की ओर देखकर कहा राजन् हमें उठकर कहीं जाने की जरूरत नहीं। हम से महान सैकड़ों आदमी हमें अपने आस–पास ही देखने को मिल जाएंगे, केवल हमें उनकी ओर उस दृष्टि से देखना होगा। आप तो अभी जरा उस सौ साल की वृद्धा की ओर ही देख लीजिए, वह क्या कर रही है? राजा ने कहा वह तो कुछ देर पूर्व पौधे लगा रही थी, पौधों में पानी दे रही थी और अब वही एक कुदाल से कुआँ खोद रही है। मगर उसे इस उम्र में पेड़ लगाने, उन्हें सींचने और फिर कुआँ खोदने की क्या जरूरत है। जब तक वह पौधा वृक्ष बनेगा, फल देगा, तब तक वह स्वयं ही जीवित नहीं रहेगी। न तो वह उन वृक्षों के फल ही खा पाएगी, न ही उस कुएँ का पानी पी पाएगी। राजा ने यह संत से पूछा।

संत प्रवर बोले–राजन् आपने ठीक कहा, शरीर छोड़ने की इस उम्र में उसे यह सब करने की क्या जरूरत है ? पर राजन! जरूरत ही सब कुछ नहीं हुआ करती। जो दूसरों के लिए निर्लिप्त होकर अपना जीवन बलिदान करते हैं, वे ही वास्तव में महान हैं और ईश्वर स्वरूप हैं। औरों के लिए जीने और मरने वाले लोग जीवन और मरण की समस्त सीमाएँ लाँघकर अमर हो जाते हैं। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा ने भी कितना सुन्दर कहा है– औरों के हित जो जीता है, औरों के हित जो मरता है– उसका हर आँसू रामायण, प्रत्येक कर्म ही गीता है। इस प्रकरण से राजा को सचमुच एक नई जीवन–दृष्टि मिली। वे संतप्रवर का धन्यवाद करते हुए वहाँ से चल पड़े और उसी दिन से अपनी प्रजा के सुख, समृद्धि के लिए जी–जान से जुट गए।

(5) सत्कर्म से पवित्रता–

रामायण में दान देने को शुद्धता एवं पवित्रता का परिचायक कहा गया है इससे चार प्रमुख लाभ होते हैं।

- दान देने वाले व्यक्ति का धन पाने के प्रति मोह कम करता है।
- सेवा भाव बढ़ाता है।
- हृदय की विशालता।
- दूसरों के प्रति संवेदनशीलता पैदा करता है।

गीता (18/5) में भगवान श्रीकृष्ण यज्ञ तप दान आदि सब कर्मों के सन्दर्भ में कहते हैं–

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान और तपरूपी कर्म त्याग करने योग्य नहीं, उनको तो अवश्य करना ही चाहिए, क्योंकि यज्ञ, दान और तप–ये तीनों कर्म बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

यज्ञ, दान रूपी कर्म करते रहना चाहिए, उन्हें किसी भी अवस्था में छोड़ना उचित नहीं। यह पढ़कर कोई यह कहे कि हम सब कुछ छोड़ आये, संन्यासी या वानप्रस्थी बन गए, अब यह सब झंझट हम क्यों करें? हमें क्या आवश्यकता है। ये तीनों कर्म बुद्धिमान–मनीषी पुरुषों के भी अन्तःकरण को निर्मल करते हैं। अन्तःकरण निर्मल रहे– यह कल्याण मार्ग की सबसे मुख्य आवश्यकता है। व्यवहार काल में कहीं न कहीं मल (संस्कारों) के रूप में कर्म दोष का प्रभाव हो जाता है। यज्ञ, दान, तप के कर्म उससे मुक्ति दिलवाते हैं। भीतर संचित मल ऐसे कर्मों से धुलता है। वैसे भी शरीर निष्क्रिय न हो जाये। निकम्मापन–निठल्लापन किसी भी दृष्टि से, अध्यात्म का लक्षण नहीं है। कुछ सकारात्मक, शुद्ध, सात्त्विक कर्म हों, ताकि नकारात्मक,

अशुद्ध, व अशुभ, राजस–तामस का प्रभाव साथ–साथ समाप्त हो। यज्ञ के रूप में स्वार्थ रहित परहित के कर्म हों, दान के रूप में मिली हुई सामर्थ्य का सदुपयोग हो तथा तप के रूप में शरीर की सुविधाओं से अलग परमार्थ साधन के लिए कष्ट सहन करने से भी हिचकिचाहट न हो! इस सबका परिणाम भी अन्ततोगत्वा अंतःकरण की निर्मलता है।

परोपकार से सम्बन्धित अमेरिका की एक सच्ची घटना हमें प्रेरणा देती है–

अमेरिका की एक नदी का व्यस्त किनारा ! जागृति और हलका आवागमन ! प्रातःकाल का समय है। नदी–किनारे लोग स्नान के लिये आ–जा रहे हैं। कुछ सैर करते–करते किनारे पर बैठकर जल का आनन्द ले रहे हैं और उठती हुई लहरों तथा उछलती हुई मछलियों की किलोलें देख रहे हैं। वातावरण शान्ति है, हवा में मस्ती और ताजगी।

बचाओ, अरे कोई मेरे बच्चे को बचाओ। एक ओर से कातर स्त्री का करुण स्वर सुनाई पड़ा। सबका ध्यान उधर खिंच गया। कोई माता रो–रोकर नदी की ओर इशारा कर रही थी। दुर्भाग्य से उसका बच्चा नदी में गिर गया था और जल की सतह पर अब डूबा, अब डूबा कहकर रहा था। बचाओ, हाय, वह डूबने को है! रक्षा करो, बचाओ। तभी एक अठारह–उन्नीस वर्ष का युवक भीड़ चीरता हुआ वायु वेग से नदी तक पहुँचा और धम्म से बालक के पास निशाना बाँधकर कूद पड़ा। सब आश्चर्य में थे। यह क्या हुआ? उसे बच्चे को ढूँढ़ते–ढूँढ़ते काफी विलम्ब हो गया है। सब के उत्सुक नेत्र घटनास्थल पर युवक को खोज रहे हैं। वह जल के भीतर से नहीं निकला है। कहाँ गया वह? कहीं उसकी जल–समाधि तो नहीं हो गयी? ऐसा दीखता है कि उसके लौटने की कोई आशा नहीं है। शायद वह सदा–सर्वदा के लिये दुनिया से चला गया। किन्तु कुछ क्षण के बाद!

उसके सिर के काले बाल जल के ऊपर थोड़े–थोड़े नजर आते हैं। लीजिये, वह अब सतह के ऊपर तैरता दिखायी दे रहा है। पाँव हिलते हुए स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वह किनारे की ओर आ रहा है। अरे! उसके हाथों में मूर्छित बच्चा भी है। थोड़ी ही देर बाद सब देखते हैं कि युवक मूर्छित बच्चे को उसकी रोती हुई माँ के सामने रख रहा है।

दूसरों के लिये अपने प्राणों को न्योछावर करने वाले इस युवक को क्या आप जानते हैं? वह था अमेरिका–जैसे विशाल देश का भूतपूर्व प्रेसिडेंट जार्ज वाशिंगटन! परोपकारी और दूसरों के दुःख–दर्द दूर करने वाले व्यक्तियों की रक्षा स्वयं परमात्मा करता है। अतः निश्चिन्त होकर सदा–सर्वदा लोक–कल्याणके उदात्त कार्यों में संलग्न रहना चाहिये। इसी में मनुष्य का बड़प्पन निहित है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि गीता में परोपकार की महत्ता बताई गई है गीता वास्तव में सभी ग्रंथों का सार है इसलिए कहा गया है–

चार वेद छह शास्त्र में बात मिलती है दोय।
दुख दीन्है दुख होत है सुख दीन्है सुख होय।।

दुनिया के सभी लोग कष्ट मुक्त हो जाए ऐसी भावावस्था में व्यक्ति के शरीर में स्थित. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से लाभदायक हार्मोन का उत्सर्जन प्रारम्भ हो जाता है, जो उसे रोगों से बचाने तथा रोगग्रस्त होने पर शीघ्र रोगमुक्त करने में सहायक होते हैं। किसी की मदद करने, कोई अच्छा काम करने अथवा निष्काम भाव से कोई समाजोपयोगी कार्य करने से समाज व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ती है और इसके लिये लोग उस व्यक्ति की प्रशंसा भी करते हैं, जिससे व्यक्ति को असीम परितुष्टि का अहसास होता है। यही असीम–परितुष्टि का अहसास व्यक्ति के शरीरमें उपयोगी हार्मोन सेरोटोनिन अर्थात् हैप्पी हार्मोन के स्तर को बढ़ा देता है, जो उसके स्वास्थ्य और रोग–मुक्ति के लिए बेहद उपयोगी होता है। दूसरों की मदद करके भी हम अपने लिए रोग मुक्ति, अच्छा स्वास्थ्य और दीर्घायु सुनिश्चित कर सकते हैं इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार वेदों और पुराणों में परोपकार की महत्ता के सम्बन्ध में सत्य ही कहा गया है–

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थ मिदं शरीरम् ।।

परोपकार के लिए वृक्ष फल देते हैं, नदियाँ परोपकार के लिए ही बहती हैं और गाय परोपकार के लिए दूध देती हैं, (अर्थात्) यह शरीर भी परोपकार के लिए ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– अखण्ड ज्योति
2– कल्याण बोधकथा विशेषांक
3– गीता दर्पण
4– गीता प्रेरणा– स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज
5– चिन्मय गीता– स्वामी चिन्मयानन्द जी महाराज
6– कल्याण सेवा अंक
7 – वेदान्त छन्दावली– संत श्री भोले बाबा

◈◈

ISSN : 2349-9273

जयशंकर प्रसाद की रचनाओं का आलोचनात्मक विमर्श

- ज्योती सिंह
शोध छात्रा - हिन्दी विभाग,
तिलकधारी (पी. जी.) कालेज, जौनपुर
(उत्तर प्रदेश)

ई-मेल :
jyotisingh01011990@gmail.com

सारांश

प्रसाद के नाटकों के गीत भी नाटकों में प्रयुक्त होने वाले संवादों की तरह बेहद पुरअसर होते थे। दिल में कहीं गहरे घर कर जाने वाले, उसमें उमंग और उल्लास जगाने वाले। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्री तुंग-श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती' जैसे गीत इन्हीं खूबियों के चलते इतने वर्षों बाद भी उतने ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। देशभक्ति में पगी ऐसी कालजयी रचनाएं तब तक सम्भव नहीं हैं जब तक रचनाकार का मन खुद देशमय न हो गया हो। यह एक संन्यासी मन की अन्तिम प्रतिबद्धता थी। प्रसाद के नाटकों पर आलोचकों का एक आरोप यह रहा कि इन्हें अभिनीत करना आसान नहीं है। लेकिन इसका सबसे बड़ा जवाब यही है कि ये नाटक दशकों से मंचित हो रहे हैं और यह क्रम आज तक जारी है। प्रसाद के नाटकों पर आलोचकों का एक आरोप यह रहा है कि इन्हें अभिनीत करना आसान नहीं है। लेकिन इसका सबसे बड़ा जवाब यही है कि ये नाटक दशकों से मंचित हो रहे हैं और यह क्रम आज तक जारी है।

जयशंकर प्रसाद (जन्म 30 जनवरी, 1889 से लेकर मृत्यु 14 नवम्बर, 1937 तक) प्रसिद्ध छायावादी हिन्दी कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा निबन्धकार भी थे। वे हिन्दी के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तम्भों में से एक हैं। उन्होंने हिन्दी काव्य में एक तरह से छायावाद की स्थापना की, जिसके द्वारा खड़ी बोली के काव्य में न केवल कमनीय माधुर्य की रससिद्ध धारा प्रवाहित हुई, बल्कि जीवन के सूक्ष्म एवं व्यापक आयामों के चित्रण की शक्ति भी सिंचित हुई और कामायनी तक पहुंचकर वह काव्य प्रेरक शक्ति काव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित हो गया। बाद के प्रगतिशील एवं नई कविता दोनों धाराओं के प्रमुख आलोचकों ने उसकी इस शक्तिमत्ता को स्वीकृति दी। इसका एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी हुआ कि खड़ी बोली हिन्दी काव्य की निर्विवाद सिद्ध भाषा बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में इनके कृतित्व का गौरव अक्षुण्ण है। वे एक युग प्रवर्तक लेखक थे, जिन्होंने एक ही साथ कविता, नाटक, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में हिन्दी को गौरवान्वित होने योग्य कृतियाँ दीं। कवि के रूप में वे निराला, पन्त, महादेवी के साथ छायावाद के प्रमुख स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठिति हुए हैं; नाटक लेखन में भारतेन्दु के बाद वे एक अलग धारा बहाने वाले युग प्रवर्तक नाटककार रहे हैं, जिनके नाटक आज भी पाठक न केवल चाव से पढ़ते हैं, बल्कि उनकी अर्थगर्भिता तथा रंचमंचीय प्रासंगिकता भी दिनानुदिन बढ़ती ही गयी है। इस दृष्टि से उनकी महत्ता पहचानने एवं स्थापित करने में वीरेन्द्र नारायण, शान्ता गाँधी, सत्येन्द्र तनेजा एवं अब कई दृष्टियों से सबसे बढ़कर महेश आनन्द का प्रशंसनीय ऐतिहासिक योगदान रहा है। इसके अलावा कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने कई यादगार कृतियाँ दीं। विविध रचनाओं के माध्यम से मानवीय करुणा और भारतीय मनीषा के अनेकानेक गौरवपूर्ण पक्षों का उद्‍घाटन

48 वर्षों के छोटे से जीवन में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास और आलोचनात्मक निबन्ध आदि विभिन्न विधाओं में रचनाएँ कीं।[1]

जयशंकर प्रसाद की प्रारम्भिक शिक्षा काशी के क्वींस कालेज में हुई और शेष शिक्षा का घर पर ही प्रबन्ध किया गया। जहाँ उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू तथा फारसी भाषा का अध्ययन किया। दीनबन्धु ब्रह्मचारी जयशंकर प्रसाद के संस्कृत के प्राध्यापक थे। घर में साहित्य और कला के उन्नत वातावरण में उनके व्यक्तित्व को प्रारम्भ से ही विशेष रूप से प्रभावित किया। साहित्यिक लेखन के प्रति उनकी पचपन से ही रुचि थी और किशोर अवस्था से ही उन्होंने वेद, इतिहास तथा पुराण शास्त्र का अत्यन्त गम्भीर अध्ययन करना शुरू कर दिया था। वे नागरी प्रचारिणी सभा के उपाध्यक्ष भी रहे थे।[2]

आपके पिता बाबू देवी प्रसाद काशी में कलाकारों का आदर करने के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे, लेकिन किशोर आयु में ही उनकी माता और बड़े भाई का देहान्त हो गया था, इसलिए किशोर अवस्था से लेकर वयस्क आयु तक प्रसाद जी का जीवन कठिनाइयों से घिरा रहा। उनके पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन में भी निजी समस्यायें लगातार बनी रहीं, जिसका असर उनके साहित्यिक लेखन की शैली पर भी पड़ा।[3] इसलिए दुःख, वैराग, मार्मिक स्थितियाँ, क्रोध, आवेग, भावुकता, वेदना और त्याग आदि मानवीय भावनायें उनके लेखन की पृष्ठभूमि में झलकती थीं। वे एक उत्कृष्ट शैली के लेखक थे, लेकिन क्षय रोग से ग्रस्तता के कारण 15 नवम्बर, 1937 को काशी में 47 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गयी।[4]

कथा के क्षेत्र में प्रसाद जी आधुनिक ढंग की कहानियों के लेखक माने जाते हैं। साहित्य की लगभग सभी विधाओं में उन्होंने अपनी लेखनी की प्रवीणता और कौशल का परिचय दिया है। जीवन की विभिन्न बाधाओं से व्यथित प्रसाद जी ने 'सावन पंचक' नामक कविता लिखी जो 1906 में भारतेन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई। वर्ष 1906 में 'इन्दु' पत्रिका में उनकी पहली कहानी 'ग्राम' प्रकाशित हुई। उनका पहला कहानी संग्रह 'छाया' 1912 में प्रकाशित हुआ, जिसमें कुल 11 कहानियाँ हैं। इसके अतिरिक्त उनके 6 कहानी संग्रह भी आये, जिनमें 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' प्रमुख कहानी संग्रह हैं।[5] उन्होंने कुल 72 कहानियाँ लिखीं हैं।[6]

देशप्रेम और देशचिन्ता प्रसाद की नाटकों के मूल में हमेशा रही। उनके नाटकों की ही अगर बात की जाये तो 'कामना' और 'घूँट' को छोड़कर सभी नाटकों (इनमें ध्रुवस्वामिनी, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त आदि काफी लोकप्रिय हैं) के केन्द्र में देशप्रेम ही था। प्रसाद ने अपने पूरे जीवनकाल में तेरह नाटक लिखे, जिनमें से आठ ऐतिहासिक थे और तीन पौराणिक नाटकों की विषयवस्तु के रूप में उन्होंने महाभारत की कथाओं से लेकर हर्षवर्धन तक के काल को समेटा। प्रसाद ने पारसी रंगमंच के प्रभाव को ठुकराते हुए युवाओं के लिए अपने देश के अतीत से जुड़ी कथाओं को सामने रखा। यहाँ न सिर्फ अतीत था बल्कि आज उस अतीत से ली जाने वाली प्रेरणाएं भी शामिल थीं।

प्रसाद के नाटकों के गीत भी नाटकों में प्रयुक्त होने वाले संवादों की तरह बेहद पुरअसर होते थे। दिल में कहीं गहरे घर कर जाने वाले, उसमें उमंग और उल्लास जगाने वाले। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमाद्री तुंग-श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती' जैसे गीत इन्हीं खूबियों के चलते इतने वर्षों बाद भी उतने ही प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। देशभक्ति में पगी ऐसी कालजयी रचनाएँ तब तक सम्भव नहीं हैं जब तक रचनाकार का मन खुद देशमय न हो गया हो। यह एक संन्यासी मन की अन्तिम प्रतिबद्धता थी। प्रसाद के नाटकों पर आलोचकों का एक आरोप यह रहा कि इन्हें अभिनीत करना आसान नहीं है। लेकिन इसका सबसे बड़ा जवाब यही है कि ये नाटक दशकों से मंचित हो रहे हैं और यह क्रम आज तक जारी है। प्रसाद के नाटकों पर आलोचकों का एक आरोप यह रहा है कि इन्हें अभिनीत करना आसान नहीं है। लेकिन इसका सबसे बड़ा जवाब यही है कि ये नाटक दशकों से मंचित हो रहे हैं और यह क्रम आज तक जारी है।

सीमित अर्थों में राष्ट्र और राष्ट्रवाद को आंकने वाले लोगों के लिए प्रसाद जी एक राष्ट्रवादी लेखक हो सकते हैं, प्रबल राष्ट्रवादी भी। लेकिन जिस दौर में वे थे उस समय राष्ट्रवाद उस प्रचलित अर्थ में नहीं था, जैसा कि आज है। धर्म को भी आज जितने संकीर्ण नजरिये से नहीं देखा जाता था। याद रखने वाली बात है कि उसी दौर में 'गणेश-पूजा' और तमाम धार्मिक उत्सव लोगों को एकत्रित होने, संगठित होने और जागरुक होने के साथ-साथ देश के स्वतंत्रता हासिल करने के अभियान को गति देने का कारक होते थे। छायावाद के चार स्तम्भों में से एक प्रमुख स्तम्भ जयशंकर प्रसाद अपने कहानी लेखन और उपन्यास लेखन में नाटक लेखन से ज्यादा आधुनिक थे। एक कथाकार के रूप में प्रेमचन्द्र के समकालीन होते हुए भी उन्होंने प्रेमचन्द्र की तरह एकरेखीय और आदर्शवादी कहानियाँ नहीं लिखीं। उनकी कहानियों में द्वन्द्व, भावनाएं, मनोविज्ञान

और मन के भीतर के विचलन सब आकार लेते थे। यह अलग बात है कि कहानीकार के रूप में उन्हें वह उच्च प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई। यह त्रासदी हर उस बड़े रचनाकार की है जो एक साथ कई विधाओं में काम करता हो। होता यह है कि एक विधा की प्रसिद्धि आपकी दूसरे विधाओं की प्रतिभा को ढांप लेती है। 72 कहानियाँ लिखने वाले प्रसाद जी की पहली कहानी 'ग्राम' 1912 में 'इन्दु' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। आकाशदीप, गुंडा, पुरस्कार और स्वर्ग के खण्डहर प्रसाद जी की प्रसिद्ध प्रेम कहानियाँ हैं, जिनमें वे भावनाओं की सघनता से गुजरते हुए यथार्थ और समस्याओं की तरफ मुड़ते हुए दिखते हैं।

उपन्यासों की उनकी तिकड़ी (कंकाल, तितली और इरावती) में 'इरावती' वह उपन्यास है जो उनकी मृत्यु के वक्त अधूरा ही था। मात्र 48 साल की उम्र में (मृत्यु का दिन 14 जनवरी, 1937) इस लेखक ने जो हिन्दी साहित्य को सौंपा, वह अतुलनीय ही नहीं है, अभी पूरी तरह से उसका मूल्यांकन तक नहीं हो पाया। इसे एक लेखक के जीवन की घनघोरतम त्रासदी को माना जा सकता है। इसकी मूल पंक्तियाँ 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' स्त्री की स्थिति, उसके संघर्ष और उसे आदर देने की कोशिश में आज भी रूपक की तरह इस्तेमाल होती है। इस रचना को कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने 'हिन्दी का ताजमहल' कहकर मान और गौरव दिया हगै और जाहिर है कि यह दुर्लभ सम्मान सिर्फ रचना ही नहीं बल्कि उसके रचनाकार के हिस्से में भी वही है।

प्रसाद जी ने अपनी कथाओं में भारतीय अतीत का वास्तविक वातावरण प्रस्तुत करने की क्षमता हासिल की थी, जिसके द्वारा उन्होंने आदि से लेकर अन्त तक भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों की रक्षा के मूल्यों को मौलिक ढंग से स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने 'आँधी', 'इन्द्रजाल', 'आकाशदीप', 'अनबोला', 'अपराधी', 'अमिट स्मृति', 'अशोक', 'उर्वशी', 'उस पार का योगी', 'करुणा की विजय', 'कला', 'कलावती की शिक्षा', 'खण्डहर की लिपि', 'ग्राम', 'ग्राम गीत', 'गुंडा', 'गुलाम', 'गुदड़ सांई', 'घीसू', 'चक्रवर्ती का स्तम्भ', 'चंदा', 'चित्र मन्दिर', 'चित्र वाले पत्थर', 'चित्तौड़ उद्धार', 'चूड़ी वाली', 'छोटा जादूगर', 'जहाँआरा', 'ज्योतिष्मती', 'तानसेन', 'दासी', 'दुखिया', 'देवदासी', 'देवरथ', 'नीरा', 'नूरी', 'पत्थर की पुकार', 'पंचायत', 'प्रतिध्वनि', 'प्रतिमा', 'प्रलय', 'बंजारा', 'बेड़ी', 'ममता', 'रसिया बालम', 'रमला', 'शरणागत', 'संदेह', 'पुरस्कार', 'सालवती', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'सुनहला सांप', 'हिमालय का प्रतीक', 'बिसाती', 'मधुआ', 'विराम चिह्न', 'भिखारिन' और 'गौरा गाय' आदि। उनकी कहानियों में अतीत का गौरव, नारी के प्रति श्रद्धा, कल्पना की ऊँची उड़ान, भावुकता तथा काव्यात्मक भाषा एक साथ देखने को मिलती है।[7]

प्रसाद जी ने 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' नामक तीन उपन्यास भी लिखे हैं। उन्होंने 'कंकाल' में नागरिक सभ्यता का अन्तर यथार्थवादी दृश्य प्रस्तुत किया है। तो वहीं उनके उपन्यास 'तितली' में ग्रामीण जीवन के सुधार के संकेत दिखाई देते हैं। इन उपन्यासों की रचना द्वारा प्रसाद जी ने हिन्दी में यथार्थवादी उपन्यास लेखन के क्षेत्र की प्रतिष्ठा को नये ढंग से स्थापित किया। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया 'इरावती' उनका अधूरा उपन्यास है जो रोमांस के सूक्ष्म कोमल भाव की उपलब्धता के कारण ऐतिहासिक रोमांस के उपन्यासों में विशेष सम्मान का पात्र माना जाता है। इन्होंने अपने उपन्यासों में गाँव, नगर, मानव, प्रकृति और जीवन का मार्मिक चित्रण किया है।

वर्ष 1918 में उनका पहला काव्य संग्रह 'चित्राधार' प्रकाशित हुआ। 'कानन कुसुम', 'महाराणा का महत्व', 'झरना', 'आँसू', 'लहर', 'कामायनी' और 'प्रेम पथिक' उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं।[8] इन काव्य रचनाओं में 'कामायनी' को आधुनिक काल का सबसे महत्वपूर्ण महाकाव्य एवं इस दौर का सबसे अन्तिम सफल महाकाव्य तक माना जाता है। इसे छायावाद का 'उपनिषद्' भी कहा जाता है।[9]

प्रसाद जी ने ऐतिहासिक, पौराणिक और भावात्मक पक्षों पर आधारित कुल 13 नाटकों की रचना की। ये नाटक 'स्कन्ध गुप्त', 'चन्द्र गुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'जन्मेजय का नाग यज्ञ', 'राज्यश्री', 'अजातशत्रु', 'विशाख', 'कामना', 'एक घूँट', 'करुणालय', 'कल्याणी परिणय', 'अग्निमित्र', 'प्रायश्चित' और 'सज्जन' हैं। केवल 'कामना' और 'एक घूँट' नाटकों को छोड़कर शेष नाटक मूल रूप से ऐतिहासिक किरदारों पर आधारित हैं।[10] इनमें महाभारत से लेकर हर्ष के समय तक के प्राचीन भारत के इतिहास से किरदार चुने गये हैं। जयशंकर प्रसाद ने अपने दौर के पारसी रंगमंच (थियेटर) की परम्परा को अस्वीकारते हुए भारत के प्राचीन गौरवमय अतीत के महत्वपूर्ण चरित्रों को सामने लाते हुए यादगार नाटकों की रचना की।[11]

उनके नाटक स्कन्द गुप्त और चन्द्र गुप्त आदि में भारत में सुनहरे अतीत को सामने रखकर एक प्रकार से उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्र के नाम पर देश को जागृत करने का प्रयास किया। उनके नाटकों में देशप्रेम का स्वर अत्यन्त सुन्दर है और

इन नाटकों में कई अत्यन्त मोहक और प्रसिद्ध गीत भी मिलते हैं। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' और 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसे उनके नाटकों के सुप्रसिद्ध गीत रहे हैं।[12]

प्रसाद जी ने प्रारम्भ में समय-समय पर 'इन्दु' पत्रिका में विविध विषयों पर सामान्य निबन्ध भी लिखे। बाद में उन्होंने शोधपरक ऐतिहासिक निबन्ध यथा- अथः सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, प्राचीन आर्यवर्त और उसका प्रथम सम्राट् आदिः भी लिखे हैं, जो उनकी साहित्यिक विधाओं की विश्लेषणात्मक वैज्ञानिक भूमिका प्रस्तुत करते हैं, जिसमें उनके द्वारा किरदारों की भूमिकाओं के साथ न्याय करने का पूरा प्रयास दिखता है। उनकी रचनायें बिचारों की गहराई, भावों की प्रबलता तथा चिन्तन और मनन की गम्भीरता का प्रत्यक्ष प्रमाण देती हैं।

आपने साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से करुणा, वात्सल्य के अतिरिक्त पारिवारिक सम्बन्धों की गहराई तक पहुँचने का प्रयास प्रसाद जी की रचनाओं में बखूबी मिलता है। शौर्य और वीरता की भी झलक उनकी कहानियों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। काव्य, नाटक, कथा-साहित्य, आलोचना, दर्शन, इतिहास सभी क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा अद्वितीय रही है। 'कामायनी' जैसे महाकाव्य, चन्द्र गुप्त, स्कन्द गुप्त, अजातशत्रु जैसे नाटक, कंकाल, तितली जैसे उपन्यास तथा अनेक विशिष्ट कहानियाँ उनके रचनात्मक दृष्टिकोण को सार्थक करती हैं। उनकी रचनाओं में से कई नाटक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर इस प्रकार से आधारित रहे कि जिनके जरिए भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना जगाने की भरपूर कोशिश की गयी। प्रसाद जी के नाटकों की भाषा संस्कृतनिष्ठ रही है और इसमें संस्कृत के भारी भरकम शब्दों की बहुलता दिखाई दी। फिर भी सामाजिक सन्दर्भों में भाषा की परिष्कृत विधि के बावजूद उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज पर गहरा प्रभाव डाला। उनकी रचनाओं के कई पात्रों के संवादो में दर्शनशास्त्र की प्रस्तुति इस प्रकार झलकती मिलती है जिससे समाज को आदर्शवादी सीख देने का प्रयास किया गया हो। मनुष्य जीवन की समस्याओं और मन की उलझनों को भी प्रसाद जी अपनी रचनाओं के माध्यम से बखूबी बाहर लेकर आये।

बनारस की पारिवारिक पृष्ठभूमि से सम्बन्ध रखने वाले जयशंकर प्रसाद जी की साहित्यिक रचनाओं पर उनके शहर का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। एक जगह थमकर खड़े बनारस शहर के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवाहमान की विशेषताओं का उनके लेखन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं लगती। जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद बनारस में पैदा हुआ दूसरे उच्चकोटि के ऐसे साहित्यकार हैं जो पूरे हिन्दी भाषी भारत (उत्तर भारत) में सबसे जाना पहचाना नाम है। भारतेन्दु जी की तरह उन्होंने भी साहित्य की विभिन्न विधाओं को एक साथ तराशा और उन्हें नये आयाम दिये। इन दोनों महान रचनाकारों की रचना क्षेत्र जैसे- नाटक, कहानी और कविता लेखन में केवल यह भिन्नता रही है कि भारतेन्दु की तरह पत्रकारिक लेखन तो उन्होंने नहीं किया लेकिन देश प्रेम और देश चिन्ता प्रसाद जी के नाटकों के मूलभूत सुधार रहे। उनके नाटकों की ही अगर बात की जाये तो कामना और घूँट को छोड़कर सभी लोकप्रिय नाटक जैसे- ध्रुवस्वामिनी, चन्द्र गुप्त, स्कन्द गुप्त आदि के केन्द्र में देशप्रेम ही था। जिनमें अतीत से ली जाने वाली प्रेरणाओं का मुख्य पहलू शामिल था।

जयशंकर प्रसाद को कविता करने की प्रेरणा अपने घर-मोहल्ले के विद्वानों की संगत से मिली। हिन्दी साहित्य में प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी रहे। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास यानी रचना की सभी विधाओं में वह सिद्धहस्त थे। उनकी साहित्यिक सफलता का निष्कर्ष इतना भर है कि 'छायावाद' के चार उन्नायकों में एक रहे। भाषा शैली और शब्द-विन्यास के सृजन में उन्हें ही सर्वाधिक संघर्ष करना पड़ा। उनकी कहानियों का अपना पृथक शिल्प रहा है। पात्रों के चित्र-चित्रण का, भाषा-सौष्ठव का, वाक्य-गठन की सर्वथा निजी पहचान हैं। उनके नाटकों में भी इस प्रकार के अभिनव और श्लाघ्य प्रयोग मिलते हैं। अभिनेयता को दृष्टि में देखकर उनकी आलोचनाएँ भी हुई। उनका कहना था कि रंगमंच नाटक के अनुकूल होना चाहिए, न कि नाटक रंगमंच के अनुकूल। 'चित्राधार' उनका पहला संग्रह है। उसका प्रथम संस्करण सन् 1918 में प्रकाशित हुआ। इसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली में कविता, कहानी, नाटक, निबन्धों का संकलन किया गया।

वर्ष 1928 में इसका दूसरा संस्करण आया। 'चित्राधार' की कविताओं को दो प्रमुख भागों में विभक्त किया जाता है। एक खण्ड उन आख्यानक कविताओं अथवा कथा काव्यों का है, जिनमें प्रबन्धात्मकता है। अयोध्या का उद्धार, वनमिलन, और प्रेमराज्य तीन कथाकाव्य इसमें संग्रहित है। 'अयोध्या का उद्धार' में वन द्वारा अयोध्या को पुनः बसाने की कथा है। इसकी प्रेरणा कालिदास का 'रघुवंश' है। 'वनमिलन' में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का प्रेरणा है। 'प्रेमराज्य' की कथा

ऐतिहासिक है। 'कानन कुसुम' प्रसाद की खड़ी बोली की कविताओं का पहला संग्रह रहा। 'कामायनी' महाकाव्य को उनका अक्षय कीर्ति स्तम्भ कहा जाता है। भाषा, शैली और विषय तीनों ही की दृष्टि से यह विश्व-साहित्य का अद्वितीय ग्रंथ है।

'कामायनी' में प्रसाद जी ने प्रतीकात्मक पात्रों के द्वारा मानव के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रस्तुत किया है मानव जीवन में श्रद्धा और बुद्धि के समन्वित जीवन-दर्शन को प्रतिष्ठा प्रदान की है।[13] इसके अलावा 'आँसू' उनके मर्मस्पर्शी वियोगपरक उद्धारों की काव्य-कृति है। 'लहर', मुक्तकों का संग्रह है। 'झरना' उनकी छायावादी कविताओं की कृति है। 'कानन कुसुम' में उन्होंने अनुभूति और अभिव्यक्ति की नयी दिशाएँ खोजने के प्रयत्न किए हैं। सन् 1909 में 'प्रेम पथिक' का ब्रजभाषा स्वरूप सबसे पहले 'इन्दु' में प्रकाशित हुआ। प्रसाद जी की रचनाओं में जीवन का विशाल क्षेत्र समाहित हुआ है। प्रेम, सौन्दर्य, देश-प्रेम, रहस्यानुभूति, दर्शन, प्रकृति चित्रण और धर्म आदि विविध विषयों को अभिनव और आकर्षक भंगिमा के साथ अपने काव्यप्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

ये सभी विषय कवि की शैली और भाषा की असाधारणता के कारण अछूते रूप में सामने आये हैं। प्रसाद जी के काव्य साहित्य में प्राचीन भारतीय संस्कृति की गरिमा और भव्यता बड़े प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत हुई है। उनके नाटकों के गीत तथा रचनाएँ भारतीय जीवन मूल्यों को बड़ी शालीनता से उपस्थित करती है। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान को अपने साहित्य में सर्वत्र स्थान दिया है। उनकी अनेक रचनाएँ राष्ट्रप्रेम की उत्कृष्ट भावना जगाने वाली हैं। प्रसाद जी ने प्रकृति के विविध पक्षों को बड़ी सजीवता से चित्रित किया है। प्रकृति के सौम्य-सुन्दर और विकृत-भयानक, दोनों स्वरूप उनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- पुरुषोत्तम मोदी (सम्पा.), अन्तरंग संस्मरणों में जयशंकर प्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2001 पृ. 02

2- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग - 10, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संस्करण, 1971, पृ. 145

3- पुरुषोत्तमदास मोदी (सम्पा.) अन्तरंग संस्मरणों में जयशंकर 'प्रसाद', 2001 पृ. 44

4- वही।

5- हेमंत कुकरेती (सम्पा.), गद्य प्रबोध, सतीश बुक डिपो, दिल्ली, 2006, पृ. 31

6- वही, अधिक के लिए देखें, दयशंकर प्रसाद, आँधी, नया साहित्य केंद्र, दिल्ली।

7- हेमंत कुकरेती (सम्पा.) गद्य प्रबोध, पृ. 31

8- वही।

9- प्रो. विशम्भर अरुण (संपादक), बाबू गुलाब राय, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, संस्करण 2000, पृ. 213-237; अधिक के लिए देखें, प्रसाद का सम्पूर्ण काव्य, लोकभारती प्रकाशन, 2003 डॉ. राजमुनि जयशंकर प्रसाद और कामायनी, उत्कृष्ट प्रकाशन, मेरठ, डॉ. तारकनाथ बाली, हिन्दी साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास, प्रभात प्रकाशन, 2017

10- डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र (सम्पा.) प्रसाद के सम्पूर्ण नाटक एवं एकांकी, लोकभारती प्रकाशन, 2008

11- वही

12- वही

13- हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद, भास्कर.कॉम, जनवरी 2019, अधिक के लिए देखें, डॉ. वसुंधरा उपाध्याय, प्रसाद की दृष्टि में नारी का स्वरूप, मई 2018, अमर पत्रिका.कॉम।

◈◈

ISSN : 2349-9273

Globalization and Womanhood in India Still an Awaited Need

- Dr. Priya Srivastava
Associate Professor -
Department of English,
D.A-V. College, Kanpur-208001
(U. P.)

E-mail:
priyasrivastava.dav@gmail.com

Abstract

It is a well known fact that India- till now, the so called a rural land, is developing economically and technologically by leaps and bounds, but still women over here are continued to be discriminated. With the increase in illegal female infanticide it is the need of the time to check the growing imbalance in the society. Talking about Globalization, it can have both a positive as well as a negative effect on the status of women in our country, but when discussing on this subject, it has the power to put the traditional view of women up side down so that they can come at par to the men folk in the prevailing society.

This paper shall deal with the current topic about Globalization and Womanhood in India which is still an awaited need and it is still a challenge to overcome this deep rooted social malice i.e. a gender (women in particular) based discrimination. There are various issues that need to be discussed for improving the overall condition of the women in India. It is essential to work towards self empowerment through small deeds and handling them with a set mind to improve the overall condition of women at every level and everywhere in the society. Truly speaking, the rise of womanhood is the rise of the true self of a woman physically, mentally, intellectually as well as the spiritually.

Globalization, a fact of life, is expected to be a very major force for perity human beings. When talking about women, Globalization is a double elged process and observed that women in our country and other developing countries come across the b problems which have plagued their lives with linterespine But yet, there are posibilides for better educational facilities and various attractive opportunities of develops to the privileged few. Jawaharlal Nehru, the first Prime Minister of todia had very well said tha "You can tell the condition of the nation by looking at the status of women Mahatma Gandhi also opines, "If you educate a man you educate an individual, but if you educate a woman you educate an entire family. A well known fact that India-till now, the so called a rural land, is developing economically and technologically by leaps and hounds, but still women over here are continued to be discriminated and suffers injustice in all the stages of her life. The prevailing predominant patriarchal system doesn't provide enough space for women to have higher education

equivalent to men even if they desire. With the increase in illegal female infanticide it is the need of the time to check the growing imbalance in the society and providing aniversal education for all. This should be strictly implemented in the case of girls and they should be motivated to take up higher education too.

This paper tries to throw light on what is in store for women in India in this process of Globalization. Talking about Globalization, it can have both a positive as well as a negative effect on the status of women in our country, especially within the circumference of a male dominant society. But when discussing on this subject in a positive sense, it has the power to put the traditional view of women up side down so that they can come at par to the men folk in the prevailing scenario. Even though India's constitution grants legal citizenship to women, they get very little respect and standing within the nation. It can have a negative impact too, as globalization is widening the workforce for women and putting them in dangerous jobs, in which they are exploited and overworked.

To accept the fact, that things are not going to change in a day yet, we cannot refrain ourselves from taking action either. However, small ground level actions might be required to initiate and focus towards the changing social attitude and practices prevalent in the society which are entirely against women. Further, working on the aspect of enhancing mobility and social interaction of women in the society would positively and surely influence the all round development and therefore empowering the women in India.

At present, lot of things is happening in the name of women empowerment in our country. The fact is that, despite of major resources being spent in this direction we are proved to be the worst when talking about ranking of gender equality (women in particular) worldwide. Women over here are discriminated and marginalized at all the junctures in the society whether it is a social, economic or political participation, education, nutrition or reproductive health care. In the society, there are people who still consider women as sex objects and the rate of gender disparity, crime and violence against women is on the increase and mostly they are not reported. Problems related to dowry deaths are still on the higher side and is profoundly manifesting in the urban background too. Harassment of women in the workplace is another major problem which has grown in a very rapid way as more women have joined the workforce. Early marriages are happening in large numbers and the education for girls is still very low as majority of the girls who join the school are dropouts by the ap of puberty to get married and live a Hellish life. Female feticide and infanticide in another social crisis despite the fact that there are various programmes and policies being initiated and run by the various government bodies. The year 2001 was declared as the year of empowerment of and therefore, it is the right time to ask this question whether we are moving ahead in the right direction and where do we stand in terms of the actual ground realities and paper actions too.

Discrimination and atrocities against women is a way of daily life in Indian society and society requires change. The problem in India is that, the society never worked on the premise of gender equality from a very long time and till date women are considered to be only good for household activities and bringing up children. The Purdah system, child marriage and the system of dowry are testimonies to this truth. Considering women as a great liability, they have never been allowed to be a part of the mainstream of society. To see the exact plight of women in our country we just have to throw light at the sex ratio which is at the lowest i.e. around 933 and female literacy is just 54.16 % as per 2001 Census. The representation of women in Indian Parliament and assemblies has never been more than 10% Managers, Administrators, Professionals combined together with technical workers on one hand and on the other hand women workers in India outside the organized sector are the lowest at

2.3% and 20 % respectively. Having a view of these figures, the real truth reveals the actual mental level of the society which has restricted, marginalized and discriminated women in every field. A very Big Question – With these alarming and dismal figures how is it possible to achieve women empowerment in India? There is a die hard nocessity to accept the reality that, there is a great difference in the ideology and the actual practice of the policy of empowerment in India. Whatever is happening is on a surface level and the time is such where it is essential to find out an actionable track at the ground level for real and quality change.

There are various issues which need to be streamlined regarding the existing women empowerment programmes in India as well as initiating for their actual developmen. Women form the 52% of the country's population yet. Their living conditions are very tough and torturous. Education of women should be given top priority and female literacy programmes should to be implemented strictly across the country. The socio-economic condition need to train and equip women for taking required decisions and the exact change will only be clearly visible when there is a change in the social attitudes and norms. To improve the basic living standard of women in India. It is essential to make access to safe drinking water, affordable coking fuel for rural women, proper sanitation, providing equal wages to that of men, putting an end to their exploitation, increasing decision making capacity among women, the political participation of women, increasing in the security of women who are engaged in agriculture as daily wage workers, providing affordable healthcare and nutrition and managing the risk of unwanted pregnancies, HIV infections and sexually transmitted diseases. Unless we move a step forward it is not possible to empower women in any other possible way.

It is also observed that many laws and amendments have been made in the constitution to end various discriminations done against women and to empower them in all spheres of life. The provision of reservation of seats in municipalities, local bodies and in parliament has become toothless as the basic problems lies in the mentality of the society which is greatly biased against women. Now the answer to this question is that it is essential for women to come together as a unifying force and to initiate self-empowerment actions at the ground level. Though with a slow pace initially, but it must come in the forefront, however faint the initial steps might look like. So, the connectivity is absolutely clear i.e. once stepping forward towards self awareness of the ground realities, it is esment through infinite actions with the continuesallyforters gender inequality and bias to mold the mindset of the society which continuesally forsters gender inequality and bias.

Moving further women are still considered as burden, liabilities and properties which give birth to another evil l.e. violence against women, In India, women empowerment is not possible until and unless violence against women is eradicated completely from the society In relation to this, a National Commission of women was created in 1992 and Convention of elimination of all forms of discrimination against women was ratified in 1993. Apart from the laws and policies formed towards the violence against women, its result can be fruitful only when tackled through a change in the general attitude of the female members as well as the society. Only this change in attitude where society accepts gender equality as a fundamental principle of human existence can put an end to the violence and help the government and the society towards further concrete steps and therefore, overcoming the barriers of caste, class. Race and religion.

To re-emphasize on the above fact once again, women empowerment cannot take place unless they join hands together and decide to self-empower themselves. Self empowerment should be included in nature. Once this is possible then only we can think in the direction of better health facilities, nutrition and educational facilities for women at all levels. Thus, a pace has to be build to

awaken the individual self in each and every woman for creative action. In this scenario, women from progressive and resourceful background need to come forward to lend their helping hand to their less privileged sisters in as many ways as possible. This shall help us to sow the seeds for real women empowerment within the country.

Regarding the contribution to the economy in one form or another, most women in India work and contribute. Though, it's a different aspect, that much of their work are not documented or accounted for in any official statistics. They plow fields and harvest crops while working on farms, weave and make handicrafts while working in household industries, sell food and gather wood while working in the informal sector. In addition to this, women are traditionally responsible for the daily household activities like, cooking, fetching water, and looking after children. Since Indian culture hinders women's access to jobs in stores, factories and the public sector, the informal sector is particularly important for women and it is estimated that over 90 percent of the working women are involved in the informal sector. This sector includes jobs such as domestic servant, small trader, artisan, or field laborer on a family farm and are mostly unskilled and low paid and do not provide any benefits to the workers.

But in the recent years, it is broadly observed that Cultural restrictions are changing it most parts of the country and women are free to participate in the formal economic system and somewhere the conditions of working women in India have improved slightly. Women have relatively more freedom and are in position of respect and prestige and working is no longer an adjustment or a mere necessity but it is a means to self worth and growth however, the average cent of this type is very less.

Truly speaking, the rise of womanhood in real sense is the rise of the true self of the woman physically, mentally, intellectually and also spiritually. It is yet, another wakeup call for the woman to rise in all spheres of life. The initiative has to be taken at our own personal level and it is essential to bring changes is our inner self too and henceforth, sarry forward this idea which is a long lost desire to brighten the future.

References

1. Rajput Pam, ed. Globalization and Women. New Delhi; Ashish Publication, 1994.
2. Sathibame K.: Rural Women empowerment and Entrepreneurship Development.
3. Bhatia Anju (2000) Women Development and NGO's Rawat Publication. New Delhi.

Website:

www.mariners.com.

www.literacynews.com.

www.esocialsciences.com.

◈◈

ISSN : 2349-9273

Managing Inflation : Opportunities and Challenges Organized Retail Industry

- Dr. Sudhanshu Chamanji
Associate Professor -
Department of Commerce,
D. A-V. College, Kanpur-208001 (U.P.)

E-mail:
sudhanshu1414@rediffmail.com

Introduction-

Retail is India's largest industry. It accounts for over 10 per cent of the India's GDP and around eight per cent of the employment Retail sector is one of India's fastest growing sectors with a 5 per cent compounded annual growth rate. India's huge middle class bas and its untapped retail industry driven by changing lifestyles, strong income growth and favorable demographic patterns, has made the Indian retail to grow 25 per cent annually A McKinsey report The rise of Indian Consumer Market, estimates that the India consumer market is likely to grow four times by 2025 Commercial real estate service: company, CB Richard Ellis' findings state that India's retail market is currently valued a USS 511 billion.

Indian retailing today is at an interesting crossroads. The retail sales are at the highes point in history and new technologies are improving retail productivity. Though there ar many opportunities to start a new retail business, retailers are facing numerou challenges. Undoubtedly the big challenges for India at the present time are double digi inflation (currently 12%) and interest rates at a seven-year high (recently raised to 9%) with the Indian government trying to cool the economy by reducing demand. That is growth is now taking second place to fighting inflation. Mounting interest costs and rising rentals have compounded the effect of inflation on the domestic retail sector Retailers facing a slowdown in their ure plans, as developers are not being able t deliver stores on time. Despite all these hindrances, the sector still has enough leeway to grow over the long term. Every game is a knife-edge balance between reward and risk. All rewards are received at the end of the game if one has borne all the risks and are alive and kicking till the end. Same is the case with Indian retail industry. Focus on distinction branding, after sales service, exploring commoditization, share of purchasing power and innovation can be the few strategies to sail over the crisis.

The year 2009 is seen as a year of consolidation for Indian retail sector. By evolving bes practices and restructuring business models, the retail industry in India is expected t gear-up to the changing market conditions and ensure new opportunities for growth. I spite of all the adversities, the retail sector is expected to grow at 8 to 12 per cent in 2009 2010.

Retailing in India -

The word "Retail" originates from a French-Italian word. Retailer is someone who cut off or sheds a small piece from something. Retailing is the set of activities that market: products or services to final consumers for their own personal or household use. It doe: this by organizing their availability on a relatively large scale and supplying them to customers on a relatively small scale. Retailer is a Person or Agent or Agency o Company or Organization who is instrumental in reaching the Goods or Merchandise o Services to the End User or Ultimate Consumer. It does not include transaction betweer the manufacturer, corporate purchase, government purchase and other wholesalt purchase. A retailer stocks the goods from the manufacturer and then sells the same to the end user for a marginal profit. In the supply chain that also consists of manufacturing and distribution, retailing is the last link before the product reaches the consumer.

Retailing in India can, itself, be divided into two categories: Organized and Unorganized The post liberalization era is predominantly an era of retail boom. Organized retail als adjusted its pace in tandem with the retail boom. Indian corporate like Reliance, ITC and Pantaloon have made foray into this segment along with several foreign brands changing the landscape of retailing in India. But, the unorganized retail sector still enjoys a ke position in Indian retail industry. Blessed with the low investment need to start up proximity and economic pricing, they can easily carve a niche for themselves in India' booming retail sector.

Inflation and Retailing -

The current meltdown in the world markets is bewildering the globe today, Not even i single country seems to be spared from the wrath of a monster called Inflation... The high level of inflation has been a wet blanket for the global markets. The foundations of the world markets are nearly shaken with the heavy downfall of the American financia giants. Amongst many countries, India, toc, is not excused from the impact of work financial crisis. However, these fluctuations are not new for global market. For thi decades long, markets, across the world, have been witnessing such ups and downs.

The inflation or the economic slowdown has adversely affected the retail industry. With the suddenly disturbed economical status, consumers are gradually losing interest or buying. And for the interested, the unbalanced income, followed by the economi slowdown, is not meeting their buying requirements. This global inflation is furthe boosted by oil, energy and food prices, and currently there is an overall global decline in consumer confidence. Prices for 30 essential commodities rose 5.27%, for the year ended March 2008, compared with 3.64% the previous year, according to governmen figures submitted in Parliament. The Food Price Index rose 7.26% for the year, denting household budgets. Food and grocery being essential items, a rise in their price leave: lesser income at the disposal of customers. However, the growth forecast for India it 2009 is 8.5% and for China – 9.8%. Much more impressive growth forecasts than the developed markets and certainly much more in line with the growth achieved in thest regions over the past few years.

To rectify the things, right solutions are always hunted. "Inflation is an opportunity fo organized retail," says Damodar Mall, chief executive of innovation and incubation a future Group, which owns Pantaloon. "When inflation forms the backdrop for my shopping. I will be more willing to go to a destination to get a better deal." In this curren meltdown, driving the customers to the retail stores seems high and dry. Whether the market growth is slower or faster, its potential should not be left unused. Anyway, new and innovative solutions must be invented to answer the current market slump.

Challenges which can be converted into opportunities -

According to Mr. B. S. Nagesh, Vice Chairman, Shoppers Stop, "Though the Indian retai industry has learnt a lot over the past few

years, 2009 will be the defining year for all a there will be opportunities galore. In fact retailers will see a tremendous growth and profit this year than they have seen earlier. There is a need to rationalize the number o stores, hiring practices and the need to implement corporate governance across sectors The Indian consumers are the biggest scope for growth for the Indian retailers. Howeve it is up to the retailers to make the best of the opportunities available and those who do not latch on to them right now will miss the boat." (India Retail Forum: 2009- Defining Period for the Indian Retail Industry) So, all the players are required to get their belt: tightened to translate their underwritten challenges into opportunities-

1. Increase in Cost of Operation-Scaling up of Operations -

There is an increase in the cost of production for retailers on account of mounting interest rates and rising rentals. Input costs are also skyrocketing because of inflation The cost of real estate is also increasing. Because of all these factors the profi margins are dwindling. "Inflation is an opportunity for organized retail," say Damodar Mall, chief executive of innovation and incubation at Future Group, which owns Pantaloon. "When inflation forms the backdrop for my shopping. I will be more willing to go to a destination to get a better deal." So the retailers are not thinking it the way a commen man is doing Having a good amount of muscle, they can easily gear up their operations to minimize their costs.

The first step is "Consolidation of activities" - While speaking about the current scenario of Indian retail sector, ita exclusive interview with Fibre 2 fashion, Mr. Spencer Sheen, Head of Retail, MS Indu, says, if a hylinghoone had effione Delhi, Bangalory, Dhaka, Colombo, Pakistan, Thailand, they are dubing down the offices and consolidating with one office for the region. Where as this is forcing them to mize their from various locations to one or two locations. Therefore, the Manufacturer who at the 115P on a partidar product will sure get the business but others will loose out. For example Bangladeshi may gall the de jeans business because they are very strong on basic jeans, India may get lot of formals and design wat This is how they can turn their activities into one nodal center.

The second step is "Restoring to private labels" - The inclination towards private label is the price differential. On an average the prici difference is close to 15% Certain hrands especially "Certain brands, especially those it staples and savories are getting substituted by private labels now," says Samar Sing! Shekhawat, vice-president, marketing. Spencer's Retail.

The same pattern Pantaloon is also moving to handle inflation they have increase the percentage of private labels." Consumers who don't want to pay more are opting fo private labels," say officials from Food Bazaart part of Pantaloon Future group). According to industry experts in some cases the price differentials are almost doubles in case of branded products So the next cost advantage comes from private labels.

The third step is "supply chain management" - Supply chain refers to movement of product from the starting point to the end use for the customer. IT inclusion in supply chain is certainly going to reduce the cost of providing right products at the right place and reducing consumer's grievances .It will also generati easier payments options for customer and easier money movements for CEOs of highly diversify malls. Pantaloon is intensifying its move to tie up with oil mills, rice mills anc other suppliers rather than wholesalers. This will help it procure from further back in the supply chain at lower prices.

The fourth step is "forward and backward linkage" - The retailers' biggies can stabilize the rising prices because of yearly contracts which enable them to source product at fixed prices.. Almost 70% of Vishal's food and fres! Supplies come from 50 suppliers with whom prices are fixed for a year. "Unless price are doubled or something, the supplier will continue to supply us on the same rate that is agreed upon earlier." the Vishal executive said.

The next avenue for gaining cost advantages is sealing up of operations i.e. spreading the wings.

"Retailing is a game of speed," said Pushpamitra Das, Chief Financial Officer o Wadhawan Food Retail (P) Ltd. "There are a lot of players who are going to come to thit country in the next 3-5 years time, you need to be in the top five. If you are not in the to five now, the investments you need later is going to be significantly higher. It's growt versus cost. This means that scale has become extremely important for survival the retail industry.

Apparel retail chain Globus is investing Rs 350 crore for opening 74 new stores in thi next 30 months across India. Kolkata-based Nik-Nish Retail Ltd is planning to increase the number of its outlets to 6 from present 15 in the next 18 months. Triumph to set up 450 stores in India over next 5 years and will investing up to Rs 200 crore in setting up 450 exclusive stores over the next five years. Reebok on expansion spree, to open 230 stores in FY08 and it is on a major expansion in India which would see the company open one store in almost every two days, taking the total number of stores to 850 by the end of 2008-09. Bata to open 260 new stores in next 3 yrs and will be opening about 260 new exclusive stores at an investment of up to Rs 400 crore in the next three years. Arvind plans to open about 40-50 exclusive stores across all brands during 2008-09 Under its retail unit, Megamart, it will open five 40,000-60,000 square feet stores ank another 40 3,000-5,000 square feet stores in Fy09.

This expansion will bring advantages from economies of scale and do internal hedging because of diversification of risk.

The fifth step is "influence of political forces" - Government influences in retail operations come through FDI policy which states that Because of this FDI policy cost advantages come in many ways.

2. Rise in competition-Go rural, amalgamate and diversify -

This has increased the level of competition in Indian retail industry. This implication of this cut throat competition is saturation of urban market So thi next vast opportunity comes through rural masses. India's huge rural market he also attracted retail investments and is seen as a viable opportunity for growth by corporate India ITC launched the countries first rural mall "ChaupalSagar" with diverse products being offered ranging from FMCG to electronics appliance to automobiles, with a view to provide farmers a one stop center for all thei consumption requirements. Many more new trends could possibly be tried in rura markets to unleash the huge potential.

As already discussed above competing in Indian retail sectors is not every bodies cup of tea so the small players are amalgamating with each other to combat the competition from retail joints. Diversification is the next mantra to withstand competition. The companies like Spencer are going for image make over by investing in fashion merchandise. "We have always been known as a food and retailing brand We now intend to change our image and tap the fashion segment as well," Sama Singh Sheikhawat, vice-president (marketing), Spencer's Retail. Spencer's fashior offerings will be positioned as "affordable, with prices i the range of Rs 199 to R 1.000.

To begin with, the fashion merchandise will be available only in Spencer's large format stores. It will allocate 25 per cent of the 25,000 to 70,000 sqft space in suel stores to fashion merchandise, up from 10 per cent now. The RPG Group-promotec Spencer's Retail would be entering into a joint venture with a US-based bakery caft chain and setting up stand alone stores under its brand name. "We are going to form joint venture with a US-based café chain, one of the biggest in the world, and set up standalone stores.

3. Reduction in net disposable income-Design a new product package, promote the product -

Because of inflatiion the net amount of income in the bands of consumers has reduces drastically but it is also seen as an opportunity by the organized retail players. According to these

players there is no change the amount consumer, rather the purchase pattern has changed because of prices major chunk of their disposable income exhausted by retailers required to design new product package which have lesser margins. According to researches, 41 percent of total consumption expenditure goes to the segment of and groceries and it accounts for 77 percent of total retail sale. So it obvious this is the most preferred section of retailers.

Promotion-

Organized retailers are putting out more promotions to keep even as are singed by price rise. At Spencers, chain from Spencers Retail there are more promotions for more cross merchandising. For instance, one popular promotion with purchases of detergent. Are doing more promotions vegetables, and staples because that footfalls." Says Sumantra managing director Spencers.

4. Nostalgia-Gove value for money by increasing quality of shopping experience -

Indian shopping habits are different. People tend to attach qualities like honesty fair price, good behaviour etc. To shopkeepers with whom they right from childhood. They to deal these corners kirana good relation but also because of proximity This problem appointing local people can imteract in vernacular language hearts of people. The another way increase the value of shopping Increasing the lounge space, complementary products maintenance, children store cafes and styling few another wages change favorite time pass.

Conclusion-

"I will say that if you're alive you've got to fap your arms and legs, you've got ajung around a lot for life is the very opposite of death. If you're quict you're not living You've got to be misy and colorful and lively." **-Anonymous, Wikiquote**

Every player knows that ups and downs are the part and parcel of the game known a business. The requirement is efficiency, promptes, responsiveness and innovation With these tools and strong determination, one can always take a head-on with all sorts o adversities, be it inflation or recession.

References

1. www.indiangand.com15-in-retailags.
2. Soaring inflation opens up new opportunities for big chains". Sumnya Roy and RasulBailay.
3. Citeman Network Management Reality, July 10, 2008.
4. Is the Indian Retail Industry stabbed by Recession? By : Fibre 2 fashion.com.
5. Economy, Investment & Finance Reports: Economy Watch.
6. July 1, 2008, Source : The Times of India.
7. June 30, 2008, Source: Economic Times-Retail shakeout upon us?
8. www.3dsyndication.com.
9. June 27, 2008, Source: Reuters, Big players-plans and investments.
10. June 30, 2008, Source : Business Standard.
11. June 29, 2008, Source : The Hindu.
12. June 29, 2008, Source : Economic Times.
13. June 26, 2008, Source: Hindu Business Line.
14. Praveen, HRLink.in.
15. Retail Industry in India: Report on Overview, Growth, Opportunities, Retail Formats, International Players, Retail Companies: India reports.

◈◈

ISSN : 2349-9273

Fused Hard Sphere Chain Fluids

- K. B. Kushwaha
Associate Professor -
Deptt. of Physics,
D. A. V. (P. G.) College,
Kanpur-208001 (U.P.)

E-mail:
kbkushwaha4@gmail.com

Abstract

We report a method to obtain the equation of state of Linear fused Hard Sphere Chain (LFHS) molecules at different bond lengths (l^*). It is shown that an equation of state of linear tangent hard sphere (LTHS) chain fluid can be transformed into an equation of state (EOS) of LFHS chain fluid by considering the correct chain length (m^*). The validity of the method is tested by considering our newly proposed EOS for LTHS chain and with three more equations of state for 4 mers, 8 mers and 16 mers at $l^* \cong 0.3$, for 8 mers at $l^* = 0.5$ and $l^* = 0.6$ and 6 mers at $l^* = 0.5$. We find a good agreement with simulation data. The second virial coefficient of LFHS chain for effective chain length (m) also shows a good agreement with simulation data. We also report that the compressibility factor of long chain molecules, for example 200 mers, can be obtained by adding its segment's equations of state using SAFT-D theory.

1. Introduction -

The study of the volumetric properties of fluids composed of linear fused hard sphere (LFHS) chain molecules has a great fundamental and practical importance. The successful completion of this task requires an understanding of the linear tangent hard sphere chain molecules. The development of an equation of state for an assembly of linear tangent hard sphere (1.THS) chain fluids has received. Considerable attention [1-5]. For homonuclear chain fluids, the successful performance of the statistical associating fluid theory (SAFT) has been investigated extensively against computer simulation results [6]. However, it has been found that SAFT becomes less accurate as the number of segments in the chain increases. One of the improvements is due to Wertheim known as second order perturbation theory called TPT2 [1]. Another improvement is proposed by Ghonasgi and Chapman [7] and Chang and Sandler [8] independently called SAFT-D theory. SAFT-D theory requires the contact values of hard sphere and hard disphere site-site correlation functions. The correlation function for hard spheres was evaluated from the analytical solution of Carnahan and Starling [9] while the correlation function of disphere was obtained in an analytical form of Chiew [10]. Recently, we have proposed the equation of state of hard chain molecules using SAFT-D theory [11], resulting in better results than Ghonasgi and Chapman [7]. In this work, we consider the long chain molecules having 200 mers. The numerical

determination of EOS of 200 iners focus the possibility of describing the EOS by the addition of equations of state of its segments. The main theme of this work is to show that the equation of state of LTHS chain can be transformed into LFHS chain by considering a suitable value of chain length m*. We have applied our model based on SAFT-D theory in predicting the volumetric behaviour of the fused hard sphere fluid consisting of 4 mers, 8 mers and 16 mers at ;* ≅ 0.3. We also examine the accuracy of this approach to generalize for other models of LTHS system at same bond length *I**. To examine its applicability for different bond lengths, we consider the LFHS chain fluid consisting of 8 mers at*I** = 0.5 and *I** =0.6 and 6 mers at*I** = 0.5. We find a good agreement with MC simulation results in all cases.

2. Theory

2.1 Equation of state of LTHS chain fluids

Let us consider even numbered pairs of m hard spheres. The equation of state of the disphere in SAFT theory can be written as

$$Z^{HD} = 2Z^{HS} - \left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HS}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (1)$$

Where η is the packing fraction or volume fraction and is defined as $\eta = \pi\rho m\sigma^3/6$.

The pair of disphere can form a chain which has four segments i.e. tetramers, In SAFT-D theory [7], the equation of state for a tetramer is given by

$$Z^{HT} = 2Z^{HD} - \left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HD}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (2)$$

Similar, the equations of state of 8 mers (Z^{HO}), 16 mers (Z^{HSix}), and 32 mers (Z^{32}), and so on can be written as

$$Z^{HO} = 2Z^{HT} - \left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HT}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (3)$$

$$Z^{HSix} = 2Z^{HO} - \left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HO}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (4)$$

$$Z^{32} = 2Z^{HSix} - \left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HSix}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (5)$$

The equation of state for 128 mers can be solved as

$$Z^{128} = 128\, Z^{HS} - 64\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HS}(\sigma)}{\partial\eta}\right) - 32\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HD}(\sigma)}{\partial\eta}\right)$$

$$-16\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HT}(\sigma)}{\partial\eta}\right)-8\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HO}(\sigma)}{\partial\eta}\right)-4\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{HSix}(\sigma)}{\partial\eta}\right) \quad (6)$$
$$-2\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{H32}(\sigma)}{\partial\eta}\right)-\left(1+\eta\frac{\partial \ln g_{H64}(\sigma)}{\partial\eta}\right)$$

A general expression can be written as

$$Z^m = mZ^{HS} - (m-1) - \eta\left\{\frac{m}{2}\frac{\partial \ln g_{HS}(\sigma)}{\partial\eta} + \frac{m}{4}\frac{\partial \ln g_{HD}(\sigma)}{\partial\eta}\right.$$
$$+\frac{m}{8}\frac{\partial \ln g_{HT}(\sigma)}{\partial\eta} + \frac{m}{16}\frac{\partial \ln g_{HO}(\sigma)}{\partial\eta} + \frac{m}{32}\frac{\partial \ln g_{HSix}(\sigma)}{\partial\eta} \quad (7)$$
$$\left.+\frac{m}{64}\frac{\partial \ln g_{H32}(\sigma)}{\partial\eta} + \frac{m}{128}\frac{\partial \ln g_{H64}(\sigma)}{\partial\eta}\right\}$$

Equation (7) can be solved by using the value of $g_m(\sigma)$ proposed by Chiev [10] as

$$g_m(\sigma) = \frac{(m+2)+(5m-2)\eta}{4m(1-\eta)^2} \quad (8)$$

The equation of state (eq. 7) can further be solved as

$$Z^m = mZ^{HS} - (m-1) - \left(\frac{\eta}{1-\eta}\right)\left\{\frac{m}{2}\frac{(5-2\eta)}{(2-\eta)} + \frac{m}{4}\frac{2(2+\eta)}{(1+2\eta)}\right.$$
$$+\frac{m}{8}\frac{(5+3\eta)}{(1+3\eta)} + \frac{m}{16}\frac{(29+19\eta)}{(5+19\eta)} + \frac{m}{32}\frac{(57+39\eta)}{(9+39\eta)} \quad (9)$$
$$\left.+\frac{m}{64}\frac{(113+79\eta)}{(17+79\eta)} + \frac{m}{128}\frac{(193+160\eta)}{(33+160\eta)}\right\}$$

The equation of state for 4 mers, 8 mers and 16 mers can be written by taking into account the terms up to $\frac{m}{x} = 1$. However, this way we can obtain the equations of state for 32 mers, 64 mers and 128 mers etc. but not for the 51 mers and 201 mers for which simulation results are available. We have obtained the equation of state of 200 mers by adding its segmental chain's equations of state. Thus, the EOS of 200 mers is obtained by adding EOS of 128 mers, 64 mers and 8 mers. The equation of state of 200 mers can be written as

$$Z(200) = Z(128) + Z(64) + Z(8) \quad (10)$$

For comparison, we have also calculated the equation of state of 200 mers by the equation of state proposed by Ghonasgi and Chapman [7] derived by assuming that longer chains have same density dependence of the site-site correlation function $g_m(\sigma)$ as the disphere $g_{HD}(\sigma)$. The equation of state [7] is given by

$$Z^{m} = mZ^{HS} - \frac{m}{2}\left(1+\frac{\eta(5-2\eta)}{(1-\eta)(2-\eta)}\right)-\left(\frac{m}{2}-1\right)\left(1+\frac{2\eta(2+\eta)}{(1-\eta)(1+2\eta)}\right) \qquad (11)$$

2.2 Equations of State of LFHS Chain Fluids

The equation of state of LTHS chain fluids obtained by using SAFT-D theory (eq. 9) can be transformed into the equation of state of LFHS chain fluids by considering the suitable value of chain length i.e. by replacing m by m*. This is shown by considering equations of state of 4 mers, 8 mers and 16 mers for which simulation results are available. The validity of the proposed method remains true for the equations of state derived by other theoretical methods. To show this, we have considered the following equations of state.

(i) TPT-D2 equation of state for LTHS chain fluids proposed by Chang and Sandler [8] as

$$\begin{aligned} Z = mZ^{HS} &- 0.5m\left(1+\frac{\eta(5-2\eta)}{(1-\eta)(2-\eta)}\right) \\ &-(0.5m-1)\left(1+\frac{\eta(3.498-0.24\eta-.414\eta^2)}{(1-\eta)(2-\eta)(.534+.414\eta)}\right) \end{aligned} \qquad (12)$$

(ii) Equation of state for LTHS chain fluids through r-particle cavity correlation function for chain by HU et al. [12] as

$$\frac{\beta p}{\rho} = Z = \frac{1+a\eta+b\eta^2-c\eta^3}{(1-\eta)^3} \qquad (13)$$

where a, b and c are functions of chain length m given in their paper by equations (33-35).

(iii)Quartic optimized chain SAFT equation of state for LTHS chain fluids proposed by Yelash and Kraska [13] as

$$Z_{BQCh} = 1 + m\frac{2\eta(6+\eta)}{(1-\eta)(3-4\eta)} - m\frac{a}{bRT}4\eta + (m-1)\frac{37\eta^2-30\eta}{4(1-\eta)(3-4\eta)} \qquad (14)$$

where $\frac{a}{bRT}$ is assumed to be a constant value. It is obtained by fitting the

equation of state to its MC simulation value at respective η for 8 mers. The average value of all these values at different η is found as $\frac{a}{bRT}$=0.0615. The value of $\frac{a}{bRT}$ is small so it will not make much effect on the equation of state by considering it as a constant.

2.3 Evaluation of effective chain length m*

To transform an equation of state of LTHS chain into an equation of state of LHFS chain, we adjust the number of beads per unit volume so that the reference dimer fluids have the same volume fraction and the same surface area as the fused hard sphere chain. The effective number of dimers per chain is taken as m* and the dimer diameter is d. Thus the volume (V_m) and surface area (S_m) of a fused hard sphere chain can be written as

$$V_m = m^* \frac{\pi d^3}{6}\left[1+\frac{3}{2}\left(\frac{\ell}{d}\right)-\frac{1}{2}\left(\frac{\ell}{d}\right)^3\right] \qquad (15a)$$

$$S_m = m^* \pi d^2\left[1+\left(\frac{\ell}{d}\right)\right] \qquad (15b)$$

and we can obtain the value of m* using equations (15a) and (15b)

$$m^* = \left(\frac{S_m^3}{36\pi V_m^2}\right)\frac{\left[1+\frac{3}{2}\left(\frac{\ell}{d}\right)-\frac{1}{2}\left(\frac{\ell}{d}\right)^3\right]^2}{\left[1+\left(\frac{\ell}{d}\right)\right]^3} \qquad (16)$$

Thus the effective chain length (m*) of the fused hard sphere chain can be obtained where V_m and S_m are known from Monte Carlo simulation results. Costa et al. [14] have tabulated the values of V_m and S_m for 4 mers, 8 mers and 16 mers at $\ell^* \cong 0.3$.

Whittle and Masters [15] have used the Monte Carlo method to study the three systems of fused hard spheres of 8 mers at $\ell^* = 0.5$, 8 mers at $\ell^* = 0.6$ and 6 mers at $\ell^* = 0.5$. They have reported the molecular volume at respective length to width ratio ℓ^*. Since the value of S_m is not known, we can not use equation (16) to determine the value of m*. We use the following procedure to obtain m*.

Let us consider a chain of (2m-1) overlapping spheres of radius d and volume $V_s = 4\pi d^3/3$ separated by the m mer of bond length ℓ^*. The excluded volume is given by the relation.

$$V_m(o) = (2m-1)V_s - 2(m-1)V_o \tag{17}$$

where the overlap volume between a pair of adjacent sphere V_0 is given by [16]

$$V_o = \frac{4\pi d^3}{3}\left[1 - \frac{3}{4}\left(\frac{\ell}{d}\right) - \frac{1}{16}\left(\frac{\ell}{d}\right)^3\right] \tag{18}$$

Further

$$V_m(o) \cong 8V_{sc} \tag{19}$$

here V_{sc} is the spherocylinder molecular volume, tabulated by Whittle and Masters [15].Thus equation (17) can be written as

$$8V_{sc} = (2m-1)\frac{4\pi d^3}{3} - 2(m-1)\frac{4\pi d^3}{3}\left[1 - \frac{3}{4}\left(\frac{\ell}{d}\right) - \frac{1}{16}\left(\frac{\ell}{d}\right)^3\right] \tag{20}$$

We determine the value of d by using equation (20).Now, the fused hard spheres can be approximated [15, 16] by a spherocylinder such that the volume of the spherocylinder is equal to the volume of a single FHS chain molecule (m-mers) i.e. $V_{sc} = V_m$. Thus, knowing the value of d from equation (20) and considering $V_{sc} = V_m$, we can determine the value of m* by using equation (15a) for 8 mers.

Recently, we [17] have proposed an equation of state for LTHS chain molecules using the statistical associating fluid theory (SAFT). The formalism is based on the assumption that the chain is formed by the pairs of the trimers. Following this assumption, the equation of state of the LTHS six mers chain is given by

$$Z^m = mZ^{HS} - (m-1) - (m-2)\frac{\eta}{1-\eta}\frac{(5-2\eta)}{(2-\eta)} - \frac{\eta}{1-\eta}\frac{(23+13\eta)}{(5+13\eta)} \tag{21}$$

where m = 6 represents the chain length in this case. The volume of a chain of m mers formed by the pairs of the LTHS trimer is given by

$$V_m = m\frac{\pi d^3}{6}\left[1 + 3\left(\frac{\ell}{d}\right) - \left(\frac{\ell}{d}\right)^3\right] \tag{22}$$

Now, equation (22) can be used to calculate the effective chain length m* for LFHS chain fluids by replacing m by m*.The value of the diameter d can be calculated using equation (17).V_m for six mers is known from Whittle and

Masters [15].The equation of state of the LFHS chain of six mers fluids at $\ell^* = 0.5$ can be obtained from equation (21) by replacing m by m* at different volume fractions.

3. Results and Discussion

3.1 Homonuclear hard sphere tangent long chain molecules

The equation of state of long chain molecules having 200 mers is calculated by using equation (10) and tabulated in table 1. The predicted values are compared with molecular simulation data [18] as well as with results obtained by using equation (11). We find that the present work predicts a better agreement with simulation data than those obtained by equation (11) proposed by Ghonasgi and Chapman [7]. This means that the density dependence of the site-site correlation function at contact for higher mers plays an important role in describing the equation of state for long chains.Thus, we have obtained the equation of state of 200 mers by the addition of equations of state of its segments. This describes the possibility of addition or subtraction of equations of state of the segments of the chain molecules.

Table 1: Comparison of our equation of state of 200 mers hard sphere chain fluids with equation (11) and with simulation data [18] as a function of reduced density ($\rho^* = m\rho\sigma^3 = 6\eta/\pi$).

	Present Work			Eq. (10)	Eq. (11)	Simulation
ρ*	128 mers	64 mers	8 mers	= 200 mers	200 mers	201 mers
0.2	24.34	12.96	2.96	40.26	41.76	36.80
0.3	52.37	27.04	4.92	84.33	86.39	79.44
0.4	96.11	49.00	7.86	152.97	155.14	152.11
0.5	161.80	81.95	12.19	255.94	257.91	256.20
0.6	259.16	130.74	18.51	408.41	410.00	407.16
0.7	403.56	203.07	27.79	634.42	635.47	621.54
0.8	619.95	311.41	41.61	972.97	973.34	927.79
0.9	950.31	476.76	62.60	1489.67	1489.19	1354.76

3.2 Linear fused hard sphere chain molecules (LFHS)

We have applied SAFT-D theory (eq. 9) and other equations of state described by equations (12) to (14) of tangent hard sphere chain molecules to predict the equations of state of linear fused hard sphere chain fluids. To apply these theories to LFHS chain fluid, the effective number of dimer per chain m* is calculated using equation (16) for 4 mers, 8 mers and 16 mers. The value of m* for respective mers is calculated using the parameters tabulated in table 2 and the same value of m* is used for all four equations of state. The calculated values of equations of state for LFHS chain of 4 mers, 8 mers and 16 mers are shown in figure 1. We find that the compressibility factor is

tremendously reduced for LFHS chain fluids in comparison to LTHS chain fluids. Further, all four equations of state of LFHS chain fluids, considered in the present work, adequately predict the compressibility factor in agreement with MC simulations [18] and dispose almost same values of compressibility factor (Z^m) by using the same value of m*. Figure 1 also reveals that all four equations of state including SAFT-D underpredict the compressibility factor

Table 2: Parameters used in the calculations of fused hard sphere chain fluids obtained from Costa et al. [14] and Whittle and Masters [15]

Mers	ℓ*	V_m	S_m	d	m*
4	0.3664	1.422	6.905	-	1.311
6	0.50	2.323	-	0.9829	1.967
8	0.3330	2.575	11.728	-	1.992
8	0.50	3.043	-	0.9818	3.639
8	0.60	3.426	-	0.9726	3.968
16	0.3195	4.920	21.547	-	3.404

Table 3: Reduced second virial coefficient (B_2^*) for linear tangent hard sphere chains and linear fused hard sphere chains using equation (22).

LHTS				LFHS			
m	ℓ*	B_2^* (Th)	B_2^* (MC)	m*	ℓ*	B_2^* (Th)	B_2^* (MC)
4	1	8.5	8.25	1.311	.3664	4.47	-
6	1	11.5	11.03	2.623	0.50	5.45	6.28
8	1	14.5	-	3.639	0.50	7.95	7.33
8	-	-	-	3.968	0.60	8.45	-

compared with simulation results. This discrepancy is almost negligible for 4 mers but increases with chain length, i.e., for 8 mers and 16 mers.

Now, we describe the equations of state of fused hard sphere chain fluids of 8 mers at length to width ratio ℓ^* =0.5 and ℓ^* = 0.6. In this case, the value of m* is calculated by using equation (20) and equation (15a) as described in the last section 2.3. The results for the SAFT-D theory using equation (9) are shown in figures 2 at ℓ^* = 0.5 and ℓ^* = 0.6. The equation of state at ℓ^* = 0.5 shows a good agreement with simulation data up to the volume fraction η = 0.3 above which it is closer to the modified Wertheim equation (MW) of state data [19] and predicts higher values than GFD theory. However, there is a possibility of mild phase transition above η = 0.4. Our equation of state at ℓ^* = 0.6 predicts good agreements with Monte Carlo data up to volume fraction η = 0.33 which is the density at which Whittle and Masters [15] identify an isotropic/nemetic phase transition. The equation of state of 6 mers i.e. equation (21),shows an excellent agreement with simulation data for full density range. LFHS of 6 mers with ℓ^* =

0.5 do not show clear phase transition by using GFD theory [19] and modified Parsons-Lee theory [20] as well. The results are shown in figure 3.

3.3 Second virial coefficient (B_2)

The second virial coefficient depends upon the intermolecular pair potential and is also a function of temperature. Thus it summarizes the influence of two body interactions on the pressure. The second virial coefficient for tangent hard sphere chain molecules is given by the well-known expression.

$$B_2^* = \frac{B_2}{V_m} = \frac{1}{2}(3m+5) \qquad (23)$$

As shown in table 3, the second virial coefficient of LTHS chain predicted by equation (23) is in reasonably good agreement with Monte Carlo simulation data [21]. We show that equation (23) also predicts good agreement with MC simulation results [21] for linear fused hard sphere chain fluids using our values of effective chain length m*. The MC simulation results of 6 mers and 8 mers LFHS chain are obtained by considering the mean value of 5, 7 and 9 mers MC simulation results [21].

4. Conclusion

A simple isotropic equation of state for linear fused hard sphere chain with varying bond length is proposed for describing thermodynamic properties of more realistic models. The present theory describes a very simple model to describe the equation of state of LFHS chain fluids and is found to be in good agreement with simulation data. This method is also useful to describe the equation of state of hard alkane models such as butane, pentane and octane.

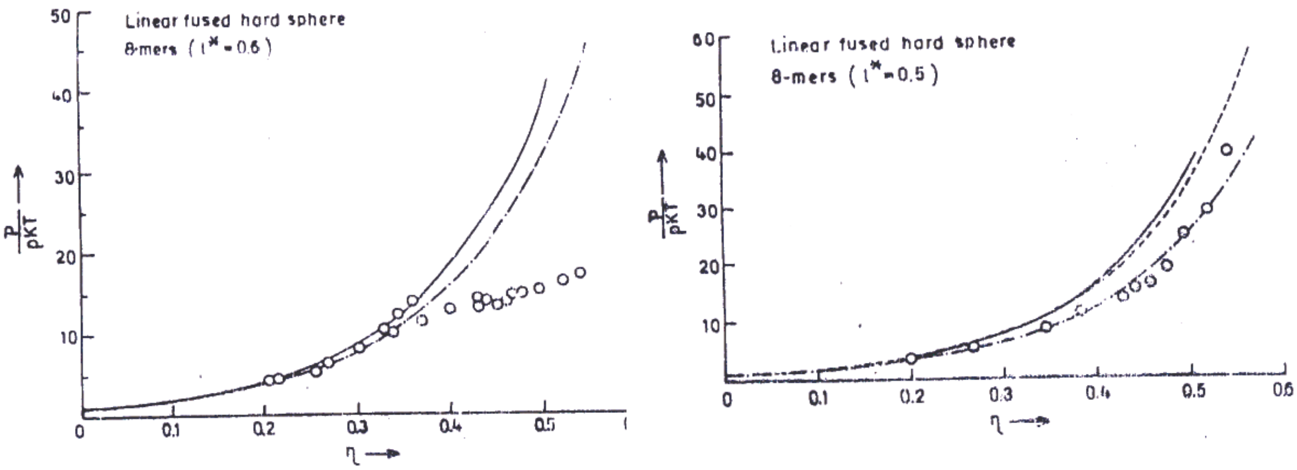

Figure 2: Compressibility factor versus volume fraction for linear fused hard sphere 8 mers with $\ell^* = 0.5$ and $\ell^* = 0.6$. Our values (SAFT-D) theory) solid line (——), GFD (- . . - . -) modified Wertheim equation (- - - -), Monte Carlo simulation data (circles).

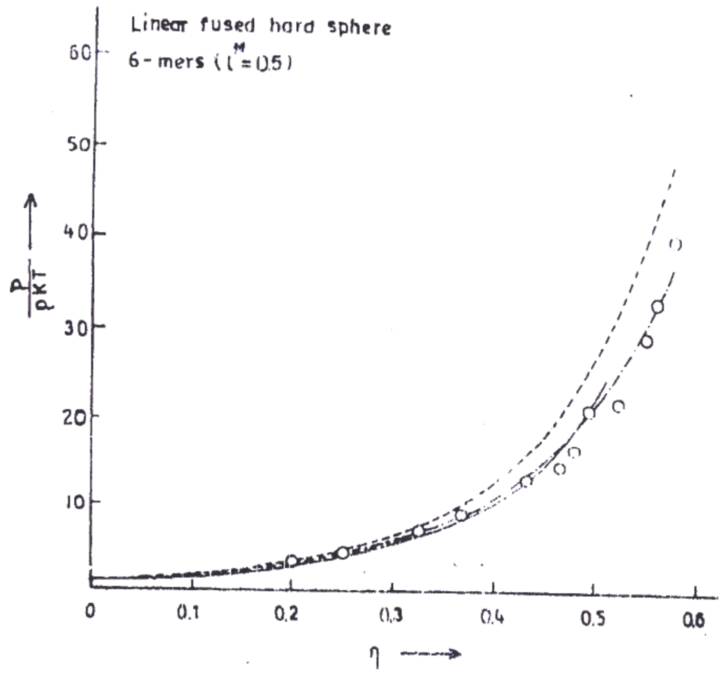

Figure 3: Compressibility factor versus volume fraction for linear fused hard sphere 6 mers with $\ell^* = 0.5$, our values (SAFT-D Theory) solid line (——), GFD (- . - . -) modified Wertheim equation (- - - -), Monte Carlo simulation data (circles).

References

1. M. S. Wertheim, J. Chem. Phys. 87 (1987) 7323.
2. M. S. Wertheim, J. Stat. Phys. 42 (1986) 477.
3. K. G. Honnell and C.K. Hall, J. Chem. Phys. 90 (1989) 1841.
4. W. G. Chapman, G. Jackson and K.E. Gubbins Mol. Phys. 65 (1988) 1057.
5. R. J. Sadus, J. Phys. Chem. 12 (1995) 363.
6. S. H. Huang and M. Radosz Ind. Eng. Chem. Res. 29 (1990) 2284.
7. D. Ghonasgi and W.G. Chapman, J. Chem. Phys. 100 (1994) 6633.
8. J. Chang and S.I. Sandler, Chem. Eng. Sc. 49 (1994) 2777.
9. N. F. Carnahan and N.E. Starling J. Chem. Phys. 51 (1969) 635.
10. Y. C. Chiew, Mol. Phys. 73 (1991) 359.
11. K. B. Kushwaha and K.N. Khanna, Mol. Phys. 97 (1999) 907.
12. Y. Hu. H. Liu and J.M. Prausnitz, J. Chem. Phys. 104 (1996) 396.
13. L.Y. Yelash and T. Kraska, Phys. Chem. Chem. Phys. 1 (1999) 2449.
14. L.A. Costa, Y. Zhcu and C.K. Hall and S. Carra, J. Chem. Phys. 102 (1995) 6212.
15. M. Whittle and A.J. Masters, Mol. Phys. 72 (1991) 247.
16. K.M. Zaffer, S.B. Opps and D.E. Sullivan, J. Chem. Phys. 110. (1999) 11630.
17. V. Srivastava and K.N. Khanna, Mol. Phys. 100 (2002) 311.
18. J. Gao and J.H. Weiner, J. Chem. Phys. 91 (1989) 3168.
19. S.D. Mehta and K.G. Honnell, J. Chem. Phys. 100 (1996) 10408.
20. S. Varga and I.Szalai, Mol. Phys. 98 (2000) 693.
21. C. Vega, S. Lago and B. Garzon, Mol. Phys. 82 (1994) 1233.

ISSN : 2349-9273

स्त्री–विमर्श : मीरा

– डॉ. वाणिश्री
अध्यक्षा – हिन्दी विभाग,
सरकारी स्नातक महाविद्यालय,
पाकाल, जिला– चित्तूर–523101
(आन्ध्र प्रदेश)

ई–मेल :
vanisreereddicherla@gmail.com

मीरा प्रेम और भक्ति की तन्मय गायिका के रूप में ख्याति प्राप्त और मान्य हैं। वे श्रीकृष्ण की प्रेमिका भी हैं और उनकी भक्ति भी ऐसी प्रसिद्धि है कि उन्होंने बचपन में ही श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप में वर लिया था। राणा भोजराज के साथ जब वे सांसारिक विवाह बंधन में बँधी या बाँधी गईं, पति–गृह में वे श्रीकृष्ण की प्रतिमा के साथ आई और भोजराज की विवाहिता होते हुए भी वे मन में श्री कृष्ण को ही पति मानती रहीं, उन्हीं के प्रति समर्पित रहीं। मीरा के जीवन को लेकर कुछ विवाद भी हैं– एक मत है कि मीरा का भोजराज के साथ वैवाहिक जीवन बड़ी अल्प अवधि का रहा। भोजराज की असमय में मृत्यु हुई और मीरा कम उम्र ही विधवा हो गईं। अन्य मत है कि मीरा विधवा नहीं हुई क्योंकि कहीं भी उन्होंने अपने विधवा होने का साक्ष्य अपने रचे गये पदों में नहीं दिया है। इसी तरह मीरा के जीवन को लेकर कुछ अन्य बातों में भी मतभेद और विवाद हैं जो पक्ष मीरा के वैधव्य को नहीं मानता। उसके अनुसार– अपने आक्रांता के रूप में मीरा ने अपने पदों में जिस राणा का उल्लेख बार–बार किया है, वे और कोई नहीं, उनके पति भोजराज थे, जो मीरा की श्रीकृष्ण–भक्ति, मीरा द्वारा पति रूप में उनकी स्वीकृति, साज–सिंगार करके श्रीकृष्ण को रिझाने और उनकी प्रतिमा के समक्ष पग में घुंघरू बाँधकर उनके नाचने–गाने, साधु–संगति करने आदि–आदि बातों से बेहद असंतुष्ट और क्षुब्ध थे। सामाजिक विधि–निषेधों, राजकुल की मर्यादाओं की मीरा द्वारा की गई अवमानना तथा मीरा के अपने मनोवांछित जीवन जीने के हठ के चलते, यही भोजराज थे, जिन्होंने मीरा को यातनाएँ दीं, उन्हें प्रताड़ित किया और अंततः मीरा को राजमहल का त्याग करना पड़ा।

जो पक्ष मीरा के अकाल वैधव्य को मानता है, उसके अनुसार– भोजराज जब तक जीवित रहे, मीरा को उन्होंने समझाया बुझाया जरूर, परन्तु जब वे नहीं मानी, वे उदासीन हो गए और मीरा के क्रिया–कलाप चलते रहे। उनकी मृत्यु के बाद, मीरा को जो यातनाएँ मिलीं वे यातनाएँ उन्हें, देवर राणा विक्रमादित्य ने दीं और मीरा अपने पदों में जिस राणा का उल्लेख करती हैं, वे भोजराज नहीं, उनके छोटे भाई अर्थात मीरा के देवर राणा विक्रमादित्य हैं। राणा विक्रमादित्य इस कारण भी क्षुब्ध थे कि पति की मृत्यु के उपरान्त वंश–कुल की परम्परा के अनुसार मीरा पति के साथ सती नहीं हुईं। विधवा के वेश के बजाय सधवा के रूप में साज–सिंगार करती रहीं, नाचती गाती रहीं– यह कहते हुए कि उनके पति श्रीकृष्ण तो अविनाशी हैं, वे मर ही नहीं सकते। अपने को उन्होंने विधवा माना ही नहीं। देवर की यातनाओं से परेशान होकर अन्ततः मीरा ने राज महल का परित्याग कर दिया।

सम्प्रति, हमारी रूचि, मीरा के जीवन को लेकर, उनके वैधव्य को लेकर जो विवाद हैं, उसकी तफसील में, जाने की नहीं है। हमारा सवाल, या कहें, हमारी जिज्ञासा दूसरी है। राणा भोजराज हों अथवा राणा विक्रमादित्य, यदि श्रीकृष्ण के प्रति मीरा के प्रेम या भक्ति–भाव को, या श्रीकृष्ण को पति मानने की मीरा की बात को, मीरा के चाहे अनुसार– राजपरिवार की, लोक

की, सगे सम्बन्धियों की स्वीकृति मिल गई होती या वे सब मीरा के क्रिया–कलापों के प्रति तटस्थ या उदासीन हो गए होते और मीरा बाधा रहित श्रीकृष्ण के प्रति अपनी मनोभावनाओं को अभिव्यक्त कर पातीं, तब क्या जिस रूप में आज हम मीरा का स्मरण कर रहे हैं, उसी रूप में मीरा को याद करते ? या कि जिस तरह आज, मीरा के समय से पाँच सौ सालों बाद, मीरा को नई सदी के मुख्य विमर्शों में एक स्त्री–विमर्श से जोड़कर देख रहे हैं, उन्हें अपना समकालीन मान रहे हैं, वैसा समकालीन उन्हें मानते ? शायद नहीं। अधिक से अधिक ऐसी स्थिति में हम मीरा का स्मरण, उनके महत्त्व का आकलन उसी तरह करते, मीरा हमें उसी तरह स्मरणीय होतीं, जैसे विद्यापति, सूरदास, जयदेव आदि आज हमारे लिए हैं। जाहिर है कि मीरा श्रीकृष्ण से अपने सम्बन्धों, उनके प्रति अपने प्रेम या भक्ति के नाते हमारी समकालीन नहीं हैं, उनके समकालीन होने का सन्दर्भ दूसरा है। स्त्री–विमर्श में भी मीरा की भागीदारी का सबब उनकी भक्ति या प्रेम नहीं, उनसे जुड़ी कुछ दूसरी बातें हैं। वस्तुतः मीरा हमारी समकालीन और चल रहे स्त्री–विमर्श की भागीदार हैं। अपने उस प्रतिरोध तथा विद्रोह के नाते, जो उन्होंने अपने ऊपर लगाई गई पाबन्दियों के खिलाफ किया। वे स्त्री–विमर्श में इस लिए हमारे साथ हैं कि सामन्ती जकड़बन्दी के बीच अपनी प्रेम–पिपासा की उन्होंने निष्कुंठ अभिव्यक्ति दी। उनके विद्रोह का सम्बन्ध है। लोक, राज परिवार तथा सम्बन्धियों द्वारा उन्हें दी गई यातना से, उन पर थोपी गई पाबन्दियों से जिन्हें मीरा ने अमान्य किया। यहाँ तक कि राजभवन को लात मारकर वे उससे बाहर आ गईं।

लोक, समाज, राज परिवार आदि ने मीरा के प्रति जो क्रूरता बरती, उसका सम्बन्ध हमारी उस सामाजिक संरचना से है, जिसके तहत जीवन–व्यवहार, मर्यादाओं तथा कर्त्तव्यों के नाम पर स्त्री के लिए एक नरक रचा गया हैः थोडे–से सुभाषितों की आड़ आजन्म, पराधीनता की एक नियति उसे दी गई है। स्त्री के वजूद को पूरी तरह नकारा गया है। उसे तरह–तरह की जंजीरों से बाँधा गया है।

मीरा ने साहस के साथ इस नरक का प्रतिकार किया, पाबन्दियों के खिलाफ बगावत की और व्यवस्था के प्रभुओं के इरादों का पर्दाफाश किया। अपने आक्रांताओं को उन्होंने पूरे मन से धिक्कारा। उनका नाम ले–लेकर उसे सबके सामने उजागर किया। उस समाज को भी मीरा ने लानत दी जिसने उन्हें बदनाम करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मीरा के पद साक्ष्य हैं कि कितनी कठोर यातनाओं से होकर उन्हें गुजरना पड़ा है।

''हेली म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाइ ।
सास लड़े मेरी, ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाइ ।
पहरो भी राख्यो, चौकी बिठाइयो ताला दियो जड़ाय ।
पूर्वजन्म की प्रीत पुराणी, सो क्यूं छोड़ी जाय ।।''

मीरा द्वारा लिखित ढेरों पद इसी तरह के हैं जिनमें विष का प्याला भेजने, पिटारी में सांप भेजने तथा यातना के दूसरे तरीकों का जिक्र मीरा ने किया है। समझा जा सकता है कि अपने आक्रान्ताओं के प्रति मीरा में कितनी घृणा, कड़वाहट तथा रोष है।

संत या भक्त के मन को निर्मल कहा गया है– व्यक्तिगत राग–द्वेष से परे, उदार और क्षमाशील मीरा की मनोभूमि ऐसी नहीं है। वे न तो अपने आक्रान्ताओं को जिन्दगी की आखिरी साँस तक भूल पाई हैं और ना ही क्षमा कर पाई हैं। उनके प्रति उनकी घृणा रह–रहकर भभकी और भभकती रही है। फिर भी मीरा संत और भक्त के रूप में मान्य हैं। निश्चय ही, संत और भक्त तो वे हैं, परन्तु इनके साथ–साथ एक औरत होने का अहसास भी उनमें बराबर रहा है। उनके पदों में संत और भक्त होने के साथ उनके औरत होने लाचार और निरीह औरत होने की पहचान भी जुड़ी हुई है। वस्तुतः औरत होने का यह अहसास ही मीरा को हमारे समय के स्त्री–विमर्श से जोड़ता है। यह सताई हुई और मीरा में बराबर जिन्दा रही है। मीरा ने उसे विचार के स्तर पर और संस्कार के स्तर पर अपने में, शिद्दत से जिलाए रखा है। जितना सच मीरा का संत या भक्त होना है, उनका औरत होना भी उतना ही बड़ा सच है। इस विन्दु पर सहज ही एक जिज्ञासा होती है।

इसके पहले हम कह चुके हैं कि अपने समय में मीरा की अपने ऊपर थोपी गई पाबंदियों के खिलाफ बगावत, वंश, कुल की मर्यादा को अमान्य कर पति की मृत्यु पर उनका सती न होना, सधवा की तरह सज–संवर कर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के समक्ष नाचना गाना, साहस का जोखिम का काम था, जिसे मीरा ने जोखिम उठाकर किया। परन्तु पदों का साक्ष्य देखें तो मीरा का यह विद्रोह उनका निजी व्यक्तिगत विद्रोह ही अधिक लगता है। वह व्यंजक है, परन्तु, है वह व्यक्तिगत विद्रोह ही हमें मीरा के ऐसे पद नहीं मिलते जिनमें उनका यह विद्रोह उनके 'स्व' से आगे जाकर स्त्री जाति की यातना और मीरा जैसी उसकी मनोकांक्षा से जुड़ा हो। बंधनों से अपनी 'मुक्ति' का आग्रह मीरा में है।

उस मुक्ति की आकांक्षा के तार स्त्री जाति की वैसी ही मुक्ति से सीधे नहीं जुड़ते। हम उन्हें स्त्री जाति की मुक्ति, पराधीनता से मुक्ति से जरूर जोड़ते हैं, परन्तु मीरा की मनोभूमि में भी, उनकी अपनी 'मुक्ति' के साथ स्त्री जाति की मुक्ति की भी चिंता या उससे उनकी संलग्नता थी या नहीं थी, इस विषय में जिज्ञासा बनी रहती है। मीरा की पदावली, जितनी ओर जो भी हैं, पूरी तरह प्रामाणिक नहीं है। जिज्ञासा होती है कि अपनी यातना, अपनी बेबसी, अपनी मुक्ति के साथ मीरा को क्या कभी स्त्री जाति की यातना, पराधीनता या मुक्ति की आकांक्षा की बात याद आई ?

मीरा के संदर्भ में इस तरह की जिज्ञासा स्वाभाविक है। मीरा का खुद औरत होना, उनका स्वतः यातना भोगना हमारी जिज्ञासा को एक आधार देता है।

हमारा वाङ्मय गवाह है कि स्त्री के बारे में मीरा के पहले जो कुछ लिखा गया, उसे लिखने वाले पुरुष थे, वे वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भवभूति, कोई भी हों। उनकी रचनाओं में स्त्री के ख्याति स्त्रियों के सीता, द्रौपदी, शकुन्तला आदि के जो भी बिम्ब उभरे हैं, उन पुरुष–रचनाकारों द्वारा निर्मित बिम्ब हैं। स्त्री उनकी रचनाओं में उनकी संवेदना, सहानुभूति, सब कुछ पा सकी है, परन्तु अन्ततः वह आर्यशास्त्रानुमोदित नियमों–मर्यादाओं के दायरे में ही बांधी गई हैं। उस सामाजिक संरचना का उन पुरुषों द्वारा समर्थन ही है, जिसमें स्त्री के लिये मुक्ति की बात को अमान्य किया गया है। वाल्मीकि की 'रामायण' देखें या व्यास की महाभारत यातना के कठिन दौरों से गुजरकर भी सीता– द्रौपदी तथा दूसरी नारियाँ जन्म–जन्म से उन्हीं पतियों को पाने की आकांक्षा रखती हैं। उन्हें ही परमेश्वर मानती हैं, जिनके द्वारा वे यातनाग्रस्त हुई हैं। कहा जा सकता है कि चूंकि ये पुरुषों द्वारा रचित कृतियाँ हैं। उनके पुरुष– मानस से स्त्री के ऐसे ही बिम्ब सामने आ सकते थे, जो उनके मन के अनुरूप हों, जैसा कि वे आए भी हैं।

परन्तु मीरा के यहाँ, मीरा के नाम पर जो कुछ संकलित है, वह मीरा का अपना रचा और गाया हुआ है। वह पुरुष की रचना न होकर एक स्त्री की रचना है, पहली बार एक स्त्री की रचना और उस स्त्री की रचना जो महज रचनाकार नहीं, भोक्ता भी है। उसने जो कुछ रचा–गाया है, अपने भोगे हुए को, सहन किए हुए को। ऐसी स्थिति में ही हमारी जिज्ञासा को आधार मिलता हैं कि क्या अपने जिए–भोगे को गाते, अभिव्यक्त करते हुए मीरा को, रचनाकार मीरा को, अपने साथ–साथ स्त्री जाति का दुख, उसकी पराधीनता, उसके द्वारा भोगा और सहा जाना तथा जिन बंधनों में स्त्री जकड़ी है, उनसे स्त्री जाति की मुक्ति की आकांक्षा भी कभी याद आई? अपनी यातना में, मुक्ति की अपनी आकांक्षा में, क्या वे स्त्री जाति की यातना, मुक्ति की उसकी आकांक्षा को भी देख सकीं? अपनी यातना को क्या स्त्री जाति की बृहत्तर यातना से वे जोड़ सकी? जिज्ञासा इसलिए ताकि मीरा को हम समग्रता में जान सकें।

इसी से जुड़ी हुई एक जिज्ञासा और भी मीरा के पद–उनकी दो तरह की जीवन–स्थितियों में रचे–गाये गए पद हैं। एक, जब वे राजमहल की चहारदीवारी के भीतर–बंधन की स्थितियों में रच और गा रही थीं, दूसरे– राजमहल छोड़ देने के बाद से द्वार का तक मृत्युपर्यंत उनके द्वारा रचे और गाए गये पद, जब वे अपेक्षाकृत मुक्त, बंधनों की जद से बाहर आ गई थीं। कहते हैं राजमहल छोड़ देने के बाद भी राजपरिवार ने मीरा पर सदैव दबाव बनाये रखा। उन्हें चैन से नहीं रहने दिया। कहा तो यहाँ तक गया है, और जो संभावित भी हैं कि द्वारका में कृष्ण की मूर्ति के आगे मीरा के अन्तर्धान हो जाने की कथा, सिर्फ कथा ही है। वस्तुतः मीरा की वह हत्या थी। वास्तविकता जो भी हो, राजमहल के बाहर आकर मीरा अपेक्षाकृत अपनी मनोवांक्षित जमीन पर आ गई थीं। जिज्ञासा है कि क्या दो जीवन स्थितियों में लिखे रचे गए इन पदों की अलग से शिनाख्त की गई है, ताकि दोनों को समानान्तर रखकर जाना जा सके कि भिन्न जीवन स्थितियों में रचे–गाये गए इन पदों में क्या मीरा की मनोभूमि में कुछ अन्तर दिखाई पड़ता है? राजमहल से बाहर आकर क्या वे श्रीकृष्ण के प्रेम भाव में ही डूब कर रह गई अथवा अपनी मनोवांछित जमीन पा जाने के बाद उन्हें स्त्री जाति की यातना भी याद आई? क्या उन्होंने पुरुष वर्चस्व वाले समाज के समक्ष वैसे ही कुछ सवाल खड़े किए जैसे तब खड़े किए थे जब वे बंधन में थीं?

इन जिज्ञासाओं के मूल में हमारा आशय महज इतना जानना ही है कि क्या मीरा की यातना, उनका विद्रोह, पराधीनता की नियति से मुक्त होने की उनकी इच्छा, उनकी तड़प, स्त्री जाति की वैसी ही यातना, पराधीनता या मुक्ति की आकांक्षा से जुड़ती है, खासतौर से मीरा की अपनी पहल पर ?

हम जानते हैं कि मीरा राजपरिवार से जुड़ी हुई स्त्री थीं, विवाह के पहले भी और विवाह के बाद भी । श्रीकृष्ण के प्रति उनके एकल प्रेम भाव और भक्ति से भी हम परिचित हैं। हम उस समय को भी पहचानते जानते हैं जिसे

मीरा जी रही थीं। उस समय की स्थितियों से भी हम अनभिज्ञ नहीं हैं। हमें ज्ञात है कि मीरा या उस समय के कोई भी संत या भक्त, हमारे अपने समय की तरह के कोई सामाजिक कार्यकर्ता नहीं थे, ना ही मीरा स्त्री–मुक्ति की कोई (Activist) थीं जो स्त्री जाति की मुक्ति का कोई आन्दोलन छेड़ती और उसका नेतृत्व करतीं। अपने समय की स्थितियों में खींचकर हम मीरा को अपनी मनोभूमि के अनुरूप ढालने का प्रयास भी नहीं कर रहे। मीरा के अपने समय में जो था, उसकी कसौटी पर हम मीरा को नहीं परखना चाहते।

हम बस इतना जानना चाहते हैं कि एक स्त्री होने के नाते, अपने कहे लिखे गाये गये में क्या मीरा ने ऐसा भी कुछ लिखा जो उनकी अपनी निजी यातना या आकांक्षा से आगे स्त्री जाति की यातना और आकांक्षा से भी जुड़ सका हो, एक वृहत्तर इयत्ता पा सका हो। यदि मीरा के ऐसे पद हमें मिलें तो मीरा के महत्त्व का संदर्भ भी बड़ा हो जाता है। मीरा की समकालीनता तो गाढ़ी होती ही है–मीरा अपने समय संदर्भ से हमारे समय संदर्भ तक अंधकार में एक प्रखर ज्योति रेखा की तरह भास्वर हो उठती है।

एक अंतिम और जरूरी बात और जिस भेदभावपूर्ण सामाजिक संरचना के तहत अपने समय में मीरा ने बहन कछ महा और भोगा–तमाम प्रतिरोधों के बावजूद, वह सामाजिक संरचना न केवल बरकरार है, पहले से भी अधिक पीड़क हुई है। व्यवस्था के पंजे और मजबूत हुए हैं और उसके नाखून और दाँत और भी पैने वह पहले से अधिक शातिर भी हुई हैं।

कबीर हों, मीरा हों, प्रतिरोध सबने किया परन्तु कुछ भी, इसलिए नहीं बदला कि मात्र सदिच्छाओं से या पीड़ा की वैयक्तिक अभिव्यक्तियों से, समाज नहीं बदला करता। सामाजिक परिवर्तन जिन स्थितियों और जिन शक्तियों के तहत होता है, न तो वैसी स्थितियाँ उस समय थीं, ना ही वैसी शक्तियाँ। दूसरे, कबीर हों, अन्य संत हों या मीरा, उनके अपने सोच–विचारगत और व्यवहारगत अन्तर्विरोध भी थे, जिनके चलते भी यथास्थिति को बल मिला। चली आ रही व्यवस्था के कुछ पहलुओं को विचार और आचरण के स्तर पर जरूर इन लोगों ने चुनौती दी, परन्तु व्यवस्था के कुछ दीगर पहलू संस्कार बनकर उनके विचारों में घुले–मिले भी रहे, जिन्होंने उनकी सोच को भी प्रभावित किया और आचरण को भी । व्यवस्था की शातिर निगाहों ने उन्हें उनके समय में भी भाँपा और आज भी उन्हें भाँप रही है। व्यवस्था के प्रभुओं ने उनके अन्तर्विरोध को उनके समय में भी अपने हक में भुनाया और आज भी भुनाने पर आमादा है।

इन संतों का, मीरा का, कहा हुआ, आचरित, जो भी व्यवस्था के हित में जाता है, व्यवस्था ने तब भी उसे (Highlight) किया और आज भी (Highlight) कर रही है। इन संतों का और मीरा का, जो कुछ भी कहा रचा गया, व्यवस्था के हित में नहीं रहा, व्यवस्था के प्रभुओं ने तब भी उसे दबाने की, हाशिए पर डालने की, विरूप करने की, अपने ढंग से व्याख्यायित करते हुए (Appropriate) करने की कोशिश की, आज भी कर रहे हैं। कबीर के साथ यह हुआ और हो रहा है। मीरा के साथ भी ऐसा ही हुआ और हो रहा है। सच कहा जाय तो व्यवस्था द्वारा मीरा का 'अप्रोपिएशन' (अनुकूलीकरण) आसान भी है।

मीरा की पदावली को देखें, पढ़ें, और विचार करें, तो स्पष्ट होगा कि एक औरत होने के अहसास से ही नहीं, औरत होने के नाते अपने कमजोर, निरीह, असमर्थ और लाचार होने के अहसास से भी मीरा की मनोभूमि काफी–कुछ आच्छादित और आक्रांत है। अबला होने का अहसास उन पर इस कदर हाबी है कि वे बार–बार अपने प्रभु या प्रियतम से अपनी रक्षा की गुहार लगाती हैं। श्रीकृष्ण पर उनकी निर्भरता तथा रक्षा का भरोसा इस नाते भी है कि जिन परिस्थितियों में वे थीं, उन स्थितियों से उन्हें उबारने वाला उन्हें श्रीकृष्ण के अलावा कोई दूसरा नहीं दिखाई देता। श्रीकृष्ण से उनका सम्बन्ध भक्त का प्रियतमा का और पत्नी का भी है और श्रीकृष्ण प्रभु, हों, प्रेमी हों, पति हों, अन्ततः पुरुष ही हैं– हर स्थिति में मीरा के संरक्षक, और उद्धारक। परम्परा भी ऐसा ही मानती हैं।

मीरा प्रपत्ति की, शरणागति की इस हद तक पहुँची हुई है कि अपने समूचे वजूद को अपने, प्रभु प्रेमी या पति पर निछावर किए हुए हैं। सारी तन्मयता, सरा समर्पण, सारा राग उन्हीं की ओर से है। भक्ति के स्तर पर तो भक्त के प्रभु समक्ष इस तरह के एकान्त समर्पण की बात समझी जा सकती है, परन्तु प्रेमिका या पत्नी के रूप में, प्रियतम या पति के प्रति ऐसा समर्पण–भाव, ऐसी निर्भरता कुछ हैरान और परेशान करती है। इस नाते कि व्यवस्था को ऐसे समर्पण में अपने अनुकूल बहुत कुछ मिल जाने और अपने हित में उसका इस्तेमाल करने की बेहद संभावना है।

मीरा का ऐसा समर्पण भाव व्यवस्था को मौका देता है कि वह उसे सामाजिक जीवन–व्यवहार के तहत स्त्री के पुरुष के प्रति, पत्नी के पति के प्रति समर्पण भाव के रूप में, एक आदर्श के रूप में प्रचारित और व्याख्यायित करें। स्त्री

जाति को यह संदेश दे कि पुरुष के बिना स्त्री की तथा पति के बिना पत्नी की और कोई गति नहीं है। स्त्री के अस्तित्व की शर्त पुरुष के प्रति उसकी निर्भरता है। व्यवस्था को मौका मिलता है कि मीरा के साक्ष्य पर स्त्री पुरुष या पति पत्नी के ऐसे संबंध को वह वैध साबित करें।

हमारी यह सोच किसी को अतिरंजित लग सकती है, परन्तु व्यवस्था का इतिहास साक्षी है कि उसने स्त्री की कमजोरी को हमेशा अपने हित में भुनाया और इस्तेमाल किया है।

मीरा अपने प्रियतम से, अपने मन चाहे पति से कभी बराबरी के स्तर पर नहीं बतियातीं। वे उनके प्रति अपने एकांत समर्पण में ही सुख मानती हैं। 'गुलामी के इस सुख' को वे अपना सौभाग्य मानती हैं। वे अपने प्रभु या प्रियतम या पति—परमेश्वर की चाकरी के लिए सहज प्रस्तुत है— 'प्रभु जी, म्हाने चाकर राखो जी।' प्रभु की, प्रियतम की चाकर बनने में अपने वजूद को वे यहाँ तक भुला देती है कि उनका प्रभु उनका प्रियतम, उन्हें जिस तरह रखें, जो भी खिलाए — पहिनाए, जहाँ भी रखे, वे उस तरह रहने, खाने—पहनने और वहाँ रहने को तैयार हैं। वह उन्हें बेचे, तो वे बिकने के लिए भी प्रस्तुत है। ''हमारे धर्मशास्त्रों में स्त्री को जिन मर्यादाओं में बाँधा गया है, वे यही मर्यादाएँ हैं। संस्कार बनकर स्त्री—मानस में वे इस तरह घुलमिल गई हैं कि उनसे उबर पाना, जितना स्त्री—मानस के लिए कठिन है, मीरा के लिए भी। अपने एक पद में (काश, यह पद प्रक्षिप्त हो) मीरा यहाँ तक कह गई हैं कि अपना पति, अपना ही है, वह कोढ़ी—कुष्टी ही क्यों न हो—

''छैल विराणों लाख को है, अपने काज न होइ ।
ताके संग सीधारती है, भला न कहसीं कोइ ।।
वर हीणों अपनो है, कोढ़ी—कुष्ठी कोइ।
जाके संग सीधारती है, भला कहैं राब लोइ ।।''

स्त्री के संदर्भ में समर्पण की यह नियति, गुलामी का यह सुख, इस सुख से स्त्री की यह रजामंदी ही हमारी हैरानी और परेशानी का कारण है। कहने की जरूरत नहीं कि स्त्री मुक्ति की वही सबसे बड़ी बाधा भी है।

मुक्ति कैसी भी हो, किसी की भी हो, एक साथ और एक बार में होती है। किश्तों में मुक्ति नहीं हुआ करती। चल रहे स्त्री विमर्श में सक्रिय और उसके साथ चलने वाले सोचें 'गुलाम होने के सुख' पर मीरा को मुक्ति की इस आकांक्षा और अभियान में प्रतिरोध की मिसाल के रूप में प्रस्तुत करने वाले (प्रतिरोध की मिसाल मीरा है) सोचें और समझें कि मुक्त मीरा को ही नहीं होना है, स्त्री जाति की मुक्ति होनी है। मीरा तो प्रतिरोध में हैं" मुक्त होंगी, जैसा कि वे हुई', पर मीरा की मुक्ति से ज्यादा अहम सवाल हमारे लिए, मुक्ति के अभियान में लगे हुए लोगों के लिए, यह होना चाहिए कि मीरा की उस सास और ननद की मुक्ति भी स्त्री—मुक्ति के अभियान से जुड़ी हुई है। मुक्त उन्हें भी होना है, जिनके लिए सचमुच गुलाम होने का सुख बहुत बड़ी न्यामत है। बिना उनके मुक्त हुए, मीरा की, या किसी अन्य की, किसी समुदाय की, मुक्ति का कोई मतलब नहीं। मुक्ति का यह अभियान कितना जटिल है, आसानी से समझा जा सकता है।

व्यवस्था बहुत शातिर है। मीरा के अपने 'परमेश्वर पति के प्रति समर्पण को स्त्री जाति के सामने 'पति—परमेश्वर' के प्रति समर्पण के रूप में व्याख्यायित कर ले जाना उसके लिए बहुत सहज है। धर्म शास्त्र स्त्री को, पति को परमेश्वर मानने की ही सीख तो देते हैं। समकालीन स्त्री—विमर्श में मीरा की भागीदारी जरूरी है। मीरा ने अपने समय में, अपनी सीमाओं में जो किया, बड़ा काम था। संतों ने प्रतिरोध की जो बानी बोली उसका भी हमारे लिए महत्त्व है। व्यवस्था न कबीर बदल सके न मीरा। उनके लिए यह संभव भी न था। उनका महत्त्व इस बात में है कि मुक्ति के सपने को उन्होंने पराधीनों की आँखों में जीवित रखा। नई सदी में भी वह उनकी आँखों में जीवित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, स्त्री विमर्श में मीरा (कुछ प्रश्न, कुछ जिज्ञासाएँ), राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली—110002, पृष्ठ—253—254।
2. वही, पृष्ठ—255—256।
3. भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, स्त्री विमर्श में मीरा (कुछ प्रश्न, कुछ जिज्ञासाएँ), राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली—110002, पृष्ठ—257—258।
4. वही, पृष्ठ—259—261।

◈◈

ISSN : 2349-9273

वर्तमान भारतीय परिवेश में महिला सशक्तिकरण : एक आवश्यकता

– सबीहा अंजुम
असि. प्रोफेसर – बी. एड. विभाग,
दयानन्द गर्ल्स (पी.जी.) कालेज,
कानपुर – 208001 (उत्तर प्रदेश)

ई–मेल–
sabiha.afzal7869@gmail.com

सारांश

वैदिक काल में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई. पू. से स्त्री शिक्षा की अवनति आरम्भ हो गई थी। बौद्ध धर्म ने सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया। मुस्लिम काल में सामान्य रूप से स्त्रियों की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की गई। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था। वुड के आदेश पत्र ने भारतीय शिक्षा को सरकार के अधीन करके उसे जंजीरों से जकड़ दिया, उस पर विदेशी ढाँचे को थोपकर प्राचीन शिक्षा पद्धतियों का नामोनिशान मिटा दिया और धर्म को शिक्षा से सदैव के लिए विदा करके, शिक्षा के प्रचीन आदर्श की बुनियाद को हिला दिया। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन भी प्रारम्भ किया गया वनस्थली की शिक्षा भारतीय नारी–जीवन के पुनर्निमाण की एक पूर्ण तथा सराहनीय योजना केवल महिलाएं ही नारियों में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकती हैं। महिला का अर्थ है– महान एवं शक्तिशाली। समाज में महिला सशक्तिकरण की आवश्यकता है।

वैदिक काल में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी और वे पुरुषों के साथ यज्ञ में भाग लेती थीं। प्राचीन काल में अनेक विदुषी स्त्रियाँ थीं। यथा– ओशा, गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, विश्ववरा, शकुन्तला और अनुसुइया। बालिकाओं को धर्म और साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, काव्य रचना, वाद–विवाद आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। उनके शिक्षा अधिकतर अपने परिवारों में अपनी माता, भाई–बहन या कुल–पुरोहित के द्वारा दी जाती थी। यद्यपि बालिकाओं के द्वारा पृथक विद्यालयों की व्यवस्था नहीं थी तथापि सह–शिक्षा का कुछ सीमा तक प्रचलन था। उदाहरणार्थ– आत्रेयी ने लव और कुश के साथ वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। बालिकाओं और स्त्रियों को 200 ई.पू. तक शिक्षा की सभी सुविधायें प्राप्त थीं, पर उसके बाद उनकी शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिससे उनकी शिक्षा अवरुद्ध हो गई। इस सम्बन्ध में डॉ. ए. एस. अल्तेकर के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं– ''धर्मशास्त्र युग (200 ई.पू. – 500 ई.पू.) में बालिकाओं के लिए विवाह की आयु को कम करके 12 वर्ष तक कर दिया गया और स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन के निषेध कर दिया गया। इससे उनकी शिक्षा को प्रबल आघात पहुँचा।''

वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई.पू. से स्त्री–शिक्षा की अवनति आरम्भ हो गई थी। महात्मा बुद्ध के कारण इस शिक्षा को नवजीवन प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य, आनन्द की प्रार्थना स्वीकार करके,

स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। इसके फलस्वरूप स्त्री शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ। स्त्रियों ने संघ में प्रवेश करके उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की और कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिद्वन्दिता करके उनसे समानता रखने का प्रमाण दिया। किन्तु यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि स्त्री शिक्षा की सामान्य रूप से प्रगति हुई है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बौद्ध धर्म ने कुलीन और व्यवसायी स्त्रियों की शिक्षा को जिनकी संख्या प्रायः नगण्य थी प्रोत्साहन दिया, पर सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया। डॉ. ए. एन. अल्तेकर का अग्रांकित वाक्य में अमर सत्य है – ''स्त्री शिक्षा को बौद्ध धर्म से किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त न हो सकी।''

पर्दा प्रथा के कारण केवल छोटी आयु की बालिकाएं मकतबों में जाकर बालकों के साथ विद्या का अर्जन करती थीं, पर उन्हें कुछ ही समय के बाद यह कार्य स्थगित करना पड़ता था। उनके उच्च शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध नहीं थी, क्योंकि राज्य या समाज की ओर से उनके लिए पृथक शिक्षा संस्थाओं की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। फलस्वरूप निम्न और निर्धन वर्गों की बालिकाएं या तो ज्ञान प्राप्ति के लाभ से वंचित रह जाती थीं या उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प पढ़ने और लिखने तक सीमित रह जाता था।

मालवा के शासक गयासुद्दीन तुगलक जिसने सन् 1469 से 1508 तक शासन किया, सारंगपुर में सभी वर्गों की बालिकाओं के लिए एक मदरसे की स्थापना की। फरिश्ता के अनुसार– ''इस मदरसे में बालिकाओं को नृत्य, संगीत, सिलाई–बुनाई, बढ़ईगिरी, सुनारगिरी, लुहारगिरी, जूते बनाना, मखमल बनाने, रणक्षेत्र कला आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनकी शिक्षा का भार उनके अभिभावकों को वहन करना पड़ता था। अतः केवल धन सम्पन्न व्यक्ति ही अपनी बालिकाओं को इस विद्यालय में अध्ययन के लिए भेज पाते थे।''

राजघरानों और कुलीन परिवारों की बालिकाओं और स्त्रियों को उनके निवास स्थान पर ही व्यक्तिगत रूप से शिक्षा दी जाती थी। उनको धर्म एवं साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत एवं अन्य ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी, किन्तु इनकी तुलना में उन सामान्य स्त्रियों की संख्या अधिक थी, जो अशिक्षित थीं। वस्तुस्थिति यह थी कि जब राजघरानों और कुलीन परिवारों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ। अतः वे शिक्षा से रंचमात्र भी लाभान्वित नहीं हुई। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मुस्लिम काल में सामान्य रूप से स्त्रियों की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की गई। इसका परिणाम बताते हुए टी. एन. सिक्वेरा ने लिखा – ''स्त्रियों की शिक्षा पढ़ने और लिखने की न्यूनतम तत्वों की संकुचित स्थिति में पहुँच गई थी।''

31 दिसम्बर, 1600 से लेकर लगभग 150 वर्ष तक कम्पनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार करना था। सन् 1757 से प्लासी की विजय और सन् 1765 में शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने के पश्चात् इस देश के पर्याप्त भू–भाग के शासन की बागडोर कम्पनी के हाथ में आ गई और उसकी सत्ता ने राजनीतिक रूप धारण किया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था। कुछ समय पश्चात् स्त्री–शिक्षा का प्रचार केवल कुछ उदार विचार वाले और धनी हिन्दू परिवारों में था। मुसलमानों में स्त्री शिक्षा को अशुभ समझा जाता था।

एडम वेप्टिस्ट मिशन का मान्य सदस्य तथा सच्चा जनसेवक था। भारतीयों के नैतिक एवं सामाजिक पतन को देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया था। वह अन्तःकरण से शिक्षा प्रसार द्वारा उनका मानसिक विकास तथा चारित्रिक उत्थान चाहता था। एडम को विश्वास था कि उसकी योजना को राष्ट्रीय व्यवस्था की आधारभूत योजना बनाया जा सकता था। उसकी इच्छा थी कि सरकार इस योजना पर क्रियात्मक पग उठाये। परन्तु मैकाले ने उसकी सब आशाओं पर पानी फेर दिया। उसने इस योजना के ऑकलैण्ड के समक्ष रखी गयी, तो उसने इसे अस्वीकृत कर दिया।

वुड के आदेश पत्र 1854 में यह सिफारिश की गई कि स्त्री शिक्षा को उदारतापूर्वक सहायता अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाए। आदेश पत्र में उन व्यक्तियों की सराहना की गई। जिन्होंने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए धन दिया था परन्तु सन् 1854 के 'आदेश–पत्र' ने भारतीय शिक्षा को सरकार के अधीन करके उसे जंजीरों से जकड़ दिया और उस पर विदेशी ढाँचे को थोपकर प्राचीन शिक्षा पद्धतियों का नामोनिशान मिटा दिया और धर्म को शिक्षा से दैव के लिए विदा करके शिक्षा के प्राचीन आदर्श की बुनियाद को हिला दिया।

बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन भी प्रारम्भ किया गया देश के नेताओं ने प्रचलित शिक्षा प्रणाली से असन्तुष्ट होकर राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था के लिए राष्ट्रीय विद्यालयों का निर्माण प्रारम्भ किया। इन्हीं विद्यालयों में वनस्थली

विद्यापीठ का स्थान है। पं. हीरालाल शास्त्री की एक पुत्री थी जिसका नाम शान्तिबाई था। 1934 में जब शान्तिबाई बारह वर्ष की थी, तब एक दिन उसने यह इच्छा प्रकट की कि वह बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक विद्यालय स्थापित करेगी। दुर्भाग्यवश 1935 में अकस्मात् ही उनकी मृत्यु हो गई और उनकी इच्छापूर्ण न हो सकी। अपनी एक मात्र पुत्री की अभिलाषा को पूर्ण करने के उद्देश्य से पं. हीरालाल शास्त्री ने अक्टूबर, 1935 में 'जीवन कुटीर' में एक 'शिक्षा कुटीर' को जन्म दिया। 1936 में इस 'शिक्षा कुटीर' का नाम 'राजस्थान बालिका–विद्यालय' रखा गया और 1942 से वह वनस्थली विद्यापीठ के नाम से विख्यात हुआ। 1983 ई. में इस विद्यापीठ को विश्वविद्यालय स्तर प्राप्त हो गया। 1935 में इस विद्यालय का शिक्षण कार्य मात्र 'बालिकाओं से प्रारम्भ किया गया था आज इसमें लाख छात्रायें हैं। वे देश के विभिन्न भागों, वर्गों तथा जातियों की हैं। प्रारम्भ में विद्यालय के सभी भवन कच्चे थे परन्तु आज वहाँ सभी प्रकार की आवश्यक सुविधायें उपलब्ध हैं। 'बालिका विद्यापीठ' बालिका शिक्षा का अखिल भारतीय केन्द्र हैं, इसमें शिशु शिक्षा से लेकर स्नातकोत्तर स्तर सहित अनेक अन्य पाठ्यक्रमों की व्यवस्था है। वनस्थली विद्यापीठ की एक अनुपम विशेषता है उसकी पंचमुखी शिक्षा यह बालिकाओं का सर्वतोन्मुखी विकास करने के लिए एक अनोखी शिक्षा योजना हैं। इस योजना के अनुसार उनको निम्नलिखित प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का आयोजन किया गया है – (1) शारीरिक शिक्षा (2) बौद्धिक शिक्षा (3) प्रायोगिक शिक्षा (4) कला की शिक्षा (5) नैतिक शिक्षा।

इसमें बालिकाओं को पाश्चात्य विषयों की शिक्षा भारतीय आदर्श के अनुसार दी जाती हैं। भारतीय परम्पराओं तथा भारतीय संस्कृति से अवगत कराके उन्हें स्त्रियों के उच्च दायित्वों तथा कर्तव्यों की भावना से सराबोर कर दिया जाता है। सारांश में वनस्थली की शिक्षा भारतीय नारी–जीवन के पुननिर्माण की एक पूर्ण तथा सराहनीय योजना है।

केवल महिलायें ही नारियों में अभूतपूर्व परिवर्तन ला सकती हैं। महिलाओं ने व्यक्तिगत रूप से नारी शक्ति को विकसित करने के लिए अनेक प्रयास किये। महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी व्यक्तिगत शक्ति का प्रदर्शन किया। महाराष्ट्र के लोग राजनीति के क्षेत्र में अहिल्याबाई होल्कर का नाम हमेशा याद रखेंगे। झाँसी की महारानी का नाम पराक्रम के क्षेत्र में प्रसिद्ध है। ऐसे अनेक उदाहरण देखे गये हैं लेकिन अब आने वाला समय मुख्य रूप से महिलाओं का युग होगा। सम्पूर्ण समाज आशा कर रहा है कि नारी की आध्यात्मिक शक्ति अवश्य ही जाग्रत होगी। संसार में कोई भी समस्या एकता के अभाव में हल नहीं की जा सकती है। एकता के बिना शान्ति को कभी स्थापित नहीं किया जा सकता, इसलिए सम्पूर्ण विश्व एक होगा हमने तो प्राचीन काल से ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव रखा। आज संसार एक होने के लिए तैयार है। अब यदि ऐसा हो रहा है तब आगामी समय अहिंसा का युग होगा। अहिंसा के गुण में नारी शक्ति ही सर्वश्रेष्ठ होगी। यद्यपि आत्मा के दृष्टिकोण से पुरुष और स्त्री के मध्य कोई भेद नहीं होता है। फिर भी अहिंसा की शक्ति महिला की अपेक्षा पुरुष में कम होती है। कुछ पुरुष पूर्ण अहिंसावादी होते होंगे। लेकिन दया एवं क्षमा के गुण मुख्य रूप से सशक्त महिलाओं में ही पाये जाते है। महिला का अर्थ है महान एवं शक्तिशाली यह एक महान शब्द हैं। यह शब्द दर्शाता है कि भारत का नारी के प्रति क्या दृष्टिकोण है।

स्वतंत्र भारत की नारी का सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है। जिन बंधनों में वह बंधी हुई थी वे धीरे–धीरे ढीले होते जा रहे हैं। जिस स्वतंत्रता से उसे वंचित कर दिया गया था वह उसे पुनः प्राप्त हो रही है। उसके सम्बंध में पुरुषों का दृष्टिकोण बदल रहा है। भारतीय संविधान ने भी नारी को समकक्षता प्रदान करते हुए घोषित किया– ''राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमे से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।''

सन् 1983 में बना अपराधिक दण्ड संहिता अधिनियम तथा महिला का अश्लील प्रस्तुतीकरण विरोध कानून 1986 का प्रचार–प्रसार तेज करना चाहिए। यहाँ पर यह स्मरणीय है कि जितना विशाल यह कार्य है उसके लिए यही पर्याप्त नही है कि इस क्षेत्र में केवल सरकारी मशीन ही कार्य करें, इसके लिए यह भी आवश्यक है कि स्वयंसेवी संस्थाएं आगे आएं और स्त्रियों को उन कानूनों के प्रावधानों से अवगत कराये, जिनके लाभ उन्हें मिल सकते हैं। बालिकाओं की शिक्षा हेतु राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में निम्नलिखित उपाय सुझाये गये–

(1) बालिकाओं की शिक्षा के लिए परिवेश का निर्माण करना।

(2) औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए सुविधा बढ़ाना।

(3) वर्तमान कार्यक्रम का विस्तार एवं अनेक

सहायता कार्यक्रम को प्रारम्भ किया जाए जिससे स्वयंसेवी संगठन, सम्पूर्ण मानव शक्ति का सहयोग लिया जाये।

आचार्य विनोबा भावे जी महिला शक्ति में महान् विश्वास रखते थे। वह महिला और पुरुष के मध्य किसी भी विभेद के विरुद्ध थे। आज विज्ञान के इस युग में महिला को घर की चार दीवारों में बन्द करके रखना अन्यायपूर्ण है। हमें अधिक से अधिक नारियों को ज्ञान प्रदान करने के लिए 'ब्रह्मविद्या' से जोड़ना चाहिए अपने पड़ोसी को प्रेम करना प्रयोगात्मक धर्म है। मानव को विकास करने और जीवन में सुख की अनुभूति करने के लिए यह आवश्यक है। जीजस ने कहा है– ''जैसा तुम स्वयं से प्रेम करते हो वैसा ही अपने पड़ोसी से भी करो'' वह तब तक सम्भव नहीं है जब तक हम ब्रह्मविद्या को प्राप्त नहीं कर लेते हैं। भारत में यदि कोई कहता है कि 'अपने पड़ोसी को प्रेम करो' तो वह तुरन्त ही इसका कारण पूछेगा। हमें प्रेम करना चाहिए– यह समझना सरल है कि लेकिन यह प्रेम कैसे बढ़ाना चाहिए, हमें प्रेम करना चाहिए प्रश्न यह उठेगा क्योंकि यह देश ब्रह्मविद्या की भूमि है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह विलुप्त हो रही है जब कि हम अपने दर्शन को खोजने पर पायेंगे कि यह कभी न समाप्त होने वाले प्रवाह के रूप में होगी। यह एक उच्च विचार है, इसलिए सम्पूर्ण विश्व के अच्छे व्यक्ति अवश्य ही इससे प्रेरणा लेंगे, लेकिन यह इसका पूर्ण पाठ्यक्रम नही होगा। मैंने ब्रह्मविद्या मन्दिर के लिए निश्चय किया। भक्ति, शक्ति से अधिक महान है। मेरे पास पूर्ण शक्ति नही है कि किन्तु इस विचार के लिए निश्चय ही मेरे पास पूर्ण भक्ति है। अब इस भक्ति पर बल देते हुए ब्रह्मविद्या मन्दिर की खोज की गई है।

एक ब्रह्मचारी को यह अनुभव नहीं करना चाहिए कि वह एक महिला को नहीं देख सकता है। इसके सन्दर्भ में मेरे मस्तिष्क में रामायण की एक कथा आती है। श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को सीता के आभूषण दिखाये और उनसे पूछा कि वह उनको पहचानते हैं। जब रावण सीता को ले जा रहा था, तो सीताजी ने अपने कुछ आभूषण नीचे गिरा दिये थे ताकि रामचन्द्र जी पहचान सके कि उन्हें किधर ले जाया गया है। लक्ष्मण ने उत्तर दिया – मैं भुजाओं और मुख के आभूषण को नहीं पहचान सकता मैं तो केवल पैरों के आभूषणों को ही पहचान सकता हूँ क्योंकि मैंने उनको प्रतिदिन देखा जब मैं उनके चरणों की पूजा करता था। रामचन्द्र जी ने स्वयं लक्ष्मण से कहा कि वह स्वयं सीता के आभूषणों को नहीं पहचान सकते यद्यपि वह उनके पति थे। इसका अर्थ यह है कि सीता और राम दोनों ही अछूते (ब्रह्मचारी) थे। किसी ने भी एक–दूसरे को गृहस्थी के रूप में नहीं देखा लेकिन वे एक–दूसरे को ब्रह्म के रूप में देखते हुए वर्षों तक साथ–साथ रहे।

आज वर्तमान भारतीय परिवेश में देश और समाज की सर्वांगीण उन्नति के लिए वैदिक युग के समान ही नारियों को अवसर प्रदान करते हुए महिलाओं के सशक्तिकरण की अत्यधिक आवश्यकता है। ऐसा शोधार्थी का विश्वास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्यागी गुरसरणदास, 'भारतीय शिक्षा का परिदृश्य', डॉ. रागेय राघव आर्य, आगरा–2।
2. तरण, डॉ. हरिवंश 'विश्व के महान शिक्षाशास्त्री' दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली।
3. पाण्डेय, डॉ. रामशकल पाण्डेय – 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक' अग्रवाल पब्लिशंस, निर्भय नगर, आगरा।
4. टण्डन विश्वनाथ 'आचार्य विनोबा भावे', बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इण्डिया, सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी।
5. भारतीय संविधान की धारा 15 के अनुसार।
6. 'भावे आचार्य विनोबा' – 'वूमेन्स पावर' सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी।
7. राजकुमार 'भारतीय नारी – सामाजिक अध्ययन', अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

◈◈

ISSN : 2349-9273

उत्तराखण्ड की बुक्सा जनजाति की सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था का विश्लेषण

– डॉ. शेफाली शुक्ला
एसोसिएट प्रोफेसर –
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
न्यू टिहरी, टिहरी–गढ़वाल,
पिन– 249001 (उत्तराखण्ड)

ई–मेल :
sefalishukla06@gmail.com

सारांश

जनजातीय समाजों में सामाजिक संगठनों को निर्मित करने वाले समूहों में स्थानीयता के आधार पर बने समूह अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। जनजातीय समुदायों का अपना एक विशिष्ट संगठन होता है जिसमें अपनापन, घनिष्ठता, नातेदारी और सहयोग का विशेष महत्व होता है। वर्ष 1967 में भारत सरकार द्वारा पाँच जनजातियों को अनुसूचित जनजातियाँ घोषित किया गया जिनमें 'बुक्सा' जनजाति भी शामिल है। बुक्सा जनजाति के लोग प्रमुख रूप से उत्तराखण्ड के नैनीताल, देहरादून तथा पौड़ी जिलों में निवास करते हैं। सन् 2011 की जनगणना के मुताबिक इस जनजाति की संख्या 67906 है। शारीरिक संरचना के आधार पर एक औसत बुक्सा व्यक्ति की लम्बाई सामान्यतः (5′ 4′′ से 5′ 8′′) के लगभग होती है तथा चेहरा चौड़ा आँखे तिरछी, नाक चपटी होती हैं। यह जनजाति एक समय बहुत सम्पन्न थी तथा पर्याप्त कृषि भूमि के मालिक थे किन्तु गलत आदतों के कारण काफी कृषि भूमि इनके हाथ से निकल गई। यह जनजाति मुख्य रूप से कृषक जनजाति मानी जाती है किन्तु शराब की लत तथा बुरी आदतों के कारण ये अधिकांशतः भूमिहीन हो गए हैं, जिसके कारण इनके सम्मुख आजीविका का संकट उत्पन्न होने के कारण इन्हें दूसरे की भूमि पर कार्य करना पड़ रहा है। कृषि के अलावा पशुपालन, मछली पालन, जैसे कार्य भी इस जनजाति के लोग प्रमुखता से करते हैं। बुक्सा जनजाति में महिलाओं को सम्मानजनक मिलता स्थान है तथा परिवार में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अमीर हसन (1979) ने बुक्सा जनजाति को सबसे अधिक हिन्दू कृत जनजातियों में से एक माना है। उत्तराखण्ड में बुक्सा जनजाति ढाँचा काफी संतुलित है। यह जनजाति बहुत मेहनती होती है तथा वर्तमान में आधुनिकीकरण तथा शिक्षा के प्रचार–प्रसार के कारण बुक्सा जनजाति के लोग अपने पारम्परिक व्यवसाय के अलावा नौकरी भी कर रहे हैं तथा प्रशासन से लेकर नियली सेवाएं भी प्रदान कर रहे हैं।

मुख्य शब्द – बहुल, वंशानुगत, मानवमितीय, कृषक, तराई, आस्था।

उत्तराखण्ड की जनजातियों में एक प्रमुख जनजाति बुक्सा जनजाति है जिनकी आबादी उत्तराखण्ड के उधमसिंह नगर के बाजपुर, काशीपुर, गदरपुर आदि स्थानों पर है तथा नैनीताल व उधमसिंह नगर के बुक्सा बहुल क्षेत्रों में इन लोगों को बुकसाड़ कहा जाता है। ऐसी मान्यता इस ऐसी है कि बुक्सा जनजाति के लोग सर्वप्रथम 16वीं शताब्दी में बनबसा (चम्पावत) में

आये तथा यहीं बसे थे। इस जनजाति के लोग तराई उत्तराखण्ड राज्य के तराई–भाभर में स्थित इन क्षेत्रों में रहते हैं–

नैनीताल – रामनगर,
उधमसिंह नगर – काशीपुर, बाजपुर,
देहरादून – डोईवाला, विकासनगर,
पौड़ी – दुगड्डा आदि।

बुक्सा जनजाति की आबादी इन विकासखण्डों के लगभग 173 गाँव में निवास करते हैं। बुक्सा जनजाति में पारिवारिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक होती है तथा प्राचीन समय से एक विवाह तथा बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थह। परन्तु वर्तमान में बुक्सा जनजाति में बहु विवाह की प्रथा का प्रचलन बन्द हो गया है। इस जनजाति के लोग हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं तथा देवी– देवताओं में भगवान शिव, राम, कृष्ण, लक्ष्मी, दुर्गा, काली की आराधना करते हैं। काशीपुर में स्थित चामुण्डा देवी इस क्षेत्र के बुक्सा जनजाति की सबसे बड़ी देवी मानी जाती हैं। देवी–देवताओं के अलावा इस जनजाति में कल्पित आत्माओं (बुज्जा) की पूजा का भी प्रचलन है। बुक्सा जनजाति में गोत्र की संकल्पना में विश्वास करते हैं तथा गोत्र को उच्च मानते हैं।

इस जनजाति के प्रमुख गोत्र यदुवंशी, तनवार, परतजा पंवारबंशी तथा राजवंशी हैं। इस जनजाति में समान गोत्र में में विवाह की परम्परा नहीं है। बुक्सा जनजाति के लोग स्वयं को पंवार राजपूत मानते हैं। उत्तराखण्ड के अलग–अलग क्षेत्रों में निवास करने के कारण इनकी स्वयं की कोई विशिष्ट भाषा न होने के कारण जिस क्षेत्र में ये बस जाते हैं वहाँ बोली जाने वाली भाषा के अनुकूल ढल जाते हैं। बुक्सा जनजाति में महिलाओं की स्थिति काकी उच्च हैं तथा उन्हें काफी सम्मान दिया जाता है। जनजाति के लोग चैती, नौबी, होली, दीपावली, होगण, गोटरे, मौरो आदि प्रमुख त्योहार के रूप में मनाते हैं। अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत काष्ठकर्म, पशुपालन, दस्तकारी, जड़ी–बूटी संग्रह तथा विक्रय, कृषि व दैनिक श्रम जैसे कार्य करते हैं। बुक्सा जनजाति के लोग मेहनती होते हैं तथा तराई क्षेत्र में निवास होने के कारण कठिन जीवन व्यतीत करते हैं। बुक्सा जनजाति में तांत्रिक को 'भरारे' शब्द से सम्बोधित किया जाता तथा ये लोग जादू–टोने में काफी अधिक विश्वास करते हैं तथा चावल, मछली एवं मदिरा के शौकीन होते हैं। इतिहासकार आमिर हसन ने बुक्सा जनजाति के सन्दर्भ में अपनी पुस्तक `A Bunch of Wild and other' में बुक्सा जनजाति की उत्पत्ति धारा नगर के राजा जगत देव अथवा जयपुर के राजपूतों से बताई है। इसके विपरीत कुछ स्थानीय लोगों का विश्वास है कि वे पंवार राजपूतों से सम्बन्धित हैं।

मजूमदार (1944–37) ने मानवमितीय एवं रक्त परीक्षण के आधार पर बुक्सा जनजाति को थारुओं के समान मंगोल प्रजातीय उत्पत्ति प्रमाणित किया है। बुक्सा जनजाति एक संगठित इकाई के रूप में जीवन यापन करते हैं तथा इस समाज में छुआछूत की भावना ना के बराबर है तथा समाज भावना में ऊँच–नीच की भावना भी प्रायः कम देखने को मिलती है। उत्तराखण्ड बुक्सा जनजाति सामाजिक का ढाँचा काफी सन्तुलित है। परिवार व्यवस्था के अन्तर्गत इस जनजाति में एकल तथा संयुक्त परिवार देखने को मिलते है। जहाँ पूर्व में संयुक्त परिवार ज्यादा देखने को मिलते थे, वहीं आधुनिक परिवर्तनशील समाज में में एकांकी परिवारों की संख्या बुक्सा जनजाति में देखने को मिल रही है। इस जनजाति के लोग वैवाहिक स्थिति में पति–पत्नी के सम्बन्धों को अटूट न मानने के कारण उनमें तलाक की संभावना बनी रहती है। उत्तराखण्ड में बुक्सा जनजाति की महिलाओं को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त होने के कारण महिलाएं घर के साथ ही सम्बन्धित कार्य सक्रिय रूप भी करती हैं। इस जनजाति की महिलाएं स्वयं को राजपूत राजवंश से सम्बन्धित मानती हैं।

इस जनजाति की महिलाएं समस्त सामाजिक क्रियाकलापों मे प्रतिभागिता करती हैं तथा समाज के बढ़ते जागरुकता प्रभाव के फलस्वरूप महिलाओं में शैक्षिक जागरुकता का निरन्तर विकास हो का रहा है। बुक्सा जनजाति के लोगों का गैर जनजातीय समूहों के सम्पर्क में आने के कारण इनमें इनमें परम्परागत विवाह पद्धति के आधार पर समारोह का प्रचलन कम होता जा रहा है । अधिकांश लोग अन्य समुदायों व आधुनिकता के प्रभाव आधुनिक विवाह पद्धति की ओर आकर्षित हो रहे हैं, परन्तु वे अपने प्राचीन एवं प्रचलित परम्परागत रीतियों–रिवाजों को भी अपना रहे हैं। आधुनिकता के प्रभाव में आने के परिणामस्वरूप बुक्सा जनजाति की शिक्षा, खान–पान, व्यवसाय, रहन–सहन, रीति–रिवाजों आदि पर पड़ प्रभाव रहा है। बुक्सा जनजाति की ललित कलाएं परम्परागत होती हैं, परन्तु आधुनिकता के प्रभाव के कारण इनकी

ललित कलाओं के प्रति रुझान में कमी आई है। ये स्वयं को देवी पूजक मानते हैं तथा प्रत्येक प्रधान के घर के सामने ग्राम खेड़ी देवी का मंदिर होता है। ग्राम खेड़ी देवी को 'भवानी' भी कहा जाता है। बुकसाड़ के बोक्सा लोग साकरिया देवता की भी पूजा करते हैं। बुक्सा जनजाति मे बिरादरी पंचायत होती है जो न्याय व कानून व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होती है। बिरादरी पंचायत में पाँच सदस्य होते हैं तथा इसका सबसे बड़ा अधिकारी तख्त होता है। तख्त के अधीन एक मुंसिफ, एक दरोगा तथा दो सिपाही होते हैं। बोक्सा जनजाति के अन्तर्गत बिरादरी पंचायत के सभी सदस्य वंशानुगत होते हैं। वर्तमान में बिरादरी पंचायत के स्थान पर कुमाऊँ में बोक्सा परिषद की गई है। बुक्सा जनजाति मुख्यतः कृषक जनजाति मानी जाती है। इस जनजाति के लोग सामान्यतः भाबर तराई में कृषि सम्बन्धी कार्य करते हैं जिससे इनकी आजीविका चलती है।

इस क्षेत्र की भूमि अधिक उपजाऊ मानी जाती है। कृषि उत्पादन में मुख्यता गेहूँ तथा जौं की फसल का उत्पादन अधिक किया जाता है। इसके अलावा दलहन तथा तिलहन की फसल भी इनके द्वारा उगाई जाती हैं इस जनजाति के लोग अधिकांशतः परम्परागत कृषि कार्य से ही अपनी आजीविका कमाते हैं। अनाज के साथ ही शीतकालीन जैसे– गोभी, मटर अदरख, टमाटर, प्याज, बैंगन, आलू, धनिया, मिर्च, लहसुन आदि का उत्पादन भी बहुतायत में किया जाता है। कृषि के अलावा आजीविका हेतु पशुपालन सम्बन्धी व्यवसाय मी बुक्सा जनजाति द्वारा किया जाता है। पशुपालन हेतु मुख्यतः मुर्गी, बकरी, गाय, भैंस आदि पशुओं को पालन किया जाता है। गाय तथा बकरी पालन का कार्य प्रमुख रूप से दूध के उत्पादन हेतु प्रमुख रूप से किया जाता है जिसे बेचकर वे अर्थोपार्जन करते हैं।

वर्तमान में बुक्सा जनजाति के लोग शिक्षा के माध्यम से परिचित हो रहे हैं तथा शिक्षा प्राप्त कर नौकरी की ओर अग्रसर ये रहे हैं। खान–पान के दृष्टिकोण से यह जनजाति शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों प्रकार की होती है। बुक्सा जनजाति के लोगों अन्तर्गत द्वारा कृषि के चावल का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। अतः यहाँ भोजन में चावल का प्रयोग बहुतायत रूप से किया जाता है। इस जनजाति के लोग मछली पालन का भी कार्य करते हैं। चावल, मछली बुक्सा जनजाति में बहुतायत रुप से खान–पान में प्रचलित है। इसके अलावा ये भोजन में दाल, रोटी, सब्जी का भी प्रयोग बहुतायत रूप में करते हैं। बुक्सा जनजाति मुख्यताः कृषि कार्य करती है किन्तु सीमित भूमि व कम उत्पादन के कारण इन्हें अक्सर पैसा उधार लेना पड़ता है जिसके कारण इनका शोषण भी होता है।

इस जनजाति के पुरुषों द्वारा बीड़ी, शराब, देसी हुक्का, ताड़ी, सुल्फा आदि का भी प्रयोग किया जाता है। इस जन–जाति के लोग झाड़–फूँक, नजर लगना, जादू – टोना आदि पर यकीन रखते हैं। रोगग्रस्त होने पर कोई कार्य बाधित होने या कोई बड़ी परेशानी होने पर ये लोग जादू टोना तथा झाड़–फूँक का सहारा लेते हैं। बुक्सा जनजाति पितृसत्तात्मक होने के कारण वंश परम्परा पिता के नाम पर चलती है। परिवार का ज्येष्ठ पुरुष सदस्य परिवार का मुखिया होता है। मुखिया के आदेशों का पालन परिवार के सभी सदस्यों को करना आवश्यक होता है परिवार के सभी सदस्यों द्वारा अर्जित आय मुखिया को ही प्रदान की जाती है जिसे वह परिवार के सदस्यों की आवश्यकतानुसार खर्च करता है। बुक्सा जनजाति में नातेदारी सम्बन्धी प्रथाओंओं का विशेष महत्व होता है। परिवार की पुत्रवधू अपने श्वसुर तथा ज्येष्ठ के सामने घूंघट रखती है, जिससे उनको वह न देख सके। यदि कोई आवश्यक बात कहनी हो तो सास या ननद के माध्यम से अपने जेठ या श्वसुर को बता सकती है। नातेदारी सम्बन्धों के अन्तर्गत इस जनजाति में देवर–भाभी तथा जीजा–साली में परिहास अर्थात हंसी – मजाक की स्वतंत्रता प्रचलित है।

अतः स्पष्ट है बुक्सा जनजाति उत्तराखण्ड की एक प्रमुख जनजाति होने के साथ ही यह आत्मपूजक समाज रहा है। बुक्सा जनजाति, मुख्यतः कृषिपालक, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ ही इनमे अलौकिक शक्तियों के प्रति आस्था एवं विश्वास उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में विशेष रुप से परिलक्षित होता हैं। ये वनों एवं प्रकृति के अति निकट होने से प्रकृति प्रकृति पूजन एवं आत्मपूजक समुदाय माना जाता है। इनकी मान्यता है कि मानव का मृत्यु के बाद भी अस्तित्व बना रहता है। देवी–देवता की आत्मा भी प्रबल होती है जो हमारे जीवन की गतिविधियों को निर्धारित तथा निर्देशित करती हैं। मनुष्य इन आत्माओं के कुप्रभावों से बचने के लिए उनके प्रति आस्था के भाव जागृत करके उनकी पूजा–अर्चना

करके उन्हें प्रसन्न रखता है। बुक्सा जनजाति के लोगों की धारणा है कि सांकरिया देवता पशुओं के रक्षक देवता होते हैं तथा सांकरिया देवता की स्थापना गाँव से दूर जंगल के पेड़ों के बीच 'देवता' का प्रतीक लोहे से बनी सांगल पर ठोंक दी जाती है, मान्यता एवं विश्वास यह होता है कि सांकरिया देवता हमारे प हमारे पशुओं की जंगल में चुगते समय बाघ व अन्य जंगली जानवरों एवं बीमारियों के प्रकोप से बचाते हैं। वर्तमान में बुक्सा जनजाति में सामाजिक एवं वैज्ञानिक विकास के कारण लोगों में जादू–टोने एवं तंत्र–मंत्र के प्रति आस्था एवं विश्वास घटता जा रहा है। वर्तमान में रोगी को अस्पताल में उपचार के लिए ले जाया जाता है। परन्तु जब स्वास्थ्य सुविधायें उन्नत नहीं थी तब तंत्र–मंत्र से ही रोगी को रोगमुक्त किया जाता था।

उत्तराखंड की बुक्सा जनजाति प्रारम्भ से ही तराई के जंगलों तथा नदी नालों के निकट विषम परिस्थितियों में रहकर प्रकृति की शक्तियों से भयभीत होता रहा है। बुक्सा जनजाति संस्कृति, कला, मान्यताओं, परम्पराओं तथा रीतिरिवाजों के क्षेत्र में अत्यन्त प्रगतिशील रही है किन्तु बाहरी समूहों से सम्पर्क इनकी परम्परागत सामाजिक मान्यताओं को कमजोर कर रहे है। भूमि का अवैध हस्तांतरण तथा सिंचाई के संसाधनों का अभाव इनके समक्ष आर्थिक विपन्नता की स्थिति उपस्थित करता जा रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप बेरोजगारी, ऋण, ग्रस्तता, आर्थिक शोषण जैसी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। हालांकि आधुनिक समाज के सम्पर्क के परिणामस्वरूप बुक्सा जनजाति की शिक्षा, व्यवसाय रहन–सहन प्रभावित हुआ है। आधुनिक समाज का प्रभाव स्पष्ट रूप से बुक्सा जनजाति पर दिखाई दे रहा है। सरकार द्वारा इस जनजाति की समस्याओं में दूर करने तथा इनकी स्थिति सुधार लाने का प्रयास किया जा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. www.livehindustan.com
2. डॉ. दीपक कुमार, उत्तराखण्ड की थारू एवं बोक्सा जनजाति में परम्परागत चिकित्सा (तन्त्र – मन्त्र) व्यवस्था एक अध्ययन ।
3. www.euttra.com
4. डॉ. आबिदा, डॉ. पूनम भूषण, उत्तराखण्ड में बक्सा जनजाति की संस्कृति।
5. पाल सिंह, नगनारायण उपाध्याय, बुक्सा जनजाति के सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन।
6. https://pocketgyan.com
7. डोभाल दीपक – उत्तराखण्ड, हिमालय : समाज एवं संस्कृति।
8. रावत जयसिंह, 2013 उत्तराखण्ड जनजातियों का इतिहास।
9. वर्मा, सुभाष चन्द्र, उत्तराखंड की थारु एवं बुक्सा जनजातियाँ।

◈◈

ISSN : 2349-9273

Ambedkar's Vision and his Mission : A Review

- Dr. Susheel Kumar
Assistant Professor -
Department of Sociology,
Government Girls Post Graduate College, Bindki, Fatehpur-212635 (U.P.)

E-mail:
susheelvrm4@gmail.com

Abstract

Bharat Ratna Babasahab Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar was a great scholar , statesman , reformer and prolific writer with prodigious ideas in diverse disciplines. He combined the distiniction of great qualities that rarely comes across. He carried on a relentless struggle against the social, political, and economic segregation of untouchables and depressed classes. His mind was fully engaged with the social reformation, political enlightenment, economic well-being and spiritual awakening of the downtrodden. He had a deep faith in human rights of all, in the dignity of the human beings , in the promotion of standards of life and, over all, in peace and security in all spheres of human life . He stood for all activities of nation which enhanced the cause of human progress and happiness. His contribution to give people self-respect, dignity, moral courage to fight any odds and in making of the constitution of India, was phenomenal. His vision of social change or reclamation of human personality, was universal. This vision comes clear in his innumerable speeches, writings and in the constitution of India. Ambedkar's great vision enjoined the abolition of casteism in every shape and form. Ambedkar's vision did not end at the horizon of Dalit power, rather, he envisaged an India liberated from gender discrimination, caste consciousness, a futuristic society no longer trapped in the feudal periods of master and slave, privilege and privation. He was a torch bearer in the direction of social uplift of women generally and hindu specially. His vision on social justice was to remove man-made inequalities of all shades through law, education, agitation, organization, morality, conscience etc. for a sustainable society. He was involved both academically and practically in policy making and contributed immensely in the reconstruction of modern India. It is need of the day to spread Ambedkar's vision and mission. This article is designed to describe Ambedkar's social, political, and economical vision and mission related to untouchables, women, human rights, justice, equality and other issues.

Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar, also known as Babasaheb, was an Indian jurist, political leader, Dalit leader, philosopher, thinker, anthropologist, historian, orator, prolific writer, economist, women emancipator, human rights profounder, an eminent and erudite scholar, editor, revolutionist and a revivalist for Buddhism in India. He was also the chief architect of the Indian

constitution. Dr. Ambedkar was an intellectual giant and India's great reformer.

Vijaya chintaman Sonawane has attributed to Dr. B.R. Amvbedkar the greatest quality of **humanism** in the following words,

"There are two fundamental types of human nature- creative and possessive, creative humans use human intellect for creative endeavors which enrich human thought, knowledge and wealth, there by contribute to the development of human heritage for the posterity. Possessive people, on the other hand, do not believe in the use of human intellect for creative purpose. Rather, they believe in appropriation, amassing and even usurpation of the products of the labor of the creative people. This type of people possess a strong urge to become the governing class by all means in order to achieve their aims. Lesser the degree of civilization in the society, greater is the probability of succeeding this type of people in becoming the governing class..... Karl Marx has scientifically analyzed this conflict by applying the principles of dialectical materialism to the sphere of social phenomenon and described it as the historical materialism." – (Dr. B.R. Ambedkar as a humanist)

Justice K. Ramaswamy had aptly summarized his person in his article titled 'B.R. Ambedkar : **A Multimensional Personality'** in the following words,

"To put in a nutshell, Ambedkar is a prolific writer, a renowned economist, an assiduous anthropologist and sociologist an eminent constitutional lawyer, a foremost social reformer, a profound, the brightest star and jewel of India. He was a profound thinker like Martin Luther to protestant Christians, the brightest star and jewel of India. He was a profound thinker like Karl Marx, and Rousseau that tribe, profound visionary and a nationalist of the core....... He had shown that birth in penury would stand no handicap for anyone dedicated to scale the heights of intellectual excellence by dint of hard work, assiduity, courage of intellectual conviction, honesty and relentless pursuit".

This paper focuses on Ambedkar's vision and mission with special regard to their social, economic and political contribution and his role in human rights, education, up-liftmen of weaker sections of India. It described the broader areas of his life, education, institutions, politics, and other areas which include his role in women empowerment, approach towards human rights and his vision towards education. Ambedkar's vision and mission will inspire generation to come and his name will remain forever so long humanity lives in beyond doubt.

Life of Dr. B. R. Ambedkar -

Bhimrao Ambedkar was born to Bhimabai and Ramji Sakpal on 14th April 1891 in the British-founded town and military cantonment of Mhow, a sgarrison town close to Indore- the capital of a princely state of the same name which was to be incorporated into the province of Madhya Bharat (Contemporary Madhya Pradesh after independence) in a caste, namely, Mahar, considered low and outcaste. He was the fourteenth and last child of his parents. His mother decided to call her son Bhim. His first name was Bhimrao Ambavadekar. His father Ramji was an army officer stationed at Mhow in M.P. - he had risen to the highest rank an Indian was allowed to hold at that time under British rule. Before the birth, Ramji's uncle who was a man living the religious life of a sanyasi, foretold that this son would achieve worldwide fame. His family was of Marathi Background from the town of Ambavade in the Ratnagiri district of modern day Maharashtra and Ambedkar's real name, Ambavadekar came from there, His father, Ramji Sakpal retired in 1894 and the family moved to satara two years later, Soon after, however, tragedy struck. Bhimabai, his mother, who had been ill, died. Bhim's aunt Mira, though she herself was not in good health, took over the care of the children. His father, Ramji read stories from the epics Mahabharata and Ramayana to his children, and sang devotional songs to them. In this way, home life was still happy for Bhim, his brothers and sisters. He never forget the influence

of his father. It taught him about the rich cultural tradition shared by all Indians.

Ambedkar was a victim, of caste discrimination at his childhood. The discrimination and humiliation haunted Ambedkar even at the Army school, run by British government. After shifting to Satara, he was admitted to a local school but the change of school did not change the fate of young Bhimrao. Discrimination followed where ever he went.

A small incident noted here brings a clear picture of discrimination faced young Bhimrao. Once, he and his elder brother had to travel to Goregaon, where their father worked as a cashier, to spend their summer holidays. They got off the train and waited for a long time at the station, but Ramji did not arrive to meet them. The station master seemed kind, and asked them who they were and where they were going. Bhim told him they were Mahars (a group class as untouchables). The station master was stunned his face changed its kindly expression and he went away. They alighted at the Masur Railway station, engaged a cart and continued their journey. They went some distance, then the cart driver came to know that they belonged to the Mahar caste. He at once stopped the cart raised one end of it; the poor boys tumbled down and fell on the ground. He shouted at them and scolded them as he pleased.

It was afternoon. The boys were thirsty. They begged for water but no one would give them a drop. Hours passed. Still no one gave them water. They were not allowed even to go near tanks and wells, Bhim felt unbearable thirst. He drank water from a well nearby. Someone noticed it. A few people gathered and beat the boy mercilessly.

He had experienced cast's depravity first-hand. When he was still at school, he felt the sting of untouchability. He could not sit with the other boys of the class. He had to drink water only when others poured it for him, and even then he had to cover his mouth with one hand. These insults and pains gave him a very deep impression on the young boy's mind.

When Bhimrao was a student at the High School, a Brahmin teacher (Mahadev Ambedkar) teacher admired Bhimrao's lively mind and decided to give his own name to Ambedkar, Ambedkar changed his name from Ambavadekar to Ambedkar in 1900.

In 1907, these intellectual qualities enabled him to obtain his matriculation certificate at Elphinstone High School in Bombay. He was then seventeen years old. In High School, he desired to learn Sanskrit. But it was ordered that he should not learn Sanskrit because he belonged to the untouchables. He had to study Persian instead- but he taught himself Sanskrit later in life. In 1907 the same year his marriage with Ramabai was celebrated.

Ambedkar passed his intermediate exmination from Elphinstone college. He obtained his B.A. degree in 1912. Ambedkar's father died in 1913. After graduation he went to Baroda in 1913. Maharaja Gaekwad of Baroda sent Bhimrao Ambedkar to America by sanctioning scholarship on 1913 and He joined the columbia University in New York as faculty of political science. The freedom and equality he experienced in America made a very strong impression on Bhimrao. Ambedkar wrote very learned and theories obtained his M.A. and Ph.D. degrees. He returned to India on the 1917. His main subjects were economic and Sociology. He studied English and Persian languages in India. In America he studied Political Science, Ethics, Anthropology, Social Science and Economics.

He was called back to India to take up a post in Baroda as agreed in 1917 and stayed in cognito at a Parsee Dharmashala. He was appointed as Military Secretary to the Maharaj. Yet, he again ran into the worst features of Hindu caste system. He had no choice. He returned to Bombay in a few days. On 1918, he joined his duties as a Professor of Political economy in the Sydenham College of Commerce, Bombay. There, his students recognised him as a brilliant teacher and scholar. At this time he also helped to found a Marathi news

paper "Mook Nayak" (Leader of the Dumb) to champion the cause of the 'untouchables'. He also began to organise and attend conference, knowing that he had to begin to proclaim and publicise the humiliations suffered by the Dalits- 'the oppressed'- and fight for equal rights, in 1920, with the help of friends, he was able to return to London to complete his studies in Economics at London School of Economics. He also enrolled to study as a Barrister at Gray's Inn. He had also qualified as a Barrister-at-Law.

Knowing the great value and importance of education, in 1924 he founded an association called Bahiskrit Hitakarini Sabha. This set up hostels, schools, and free libraries. To improve the lives of Dalits, education had to reach everyone. In 1927 Babasaheb presided over a conference at Mahad in Kolaba District. There he said, 'It is time we rooted out of our minds the ideas of high and low. We can attain self-elevation only if we learn self help and regain our self-respect' In his view, others could not uplift the 'untouchables'. The Bombay Legislature had already passed a Bill allowing everyone to use public water tanks and wells. Ambedkar started a fortnightly Marathi paper Bahiskrit Bharat and established Samata Samaj Sangha in 1927 (League for equality). In 1930, a Round Table conference was held by the British Government in London to decide the future of India. Babasaheb represented the 'untouchables'. Soon second conference was held, which Mahatma Gandhi attend representing the congress party. Babasaheb met Gandhi. At the second conference. He asked for a separate electorate for the Depressed class-Hinduism. Gandhi persuaded him that Hinduism would change and leave its bad practice behind. Finally Babasaheb agreed to sign the poona pact with Gandhi in 1932.

Babasaheb has by this time collected a library of over 50,000 books, and had a house named Rajgriha built at Dadar in north Bombay to hold it. In 1935 is beloved wife Ramabaidied. The same year he was mad Principal of the Government law college, Bombay. Also in 1935 a conference of Dalits was held at Yeola. This was the first time that Babasaheb stressed the importance of conversion from Hinduism for is people- for they were only known as 'untouchables' within in the fold of Hinduism. During the second world war, Babasaheb was appointed labour Minister by the viceroy. Yet he never lost contact with his roots he never become corrupt or crooked.

After the war Babasaheb was elected to the constituent Assembly to decide the way that India - a country of millions of people- should be ruled out. How should elections take place? What are the rights of the people? How are lows to be made? Such important matters had to be decided and laws had to be made. The constitution answers all such question and lays down rules. When India become Independent in August 1947, Ambedkar became first law minister of Independent India. The constituent Asssembly made him the chairman of the committee appointed to draft the constitution for the world's largest democracy. After completing the draft constitutions, Babasaheb fell ill. At a nursing home in Bombay he met Dr. Sharda Kabir and married her in April 1948. On November 1948 he presented the Draft constitutions to the constituent Assembly, and on November 1949 it was adopted in the name of the people of India On that day he said, " I appeal to all Indians to be a nations by discarding castes, which have brought separation in social life and created jealousy and hatred."

In 1950, he went to Buddhist conference in Sri Lanka. On His return he spoke in Bombay at the Buddhist Temple. 'In order to end their hardships, people should embrace Buddhism. I am going to devote the rest of my life to the revival and spread of Buddhism in India.'

Babasaheb resigned from the government in 1951. He felt that as an honest man he had no choice but to do so, because the reforms so badly needed had not been allowed to come into being.

According to Ambedkar, "The most vital need to the day is to create among the mass of the people a sense of common nationality- the feeling not that they are Indians first and Hindus,

Mohammedans or Sindhis and Kanarese afterwards, but that they are Indians first and Indians last."

Just three days after completing his final manuscript 'The Buddha and His Dhamma', it is said that Ambedkar died in his sleep on December 6, 1956 at his home in Delhi. When Babasaheb passed away, in December 1956, Jawaharlal Nehru made a moving reference in the Lok Sabha. Describing Babasaheb as 'a symbol of revolt', he said, " I have no doubt that, whether we agreed with him or not in many matters, that perseverance, that persistence and that, if may use the word, sometimes virulence of his oppositions to all this did keep the people's mind awake and did not allow them to allow them to become complacent about matters which could not be forgotten, and helped in rousing up those groups in our country which had suffered for so long in the past. It is therefore sad that such a prominent champion of the oppressed and depressed in India and one, who took such an important part in our activities, has passed away.'

A Dreamer of Social Liberation -

He was a social rebel who raised the banner of revolt against the iniquitous caste-ridden society. Dr. Ambedkar took up the arduous task of awakening the conscience of the down trodden sections of society. Dr. Ambedkar's approach to the cast problem in India was most radical. It was forcefully and rationally expressed in his monumental work Annihilation of caste. Dr. Ambedkar was not willing to change even a comma in his speech. He was not prepared to dilute his frontal attack on the Hindu society based on Chaturvarna which accepted in practice not the division of labour but stratification based on birth. As we go through the pages of the work 'Annihilation of caste', we realize the freshness of the analysis of Dr. Ambedkar on this crucial subject. Many Hindus were perturbed by the decision of Dr. Ambedkar to advise his followers to have mass conversion to Buddhist faith. I was claimed by some of the liberal Hindus that casteism and untouchablity were not the integral ingredients of Hindu religion, culture and tradition. On this ground these liberals had thrown a challenge to the Sankaracharya of Puri to establish with evidence that their contention was wrong. Dr. Ambedkar believed that no democratic process could be complete unless the masses were properly educated .He therefore considered true education as the solvent for many hundred problems. Once he remarked that, 'changes in the human society can be brought about neither by mere counting of heads nor by breaking of heads, but by appealing to heads as well as hearts'. He believed that even the experiment of parliamentary democracy would founder on the rock of ignorance and glaring social inequalities. He had sounded this warning in his last speech in the constituent Assembly during the debate on the Draft constitution of India.

Dr. Ambedkar's greatest contribution to our social and political life has been that he made the socially oppressed sections like the scheduled castes to challenges orthodox sections society with the probing question which Abraham Lincoln had asked, "It might be in your interest to be our masters, but how it is in our interest to be your slaves?" To the extent this questions finds its echoes in the remotest corners of India with requisite follow up action, Dr. Ambedka's life-long dream of ensuring social liberation of the oppressed and the downtrodden will be translated into reality.

It was Ambedkar who really tried to tackle the problem of untouchability. The all India Depressed classes Association and All India Depressed classess federation were the principal organizations of these classes. The All India Depressed classes federation was founded and led by Dr. Ambedkar. He declared that unless the oppressed 'untouchables' organized themselves for a common cause, no amount of moral pressure on the caste Hindus will ever improve their condition. He asked them to forget about their own differences and social gradations and to "Organize, educate and All Agitate."

He agreed that Gandhiji's contribution to the nationalist movement and also his mass

leadership was a unqiue phenomenon in India history. But he declared- "You untouchables, have you ever realized that even at the height of the freedom struggle, you have been treated worse than the animals? Have you realised that the doors of the schools and educational institutions are all closed for you? Are you allowed to fetch water from the village well or tank? Even roads and streets are not meant for you. If this is your real condition, what makes you to identity yourself with the nationalist struggle?"

He became emotional and stopped for a while, then raised his voice and said,

'My Dalit friends, think for a while and ask yourself a question. Does this country really belong to you? Freedom for what? And freedom for whom?

He exhorted the Dalits not to be carried away by the wave of nationalist upsurge but to be cautious about their own fate and concentrate single mindedly on the issues which affected their very existence. He asked them to fight for their self- elevation, self-help and self-respect. He invoked the Jeffersonian spirit when he declared on one occasion, 'Give me liberty or give me death.' His was an echo beyond the heart.

Socio-Economic and Political Development-

He was under the opinion that caste is the root cause for all the ills and social disabilities in India. Ambedkar says, "to leave inequality between caste and caste, class and class, between sex and sex which is the soul of Hinduism untouched and to go on making legislations and policies relating to economic problems is to make a force of our constitutions. It is like to build a beautiful palace on a dung heap. Dr. Ambedkar wanted to established an egalitarian society in which the neglected people in the scheduled castes and scheduled tribes, minorities and other weaker section should have an equal opportunity in socio-economic and political spheres and all walks of life. He propagated and encouraged the interdining and inter caste marriages a revolutionary social cleavage he brought about in India. In his own words, "I had dedicated myself to the upliftment of the scheduled castes and I have followed the adage which says that it is better to be narrow minded if you wish to be as enthusiastic about a cause which you wish to accomplish."

For social, economical backwardness of SC's and weaker sections in an inadequate political representation. It is well known that the political power is the master key for all social and economic problems. Formal education, economic improvement and political representation were conceived to buttress one another and as a means to bring about the desired changes and improvements in the status of dalits. Babasaheb realized the importance of politics in Indian society he gave utmost importance to the politics. In his own word, "We feel that nobody could remove our grievances as well as we can. But we can't solve them unless the political power in our own hands." In the words of Abraham Lincon, the former President of United States of America, says, "No nation can be half slaves and half free." It is, in other words that no nation can develop with the existence of inequality.

Conclusion -

During his lifetime, Babasaheb used various methods and strategies to create a society based on the values of liberty, equality, fraternity and manuski (Manuski is the marathi word often used by Babasaheb , and it has connotations of humanity, humanness and respect for human life) through education, agitation and organization. He gave to his people self-respect, dignity and most importantly moral courage to fight and odds. He started political parties, fought for the transfer of power to the untouchables, liberated Hindu women from heinous Hindu laws tainted by male chauvinism, gave representation to the untouchables and made passionate plea to include OBSCs in the process of democratization of the Indian masses, created political and legal structure to make it possible for social democracy to take its shape in heterogeneous country like India. His achievements are innumerable. His struggle for social justice could be visualized in the ideals and philosophy of the Indian constitution. Thus the constitutional ethos of the social revolution

running through the 'preamble', fundamental rights and the directive principles expressly emphasize the establishment of an egalitarian social order and based on human values of justice social, economic and political, equality of status and of opportunity and fraternity assuring human dignity.

Thus Dr. Babasaheb Ambedkar created a social, economical and political revolution by awaking the women, scheduled castes and scheduled Tribes and breaking all social values based on Hindu social system. He searched for solutions, explored strategies and in doing so set the Dalits on the path of an arduous emancipation. When he advocated equality, he referred to equality in the economic, political and social spheres. It was Ambedkar who championed the cause of humanitarianism and tried to minimize the distance two individuals. His major contribution was to have emphasized the importance of action from below that political organization was indispensable to securing justice and basis human rights.

The ideas of Ambedkar were still very much relevant today and none can ignore his contribution to the socio-economic development of Indian society. Despite including several provisions in the constitution to protect the rights of the weaker sections, the dream of Dr. Ambedkar to covert India into an egalitarian society as was thought by Buddha, who believed in the three principles, namely, liberty, equality and brotherhood, is yet to be anticipated.

References

1. Agrawal, S. (1991). Dr. B.R. Ambedkar-The man and His Message, Retrieved from http:/*/www.rajyasabha. nic.in/rsnew/publication-electronic /Ambedkar. pdf.*
2. Dewedy, M.C. (2010). Ambedkar's Mission and Deeds : Their long Term Effect on India, Retrieved from http://www.boloji. com/indexs. cfm?md = content & Article ID=897.
3. Dr. B.R. Ambedkar and The Scheduled castes, Retrieved from http:// www.shodhganga. inflibnet.ac.in /bitstream/ 10603/8049/ 11/11_chapter% 203.pdf.
4. Gautam, C. (2000). Life of Babasaheb Ambedkar, Retrieved from http: //www.baiae.org/resources/great-people/dr-babasaheb-ambedkar/ about babasaheb. html.
5. Kavitakait (2013). Dr. B.R. Ambedkar's Role in women Empowerment, Retrieved from http://www. legalservicesindia.com/article/article/dr-b-r-ambedkar's-role-in-women-empowerment-1611-1html.
6. Malik, (2011). Justice and Equality in Dr. B.R. Ambedkar's vision Retrieved from http:// www.dspace.jdvu.ac.in/bitstream/.../28567/1/ Acc. %20No%20TC % 20389.pdf.
7. Navjot, Education and Vulnerable communities-Regarding B.R. Ambedkar's Vision, Retrieved from http://www.ijellh.com/education - and - vulnerable-communities-regarding-b-r-ambedkars-vision.
8. Srivastava, M. & Saxena, D. (2009). Dr. Ambedkar's Approach Toward Human Right, National Seminar, Smarika's 2009, Dayanands Girls P.G. College, Kanpur.

◈◈

ISSN : 2349-9273

आधुनिक तकनीकी शिक्षा प्रणाली में ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था : एक अध्ययन

– डॉ. रेनू कुरील
एसोसिएट प्रोफेसर –
समाजशास्त्र विभाग,
एस. एन. सेन बालिका विद्यालय, पी. जी. कालेज, कानपुर–208001 (उ.प्र.)

ई–मेल :
kureel.renu@gmail.com

सारांश

आज प्रौद्योगिकी जीवन और समाज के हर पहलू को छू रही है। आजादी के बाद से, हमारे देश में तकनीकी शिक्षा प्रणाली काफी बड़े आकार की प्रणाली के रूप में उभरी है, जो देश भर में संस्थानों में प्रमाण पत्र, डिप्लोमा, डिग्री, स्नातकोत्तर डिग्री और डॉक्टरेट स्तर पर विभिन्न प्रकार के व्यापारों और विषयों में शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर प्रदान करती है। भारत में उच्च्य शिक्षा की वर्तमान स्थिति, वैश्विक गुणवत्ता मानकों के अनुरूप नहीं है। अतः देश के शैक्षिक संस्थानों की गुणवत्ता सुनिश्चित करने का तथा उसमें सुधार लाने हेतु उनके नियमित मूल्यांकन की आवश्यकता एवं औचत्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। तकनीकी शिक्षा के मानक को बनाए रखने के लिए, अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद (ए. आई. सी. टी. ई.) की स्थापना 1945 में हुई थी एवं आई. सी. टी. ई. मानदण्डों और मानकों की योजना, निर्माण और रखरखाव, मान्यता के माध्यम से गुणवत्ता आश्वासन, प्राथमिक क्षेत्रों में वित्त पोषण के लिए जिम्मेदार है। इसका उद्देश्य निगरानी और मूल्यांकन, प्रमाणीकरण और पुरस्कारों की समानता बनाए रखना और देश में तकनीकी शिक्षा के समेकित और एकीकृत विकास और प्रबन्धन को सुनिश्चित करना है।

भारत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तीव्र प्रगति करते हुए एक नये युग की ओर अग्रसर है। आधुनिक युग में तकनीकी शिक्षा की भारी मांग है। वर्तमान समय में जीवन की शैली पद्धति लगभग पचास वर्ष पूर्व के समाज में प्रचलित जीवन शैली की तुलना में अत्यन्त भिन्न एवं अधिक विकसित है। अनेक क्षेत्रों में सामान्य शिक्षा की अपेक्षा व्यावसायिक शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

तकनीकी शिक्षा रोजगार और सफल कैरियर के लिए अच्छा अवसर प्रदान करती है। साथ ही वह शिक्षा समग्र शिक्षा प्रणाली के विकास और सुदृढ़ीकरण में महत्वपूर्ण योगदान देती है और हमारे देश के सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में तकनीकी शिक्षा विभिन्न स्तरों पर प्रदान की जाती है, जिनमें शिल्प एवं कौशल, प्रशिक्षण, डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा विशिष्ट क्षेत्रों में अनुसंधान शामिल है। यह स्तर तकनीकी विकास, मानव संसाधन, निर्माण तथा आर्थिक प्रगति की विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

इसके अलावा, बेरोजगारी के इस दौर में, केवल तकनीकी शिक्षा ही नौकरी और आरामदायक रहने का आश्वासन दे सकती है। जो लोग अभी भी पारम्परिक संस्थानों में हैं, परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं, जिनके पास आधुनिक

प्रणालियों में थोड़ी प्रासंगिकता है, उन्हें रोजगार के अवसर नहीं मिलते हैं और स्वाभाविक रूप से, वे निराशा की भावना से पीड़ित रहते हुए खत्म हो जाते हैं और खुद को आधुनिक दुनिया की मुख्यधारा से अलग कर लेते हैं। किसी विशेष विशेषज्ञता या व्यावसायिक कौशल के अभाव में केवल पारम्परिक सामान्य शिक्षा प्राप्त करने वाले अनेक युवाओं को यह अनुभव होता है कि समाज की प्रगति एवं समृद्धि में अपेक्षित योगदान देने में सक्षम नहीं हैं। वे इस वास्तविकता से भलीभांति परिचित होते हैं, और यही जागरुकता उन्हें निराशा एवं हताशा की ओर ले जाती है।

यह सिर्फ समस्या का अन्त नहीं था। यह आधुनिक भारत का सपना था और उस सपने को साकार करने के लिए तकनीकी शिक्षा को उचित महत्व दिया गया था।

भारत उच्चतम क्षमता वाले स्नातकों के उत्पादन के लिए प्रसिद्ध है, लेकिन इसकी आबादी की तुलना में केवल कुछ ही व्यक्ति उच्च गुणवत्ता वाली तकनीकी शिक्षा प्राप्त करते हैं। भारत ने वर्षों से तकनीकी शिक्षा की गुणवत्ता और उपलब्धता को काफी हद तक मजबूत किया है, जो स्नातक की रोजगार दर को दोगुना कर रहा है तथा भारतीय उद्योग की जरूरतों के अनुरूप बेहतर है। इसलिए, पारम्परिक अध्ययन का समर्थन करने और तकनीकी शिक्षा को पढ़ाने की सख्त जरूरत है, क्योंकि इससे न केवल देश के विकास में मदद मिलेगी, बल्कि वह कौशल पूर्ण व्यक्ति भी होंगे। तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए, भारत में दो संरचनात्मक धाराएं हैं– औपचारिक और अनौपचारिक। पॉलिटेक्निक, औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान, औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्र, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की केन्द्रीय प्रायोजित योजना भारत में तकनीकी शिक्षा के औपचारिक स्रोतों में से क हैं। जब कि अल्पकालिक तकनीकी पाठ्यक्रम प्रदान करने वाले स्वयं – शिक्षण और छोटे निजी संस्थान अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत आते हैं।

भारत में नए औद्योगिक और श्रमिक रुझानों ने स्पष्ट रूप से तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता को निर्दिष्ट किया है, लेकिन माध्यमिक स्तर की शिक्षा में तकनीकी शिक्षा का आधार मजबूत होना चाहिए और छात्रों को इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए एक स्पष्ट मार्ग बनाया जाना चाहिए। उच्च गुणवत्ता वाली तकनीकी शिक्षा प्रदान करने हेतु अधिक संख्या में तकनीकी विश्वविद्यालयों में एवं डिग्री संस्थानों की स्थापना की जानी चाहिए।

तकनीकी शिक्षा विशिष्ट व्यापार, शिल्प या पेशे के ज्ञान प्रदान करती है। तकनीकी शिक्षा अर्थात् किसी भी व्यावसायिक कौशल से सम्बन्धित शिक्षा आज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। हम उस समय में रह रहे हैं, जब शिक्षा की पुरानी अवधारणाओं में बदलाव आया है। हमें उदार शिक्षा की आवश्यकता नहीं है, शिक्षा जो ललित कला, मानविकी, सांस्कृतिक पैटर्न और व्यवहार में प्रशिक्षण का तात्पर्य है और इसका उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करना है, क्योंकि यह स्वतंत्रता दिवसों में था। हमें कुशल श्रमिकों की जरूरत है। हर साल करोड़ों रुपए के निर्मित सामान आयात किए जा रहे हैं। भोजन की कमी है। हमारे उद्योग अभी तक बचपन में हैं। हमें कुशल इंजीनियरों और योग्य मानव संसाधनों की आवश्यकता है। मकई के उत्पादन में वृद्धि के लिए हमें मशीनीकृत खेती की जरूरत है। यह सब केवल तभी संभव है, जब हम अपनी शिक्षा में तकनीकी बदलाव लायें और कुशल श्रम शक्ति उपलब्ध करायें।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICT) एक व्यापक क्षेत्र है, जिसमें सूचना के संग्रहण, प्रसंस्करण आदान–प्रदान तथा संचार के लिए प्रयुक्त विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकियाँ समाहित होती हैं। यह वो प्रौद्योगिकी है जो कि सूचना के संचालन (रचना, भण्डारण और उपयोग) की योग्यता रखता है तथा संचार के विभिन्न माध्यमों (रेडियो, टेलिविजन, सेलफोन, कम्प्यूटर, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर, विभिन्न सेवाओं और अनुप्रयोगों) से सूचना के प्रसारण की सुविधा प्रदान करता है। कृषि, स्वास्थ्य, शासन प्रबन्ध और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में आई.सी.टी.के विकास का प्रभाव है। यह लेख उच्च शिक्षा में आई.सी.टी. की भूमि को केंद्रित कर रहा है। शैक्षिक अवसरों को विस्तृत करने, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय विकास वं शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने के लिये आई.सी.टी. एक प्रभावशाली साधन है। सरकार आई.सी.टी. पर बहुत खर्च कर रही है। उच्च शिक्षा में बढ़ता नामांकन अनुपात तथा शिक्षा के विस्तार में प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता में आई.सी.टी. की भूमिका पर नेशनल मिशन ऑफ एजुकेशन बल देता है। आई.सी.टी. के शिक्षा में अभिग्रहण के प्रमुख कारक है – किसी भी प्रणाली का लक्ष्य, कार्यक्रम और पाठ्यक्रम, पढ़ने तथा पढ़ाने के तरीके, अधिगम सामग्री और संसाधन, संवाद, समर्थन और वितरण प्रणाली छात्र ट्यूटर्स, स्टाफ और अन्य विशेषज्ञ,

प्रबंधन और मूल्यांकन। अतः आई.सी.टी. के कार्यान्वयन से उच्च शिक्षा में निश्चित ही सुधार होगा।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी एक व्यापक क्षेत्र है जिसमें सूचना के संचार के लिये हर तरह की प्रौद्योगिकी समाहित है। यह वो प्रौद्योगिकी है जो कि सूचना के संचालन (रचना, भंडारण और उपयोग की योग्यता रखता है तथा संचार के विभिन्न माध्यमों (रेडियो टेलिविजन, सेल फोन, कम्प्यूटर और नेटवर्क, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर, सेटेलाइट सिस्टम, विभिन्न सेवाओं और अनुप्रयोगों) से सूचना के प्रसारण की सुविधा प्रदान करता है। आई.सी.टी. कई लोगों के जीवन का अविभाज्य तथा स्वीकृत अंग बन गया है। कृषि, स्वास्थ्य, शासन प्रबन्ध और शिक्षा जैसे क्षेत्रों में के विकास का प्रभाव है। आई.सी.टी. के विविध संग्रह है जिसमें विभिन्न प्रौद्योगिकी उपकरण निहित हैं। साथ ही साथ वीडियो कांफ्रेंसिंग और इलेक्ट्रॉनिक मेल आदि जैसे प्रोटोकॉल और सेवाएँ भी सम्मिलित हैं।

शिक्षण में कम्प्यूटर आधारित शिक्षा तकनीकों का उपयोग भारत की प्रसिद्ध शिक्षा प्रणाली और संस्थानों द्वारा अपनाया गया है। विभिन्न प्रकार के शब्दों, आँकड़ों और प्रतीकों का प्रभावी ढंग से प्रबन्धन एवं प्रसंस्करण करने की क्षमता कम्प्यूटर की प्रमुख विशेषता है, जो शिक्षा सम्बन्धी प्रयासों को अधिक प्रभावी और सशक्त बनाती है।

ई–लर्निंग और दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों में ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम से शिक्षण अधिक रोचक और आसान हो रहा है। इंटरनेट तथा (World Wibe Web) के माध्यम से शिक्षक अपने विद्यार्थियों तक पहुँच सकते हैं और उनको घर बैठे पढ़ा सकते हैं। इंटरनेट मानव ज्ञान का एक उच्चतम संग्रह है। आई.सी.टी. डिजिटल पुस्तकालय जैसे डिजिटल संसाधनों के सृजन की अनुमति देता है, जहाँ विद्यार्थी, शिक्षक और व्यवसायी शोध सामग्री तथा पाठ्यक्रम सामग्री तक पहुँच सकते हैं। आई.सी.टी. शैक्षणिक संस्था के दिन–प्रतिदिन के प्रशासनिक गतिविधियों को आसान और पारदर्शी तरीके से नियंत्रित करने तथा समन्वय और निगरानी के लिये अवसर प्रदान करता है। पंजीकरण , नामांकन, पाठ्यक्रम आवंटन, उपस्थिति की निगरानी, समय सारिणी, वर्ग अनुसूची, प्रवेश के लिये आवेदन, छात्रों के दाखिले में जाँच इस तरह की जानकारियाँ ई–मीडिया द्वारा पाई जा सकती हैं।

ऑन लाइन शिक्षा प्रणाली को सभी प्रकार के इलेक्ट्रानिक समर्थित शिक्षा और अध्यापन के रूप में परिभाषित किया जाता है जो स्वााभाविक तौर पर क्रियात्मक होते हैं और जिनका उद्देश्य शिक्षार्थी के व्यक्तिगत अनुभव, अभ्यास और ज्ञान के संदर्भ में ज्ञान के निर्माण को प्रभावित करना है। सूचना और संचार प्रणालियाँ चाहे इनमें नेटवर्क की व्यवस्था हो या न हो, शिक्षा प्रक्रिया का कार्यान्वित करने वाले विशेष माध्यम के रूप में अपनी सेवायें प्रदान करती है। ऑन लाइन शिक्षा अनिवार्य रूप से कौशल एवं ज्ञान का कम्प्यूटर एवं नेटवर्क समर्थित अन्तरण है। ऑन लाइन शिक्षा इलेक्ट्रॉनिक अनुप्रयोगों और सीखने के अनुप्रयोगों और प्रक्रियाओं में वेब आधारित शिक्षा, कम्प्यूटर आधारित शिक्षा, आभासी कक्षाएं और डिजिटल सहयोग शामिल है।

ऑन लाइन शिक्षा ने सीखने की प्रक्रिया को बेहद सुलभ और लचीला बना दिया है, जिससे छात्र घर बैठे दुनियां भर के कोर्सेज तक पहुंच सकते हैं। हालांकि स्क्रीन टाइम का बढ़ना और आत्म अनुशासन की कमी इसके प्रमुख नुकसानों में शामिल है। इसके प्रमुख फायदे में आप अपनी सुविधानुसार कभी भी और कहीं भी पढ़ाई कर सकते हैं। यह सुविधा नौकरीपेशा लोगों और गृहणियों के लिए वरदान स्वरूप है। इसमें आप पारम्परिक संस्थानों से अलग आप अपनी पसन्द के अनुसार कोई भी स्किल या डिग्री घर बैठे चुन सकते हैं। लेकिन ऑन लाइन शिक्षा प्रणाली में लम्बे समय तक स्क्रीन का उपयोग व्यक्ति को करना पड़ता है, जिसके फलस्वरूप आँखों में तनाव, पीठ में दर्द और लगातार एकटक बैठने के कारण शरीर की मुद्रा में गड़बड़ी हो सकती है। एकान्त में ज्यादातर बैठे रहना व्यक्ति के अन्दर थकान,कनेक्टविटी की समस्या, सहपाठियों से कम संवाद और मजबूत आत्म–अनुशासन की आवश्यकता शामिल है।

निष्कर्ष –

सूचना व संचार प्रौद्योगिकी उन कार्यों के लिए इसे इस्तेमाल किया जाता है जो इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से सूचना के पारेषण, संग्रहण, निर्माण, प्रदर्शन या आदान – प्रदान में काम आते हैं। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी की इस व्यापक परिभाषा के तहत रेडियो, टी. वी., वीडियो, डी. वी. डी., टेलीफोन (लैंडलाइन और मोबाइल फोन दोनों ही), सैटेलाइट प्रणाली, कम्प्यूटर और नेटवर्क हार्डवेयर एवं सॉफ्टवेयर आदि सभी आते हैं। यह इसके अलावा इन

प्रौद्योगिकी से जुड़ी हुई सेवाएं और उपकरण, जैसे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, ई – मेल और ब्लॉग्स आदि भी आई. सी.टी. के दायरे में आते हैं।

सूचना युग के शैक्षिक उद्देश्यों को साकार करने के लिए शिक्षा में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आई.सी. टी.) के आधुनिक रूपों को शामिल करने की आवशयकता है। इसे प्रभावी तौर पर करने के लिए शिक्षा योजनाकारों, प्रधानाध्यापकों, शिक्षकों और प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों को प्रौद्योगिकी, प्रशिक्षण, वितीय, शैक्षणिक और बुनियादी ढांचागत आवश्यकताओं के क्षेत्र में बहुत से निर्णय लेने की आवश्यकता होगी। अधिकतर लोगों के लिए यह काम न सिर्फ एक नई भाषा सीखने के बराबर कठिन होगा, बल्कि उस भाषा में अध्यापन करने जैसा होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. कुलश्रेष्ठ, डॉ. एस. पी. – ''शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स। पृष्ठ–72।
2. मंगल, डॉ. एस. के. – ''शैक्षिक तकनीकी'', पी एच आई पब्लिकेशन्स। पृष्ठ–133।

◈◈

ISSN : 2349-9273

शोध पत्र लेखकों को निर्देश

'दि गुंजन' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरेनशल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल) है, जिसमें सभी उपविषयों के मौलिक शोध पत्र, शोध समीक्षा, विचार एवं लेखों आदि का प्रकाशन किया जाता है। शोधकर्ता हिन्दी, अंग्रेजी अथवा संस्कृत भाषा में अपने शोध पत्र भेज सकते हैं। **शोध पत्र भेजते समय कृपया निम्न बिन्दुओं पर विशेष ध्यान दें :**

◈लेखक अपना शोध पत्र **सर्वेश तिवारी 'राजन'** प्रबन्ध सम्पादक- **'दि गुंजन'**, के-444 'शिवराम कृपा' विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-208027 (उ.प्र.) को अथवा **super.prakashan@gmail.com** पर प्रेषित करें।

◈प्राप्त शोध पत्र जर्नल में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोध पत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोध पत्र का कोई भी भाग सम्पादक की अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है।

◈अपने शोध-पत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें- शीर्षक, सारांश, पाण्डुलिपि, निष्कर्ष एवं पुस्तक सन्दर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु शोधालेख पर विशेष ध्यान दें।

◈**शीर्षक :** शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें, किन्तु अपना पूरा नाम, पद, विषय, संस्था, पता जहाँ पर निवास एवं अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका दूरभाष, मोबाइल, फैक्स, ई-मेल पत्राचार की सुविधा हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें।

◈**सारांश** - सारांश कृपया शोध-पत्र का सारांश अधिकतम 200 शब्दों में दें।

◈**पाण्डुलिपि**- इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी जो 5 से 8 पृष्ठों तक होनी चाहिए। शोध पत्र में 8 पृष्ठ (सारांश, शब्द संक्षेप, निष्कर्ष एवं सन्दर्भ सूची सहित) से अधिक नहीं होना चाहिए, अन्यथा प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। आलेख प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने, इसका पूरा ख्याल रखा जाता है, फिर भी त्रृटि पाये जाने पर लेखक संशोधित री-प्रिन्ट प्राप्त कर सकता है।

◈**पुस्तक** - प्रकाशक का नाम, संस्करण, संख्या, प्रकाशन वर्ष, लेखक का नाम, पृष्ठ संख्या दें।

◈**पत्रिका** - पत्रिका का नाम, लेख का शीर्षक, लेखक एवं प्रकाशक का नाम, अंक, संख्या, माह, वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक व मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

◈**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची** - कृपया शोध पत्र में कम से कम 8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची अवश्य दें।

◈**समाचार पत्र**- समाचार पत्र के प्रकाशक, प्रकाशन तिथि, सन व पृष्ठ संख्या दें।

◈**इण्टरनेट** - वेबसाइट, पृष्ठ संख्या, मुख्य शीर्षक, अन्त:शीर्षक का उल्लेख करें।

◈**मानचित्र एवं सारणी**- मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोध पत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में अवश्य दें (उदाहरण, सारणी संख्या आदि)।

◈**विशेष**- कृपया अपना शोध पत्र ई-मेल करने के बाद फोन अथवा मोबाइल से अवश्य सूचित करें। शोध पत्र के साथ फोटो, ई-मेल एड्रेस तथा हार्डकापी के रूप में स्पीड पोस्ट द्वारा लिफाफे में भेजें। शोध पत्र **हिन्दी, संस्कृत (कृतिदेव हिन्दी फान्ट 14) एवं अंग्रेजी (टाइम्स 12) में** तैयार कर मेल करें। शोध पत्र प्राप्त होने के तुरन्त बाद, उसी दिन लेखक की मेल पर स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। **super.prakashan@gmail.com** से प्राप्त शोध पत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व प्रबन्ध सम्पादक से मोबाइल/दूरभाष पर सम्पर्क अवश्य कर लें। रिसर्च जर्नल में लेख सम्मिलित करने का सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति का निर्णय ही अन्तिम व सभी को मान्य होगा।

◈**सुझाव** - लेखकों एवं पाठकों को यह अंक कैसा लगा, इस सम्बन्ध में अपने-अपने विचार अवश्य लिखें। इससे मुझे अपनी त्रुटियों को जानने और भावी योजना बनाने में सहायता मिलेगी।

◈**विनम्र निवेदन**- सभी सम्मानित सदस्यों से निवेदन है कि अपने माध्यम से संस्था में अधिकत सदस्यों को पत्रिका परिवार से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

दि गुंजन — The Gunjan

मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

Multi Disciplinary Quarterly International Refereed Research Journal

RNI : APPLIED\78\JA\2014

ISSN - 2349-9273

E-mail : super.prakashan@gmail.com Web Site: www.thegunjan.com

कार्यालय : सेक्टर 'के'-444 'शिवरामकृपा' विश्व बैंक बर्रा-कानपुर-208027

सदस्यता फार्म

श्रीमान् सम्पादक महोदय,

'दि गुंजन'

(मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल)

सेक्टर 'के'-444 'शिवरामकृपा' विश्व बैंक बर्रा-कानपुर-208027 (उ. प्र.) भारत

महोदय / महोदया,

निवेदन है कि मैं / हमारा महाविद्यालय आपके **'सुपर प्रकाशन'** द्वारा प्रकाशित **'दि गुंजन' (मल्टी डिसिप्लिनरी क्वार्टरली इण्टरनेशनल रेफ्रीड रिसर्च जर्नल)** परिवार का .... वर्षीय / आजीवन★ / व्यक्तिगत / संस्थागत★ सदस्य बनना चाहता हूँ / चाहती हूँ। मैं / हमारी संस्था **'सुपर प्रकाशन'** विश्व बैंक बर्रा, कानपुर-27 के नाम सदस्यता शुल्क .... रुपये नकद / मनीआर्डर / चेक अथवा बैंक ड्राफ्ट खता क्रमांक (**सुपर प्रकाशन - 52570500000170) IFS Code No. BARB0BUPGBS, बड़ौदा उत्तर प्रदेश ग्रामीण बैंक, शाखा- विश्व बैंक बर्रा (कर्रही) कानपुर-27** के नाम से दे रहा हूँ। (zero)

नाम (श्री/श्रीमती/डॉ.) : ....

पद का नाम (जहाँ वर्तमान में कार्यरत हैं) : ....

संस्था / निवास का नाम : ....

पत्र व्यवहार का पूरा पता (पिनकोड सहित) : ....

: ....

फोन / मोबाइल नं. : ....

स्थान व दिनांक : ....

: हस्ताक्षर

प्रबन्ध सम्पादक :
सर्वेश तिवारी 'राजन'
मोबा. : 08896244776

सम्पादक :
डॉ. अजय सक्सेना
मोबा. : 09897093305